दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक 'भारतीय इतिहास की रूप-रेखा' की द्वितीय शृंखला है जिसमें दिल्ली सल्तनत का इतिहास चित्रित है। विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा बोर्डों के पाठ्यक्रमों का पूरा-पूरा ध्यान रखते हुए विद्यार्थियों की कठिनाइयों के निराकरण का पूर्ण प्रयास किया गया है।

पुस्तक की उपयोगिता की अधिकाधिक अभिवृद्धि की भरसक चेष्टा की गई है, सफलता कहाँ तक मिली है यह पाठक समझें।

जिन विद्वानों की रचनाओं से मैंने सहायता ली है उनका आभारी हूँ।

लेखक

विषय-सूची

दिल्ली सल्तनत

अध्याय ३३

इस्लाम का उदय—अरब में

मरुस्थलीय देश अरब अत्यन्त प्राचीन काल से भ्रमणशील जातियों का निवास स्थान रहा है। प्राचीन सभ्य देशों में इस देश का नाम केवल इसलिए नहीं गिना जा रहा था कि इसने प्रगति के साथ-साथ अपनी सभ्यता में विकास नहीं किया था। यहाँ की उष्ण जलवायु और घोर मरुभूमि निवासियों को कष्टसहिष्णु बनाने में योग देती रही है। पशुओं में भी केवल ऊँट ही एक मात्र साथ दे सका। सीमित साधनों के कारण अरब निवासियों को राजनीतिक अथवा आर्थिक विकास करने का पूर्ण अवसर नहीं प्राप्त हो सका। इनका प्राचीन इतिहास खानाबदोशों का इतिहास है। अरब निवासी छोटे-छोटे कबीलों में रहते थे। उनकी दुनिया उनके कबीलों तक ही सीमित था। अपने कबीलों की उन्नति के लिए वे एड़ीचोटी का जोर लगा देते थे। वे एक स्थान से दूसरे स्थान को घूम-घूमकर जीवनयापन करते थे। जीवनयापन के तीन प्रमुख साधन ये थे :

(१) पशु पालन, (२) व्यापार तथा (३) लूट। अपने पड़ोसी निवासियों के साथ इनका व्यापार चलता था और अवसर पाकर वे उन्हें लूट भी लिया करते थे। अरब की यह दशा उस समय तक इसी रूप में बनी रही जब तक यह धार्मिक अन्ध-विश्वासों, आर्थिक अव्यवस्थाओं और सामाजिक अनियमितताओं से अपने को पृथक् नहीं कर सका।

अरब की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए हमने ऊपर जो कुछ लिखा है उससे यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि अरब का आर्थिक संगठन अत्यन्त दुर्बल था। किन्तु वे केवल आर्थिक दृष्टिकोण से ही पिछड़े नहीं थे, वरन् राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टियों से भी काफी पिछड़े थे। जिस प्रकार हमारे देश में बहुदेववाद का प्रचलन है उसी प्रकार अरब में भी अनेक देवी देवताओं की पूजा हुआ करती थी। लगभग प्रत्येक कबीला अपनी मूल-स्थान के साथ अपने अपने इष्टदेवों की पूजा किया करता था। विभिन्न प्रकार के धार्मिक अन्धविश्वासों से अरब निवासी जकड़े हुए थे। मक्का में जो आज इस्लाम धर्म का सर्वश्रेष्ठ पवित्र स्थान है, उस समय प्रतिवर्ष लोग हजारों की संख्या में केवल इसलिए एकत्रित होते थे कि यहाँ एक ऐसा काला पत्थर है जिसे स्वयं भगवान ने धरती पर गिराया है। इस काले पत्थर की पूजा के लिए अरब के कोने कोने से लोग एकत्रित होते थे। कुरैश नामक कबीला पर इस पत्थर की पूजा और उसकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व रक्खा गया था।

राजनीतिक दृष्टि से भी अरब काफी पिछड़ा हुआ था। यद्यपि ये काफी सामरिक प्रवृत्ति के थे और इनकी वैयक्तिक शक्ति भी किसी से कम न थी तथापि सगठन के अभाव में उनका कोई राजनीतिक प्रभुत्व नहीं स्थापित हो सका था। अरब वालो में कोई सुव्यवस्थित सामाजिक सगठन भी नहीं था और कबीले के बाहरवालो को वे कोई महत्व नहीं प्रदान करते थे। उनके हिताहित की उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी।

मुहम्मद साहब

जिस समय अरब की गणना विश्व के पिछड़े हुए देशो मे हो रही थी उसी समय वहाँ एक ऐसी शक्ति का उदय हुआ जिसने न केवल अपने देश मे राजनीतिक एकता को जन्म दिया वरन् विश्व के अन्य स्थानो में भी अपनी सत्ता स्थापित की। यह शक्ति धर्मगुरु मोहम्मद साहब की थी। मोहम्मद साहब के जन्म के पूर्व का अरब और उनकी मृत्यु के पश्चात् के अरब मे कोई समता नहीं थी। कुछ वर्षों मे ही महान् क्रान्तिकारी परिवर्तन ला देने वाले इस व्यक्ति मे निश्चय ही कुछ असाधारण प्रतिभा थी।

प्रारम्भिक जीवन

मोहम्मद साहब का जन्म ५७० ई० में मक्का मे हुआ था। मक्का के काले पत्थर के सरक्षक एव पुजारी कुरेश कबीले का उल्लेख ऊपर किया गया था। उसी कबीले में अब्दुल्ला के घर मोहम्मद साहब का जन्म हुआ। पिता की मृत्यु के पश्चात् बालक मोहम्मद पितामह द्वारा पाला गया। लगभग ४० वर्ष की अवस्था तक मोहम्मद साहब के जीवन में कोई ऐसी महत्वपूर्ण घटना नहीं घटी। वे एक साधारण गृहस्थ की भाँति अपना जीवन चलाते रहे। ब्याह तो उन्होने २५ वर्ष की ही अवस्था मे अपनी मालकिन खदीजा से कर लिया था।

ज्योति-प्राप्ति—एक दिन सहसा मोहम्मद साहब को 'नूर का जलवा' नजर आया अर्थात् उन्हें दिव्य ज्योति प्राप्त हुई। मोहम्मद साहब को ईश्वर का यह सदेश मिला कि अल्लाह के अतिरिक्त धरती पर कोई ईश्वर नहीं है और मोहम्मद साहब उसका पगम्बर है। जिस समय मोहम्मद साहब को यह सदेश मिला उस समय से उन्होने विश्वास कर लिया कि वे अपने देश से तो धार्मिक अन्धविश्वासो का अन्त करेंगे ही दूसरे देशों से भी वे मूर्तिपूजा और धार्मिक अन्धविश्वासो का भी समूल नाश करने का प्रयत्न करेंगे।

धर्म प्रचार—सर्वप्रथम मोहम्मद साहब ने अपनी पत्नी खदीजा को इस्लाम धर्म में दीक्षित किया। धीरे-धीरे उनके अनुयायियों की सख्या बढ़ती गई। कुरेश कबीला के होने के नाते कुरेशियो को इस बात का भय हुआ कि उनके वश मे ही एक व्यक्ति उनके विरोध म खड़ा हो रहा है, अत उन्होने धर्मप्रचार में मोहम्मद साहब को दबाने की चेष्टा की। मक्का में धार्मिक उथल-पुथल इतना अधिक हो गया कि मोहम्मद साहब को मक्का छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा। ६२२ ई० मे मोहम्मद साहब ने मक्का से मदीना के लिए प्रस्थान कर दिया। यहीं से हिजरी सवत का आरम्भ हुआ। [illegible] मदीना मे मोहम्मद साहब के अनेक हितैषी मिल गये।

शीघ्र ही वहाँ उनके शिष्यों की संख्या काफी बढ़ गई। मदीना वालों ने मोहम्मद साहब को अल्लाह का पैगम्बर स्वीकार कर लिया। उन्होंने एक ईश्वर को मानना भी आरम्भ किया। इतना ही नहीं मदीना वालों ने मोहम्मद साहब को अपना प्रधान मान लिया। वे मदीना के सबसे बड़े न्यायाधीश और शासक के रूप में स्वीकार कर लिये गये। संगठन की शक्ति मोहम्मद साहब में अद्वितीय थी। मदीना के समस्त कबीलों को संगठित करके मूर्तिपूजक मक्का वालों को बलपूर्वक एकेश्वरवादी बनाने की बात मोहम्मद साहब के मस्तिष्क में बराबर गूंजती रही। अतः उन्होंने मक्का पर आक्रमण कर दिया। मक्का वालों की पराजय हुई और उन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार करना पड़ा।

लगभग २३ वर्षों तक राजनीतिक एवं धार्मिक गुरु के रूप में कार्य करने के पश्चात् सन् ६३२ ई० में ६३ वर्ष की अवस्था में मोहम्मद साहब का देहावसान हो गया।

इस्लाम का प्रसार—खिलाफत

इस्लाम धर्म का प्रसार विश्व-इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। जिस समय अरब के पड़ोसी राज्य दुर्बल हो चुके थे उस समय अरब अपनी बिल्कुल ताजी शक्ति के साथ नये जोश और नये उमंग से उठा था। 'तलवार के साये में नमाजे हक' अदा करने का नारा लगाने वालों के लिए इससे बढ़िया कोई अवसर नहीं मिलता। मोहम्मद साहब की भी हार्दिक इच्छाएँ उनके साथ थीं। मोहम्मद साहब धरती से मूर्तिपूजकों का अन्त करके एकेश्वरवाद की स्थापना करना चाहते थे, अतः उनके शिष्यों ने भी उसी पथ का अनुसरण किया।

उमइयत वंश—मोहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार की जटिल समस्या उपस्थित हुई। उनके जीवन काल में अबूबक्र ने धर्म प्रचार के लिए जो कार्य किया था उससे सारे अरब निवासी प्रभावित थे, अतः अबूबक्र को ही उनका उत्तराधिकारी बनाया। अबूबक्र ने मोहम्मद साहब की सीरिया लूटने और विश्व के लोगों को इस्लाम धर्म स्वीकार कराने की योजना को प्रयोग में लाने की इच्छा प्रकट की। वह इस पथ पर अग्रसर भी हुआ। अबूबक्र की मृत्यु के पश्चात् उमर खलीफा बनाया गया जो ६३४ ई० से ६४४ ई० तक खलीफा के पद पर आसीन रहा। इस्लाम धर्म के प्रचार में उमर ने अद्वितीय कार्य किया। उसके शासन-काल में इस्लाम धर्म पूर्व में अफगानिस्तान से लेकर पश्चिम में मिस्र तक फैल गया। अब तक अरब वालों का शासन-प्रबन्ध पूर्णरूपेण सुव्यवस्थित नहीं था पर खलीफा उमर ने अपनी प्रशासकीय योग्यता के कारण शासन-प्रबन्ध में पर्याप्त सुधार कर दिया। सीरिया, मेसोपोटामिया, आर्मीनिया, फिलिस्तीन, फारस और मिस्र में इस्लाम धर्म का प्रभुत्व जमाने का श्रेय खलीफा उमर को ही दिया जा सकता है।

उमर के बाद उस्मान खलीफा हुआ किन्तु उसका वध कर दिया गया। तत्पश्चात् अली इस पद पर आसीन किया गया, किन्तु इसे भी मौत के घाट उतार दिया गया।

अली का उत्तराधिकारी न होने से शिया और सुन्नी दो दल बने हुए हैं क्योंकि

दिनों तक शासन नहीं कर सका और उसे हटाकर सीरिया के शासक मुआविया ने खलीफा का पद ग्रहण करके उमइया वंश की स्थापना की। उमइया वंश की स्थापना के पश्चात् राजनीति से धर्म को कुछ पृथक् किया गया और खलीफा की नीति धर्म-प्रचार की अपेक्षा साम्राज्य-विस्तार की ओर अधिक रही। उमइया के शासन-काल में सिन्धु, सार्डानियाँ, अफ्रीका के उत्तरी भाग, बाइजनटाइन साम्राज्य और फारस को इस्लाम साम्राज्य में मिला लिया गया। उसी समय राजधानी मदीना से हटाकर दमिश्क में स्थापित की गई।

मुआविया की मृत्यु के पश्चात् यजीद खलीफा हुआ। पर इसका विरोध खलीफा अली के पुत्र हुसेन ने किया। कर्बला नामक स्थान पर हुसेन के विरोधियों ने उसकी हत्या कर दी। इस प्रकार नेता हुसेन विफल मनोरथ रहा। यह इस्लामी इतिहास में हृदयविदारक घटना है जो आज भी मोहर्रम के रूप में मनाई जाती है।

अब्बासिया वंश—उमइया वंश के समय में केवल अरब वालों को ही महत्व दिया जा रहा था। अन्य लोगों के साथ उनका व्यवहार अशोभनीय था। अतः असन्तोष की आग साधारण लोगों तक में भभकने लगी। अब्बास नामक नेता की अध्यक्षता में भीषण क्रान्ति हुई। उमइया वंश का बच्चा-बच्चा तलवार के घाट उतार दिया गया। अब्बास के लिए सिंहासन रिक्त था। इसी व्यक्ति के नाम पर यह अब्बासिया वंश कहलाने लगा। इस वंश का सर्वश्रेष्ठ खलीफा हारूँ रशीद था। हारूँ रशीद के पूर्व अब्बासिया वंश के खलीफाओं ने भी राजनीति में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किये थे और अरबों के राजनीतिक विशेषाधिकार का अन्त करके ईरानियों को भी आगे बढ़ने का अवसर प्रदान किया था, पर खलीफा हारूँ रशीद की न्यायप्रियता और दयालुता के आगे सभी सुधार फीके पड़ गये।

अब्बासिया वंश की शक्ति भी धीरे-धीरे क्षीण होती गयी, कारण यह था कि अब्बासिया वंश के खलीफाओं ने तुर्कों को बहुत अधिक बढ़ावा दे दिया था। तुर्कों की शक्ति राज्य में इतनी अधिक बढ़ गई थी कि खलीफा उनके हाथ की कठपुतली थे। अब्बासिया वंश का साम्राज्य धीरे-धीरे सिकुड़ता गया और अन्त में केवल बगदाद प्रान्त ही उनके अधीन रह गया। इनकी राजनीतिक शक्ति समाप्त हो चुकी थी। धार्मिक क्षेत्र में पदार्पण करके प्रभुता स्थापित करने की बात भी नहीं चल सकी क्योंकि चंगेज खाँ के पुत्र हलाकू ने बगदाद पर आक्रमण करके इनका अन्त कर दिया।

भारत में इस्लाम धर्म—जिस जोश और उमंग के साथ मुसलमानों ने अपने धर्म का प्रचार किया उतनी तीव्रता के साथ विश्व के किसी धर्म का प्रचार आज तक नहीं किया गया। यही कारण था कि इस्लाम धर्म अपने जन्म के शीघ्र बाद ही विश्व के एक बहुत बड़े भूभाग पर फैल गया।

भारत में मुसलमान धर्म के प्रचार की कहानी युद्ध और रक्त की कहानी है। इस्लाम धर्म के प्रचार में दो साधन मुख्यतया काम में लाये गए थे। पहला साधन था तलवार और दूसरा व्यापार। सिन्धु पर अधिकार कर लेने के बाद खलीफाओं को इस बात का अवसर प्राप्त हो गया कि वे तलवार के बल पर लोगों को झुका सकें और उन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य कर सकें। दूसरी ओर अरब व्यापारियों

ने मालाबार तट पर इस्लाम धर्म का प्रचार आरम्भ कर दिया था। इन व्यापारियों को कुछ भारतीय नरेशों से भी व्यापार-कार्य में प्रोत्साहन मिला था। निम्न वर्ग के हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने में अधिक लाभ था। अतः उन्होंने अपना धर्म छोड़ कर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। दक्षिण भारत में इसी शान्त नीति द्वारा इस्लाम धर्म का प्रचार होता रहा किन्तु उत्तर भारत में इसके ठीक विपरीत दशा थी। वहाँ आक्रमण द्वारा लूट-खसोट, अत्याचार आदि का ताण्डव नृत्य होता रहा। जैसा कि हम आगे पढ़ेंगे, सिन्धु पर अरबों के आक्रमण के फलस्वरूप भारत में इस्लाम धर्म के प्रचार का द्वार खुल गया। तुर्कों के इस्लामीकरण के पश्चात् तो इस्लाम धर्म का प्रचार और तेजी से होने लगा। मोहम्मद गोरी, महमूद गजनवी आदि के आक्रमणों ने भारत में इस्लाम धर्म की जड़ जमा दी। महमूद गजनवी के आक्रमण के पश्चात् भारत में कुछ इस्लाम धर्मप्रचारकों का भी प्रवेश हुआ था। कई मुसलमान सन्तों ने उत्तर भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार किया था। सन्त नूरुद्दीन, [illegible] चिश्ती सूफी महात्माओं ([illegible], फरीदुद्दीन, निजामुद्दीन औलिया, नासिरुद्दीन, शेख सलीम चिश्ती आदि) का नाम इस्लाम धर्मप्रचारकों में गर्व से लिया जा सकता है। इस्लाम धर्म के प्रचारकों में [illegible] में एक प्रमुख बात यह थी कि उन्होंने ईश्वर का प्रेममय रूप लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया। प्रेममय भगवान की आराधना ही लोकप्रिय होती रही है। सूफी महात्माओं ने पंजाब और सिन्ध के आस-पास के क्षेत्र में लोगों को बहुत अधिक प्रभावित किया था। इनका प्रचार-कार्य काफी बाद तक चलता रहा और कालान्तर में इन्होंने सांस्कृतिक समन्वय के लिए भी सफल प्रयास किया था। सूफियों में से कुछ हिन्दी कवि भी हुए जिनमें मलिक मोहम्मद जायसी सर्वश्रेष्ठ हैं। साहित्य के माध्यम द्वारा इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार बहुत ही सफल सिद्ध हुआ क्योंकि तलवार के बल पर बलात् धर्म परिवर्तन [illegible] था, यद्यपि इसमें धर्म-प्रचार की गति काफी तेज थी; किन्तु प्रेम द्वारा धर्म-प्रचार में स्थायित्व रहता है। तात्पर्य यह कि इन [illegible] कारणों द्वारा भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार किया जाने लगा और यह कार्य मुगल काल तक जोरों से चलता रहा।

भारत में इस्लाम धर्म के प्रसार के कारण—यहाँ हम उन कारणों पर विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं जिनके कारण भारत में इस्लाम धर्म का प्रसार हो सका। (१) सबसे पहला कारण तो यह स्पष्ट ही है कि मुसलमानों के [illegible] के बाद हिन्दू जनता को विवश होकर इस्लाम धर्म स्वीकार करना पड़ा। (२) दूसरा कारण यह था कि इस्लाम प्रचारकों और व्यापारियों ने आर्थिक या वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके समाज में गिरे हुए हिन्दुओं को [illegible] देते थे। किसी हिन्दू स्त्री से विवाह कर लेने के बाद मुसलमान [illegible] इस्लाम धर्म में दीक्षित कर लेते थे। (३) कुछ पहुँचे हुए फकीरों और सूफी सन्तों के "करामातों" [illegible] हिन्दुओं का [illegible] और आकृष्ट किया था। [illegible] द्वारा सूफी सन्तों ने हिन्दू समाज को काफी प्रभावित किया था। (४) चौथा कारण [illegible] कि इस्लाम [illegible]

सिद्धान्त जटिल नहीं थे। एक ईश्वर पर ईमान लाना और मोहम्मद साहब को उसका पैगम्बर मानना, बस ये दो ऐसी मूल-भूत वस्तुएँ थी जिन्हें मानकर इस्लाम धर्म निभाया जा सकता था। विभिन्न प्रकार के कर्मकाण्डों के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं था। धर्म की इस सरलता ने लोगों को अपनी ओर आकृष्ट किया था। (५) एक कारण यह भी ज्ञात होता है कि जाति पाँति, ऊँच-नीच के भेद भाव से ऊबी हुई हिन्दू-जनता समानाधिकार वाले इस्लाम धर्म को पाकर प्रसन्न हो गई। हिन्दू समाज में तथाकथित नीच जातियों को किस अपमानजनक दृष्टि से देखा जाता था, (अब भी यह प्रवृत्ति कुछ अंशों तक विद्यमान है) इससे भारतीय इतिहास के विद्यार्थी अवगत होंगे। मुसलमान समाज मे ऊँच-नीच, जाति-पाँति का भेद-भाव कुछ भी नहीं था, अत पण्डितों से ठुकराई हुई जनता मौलवियों की गोद में जा गिरी। (६) मुसलमान राज स्थापित हो जाने के बाद भारत मे इस्लाम धर्म के प्रसार को इसलिये भी प्रोत्साहन मिल सका कि निर्धन हिन्दू जनता इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने के बाद विभिन्न धार्मिक करो से मुक्ति पा जाती थी, कभी-कभी ऊँचे पदो की लालच देकर भी हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार कराया गया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ इस्लाम धर्म के उदय के पूर्व अरब की क्या अवस्था थी ?

२ मोहम्मद साहब के विषय मे आप क्या जानते हैं ? इनकी अरब वालों को क्या देन है ?

३ खलीफाओं के विषय मे आप जो कुछ जानते हो लिखिए। इस्लाम धर्म के प्रचार मे इन खलीफाओं ने क्या योग दिया ?

४ इस्लाम धर्म के प्रसार पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?

५ भारत मे इस्लाम धर्म के प्रसार पर कारणों सहित प्रकाश डालिये।

६ क्या यह सच है कि इस्लाम धर्म का प्रसार तलवार का सहारा लिये बिना इतनी तेजी से कदापि नही हो सका होता ?

अध्याय ३९

अरबों के भारतीय आक्रमण

अरब और भारत का व्यापारिक सम्बन्ध बहुत पहले से स्थापित था। सातवीं शताब्दी में भारत की गणना विश्व के प्रमुख धनाढ्य देशों में की जाती थी। जब तक इसकी राजनीतिक शक्ति प्रबल रही तब तक किसी विदेशी का साहस नहीं हुआ कि इस पर आक्रमण करे, किन्तु जैसा कि हम पढ़ चुके हैं हर्ष के पश्चात् उत्तर भारत की राजनीतिक एकता का अन्त हो गया और कई छोटे-छोटे राज्यों का अभ्युदय हुआ। हर्ष के बाद वर्धन साम्राज्य जैसे शक्तिशाली साम्राज्य दो-एक बार अवश्य उठे, किन्तु पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा करने वाला कोई शक्तिशाली राज्य न था। हर्ष के बाद से लेकर बारहवीं शताब्दी तक के भारतीय इतिहास की राजनीतिक अवस्था का अध्ययन करते समय हमें इस बात का संकेत मिला था कि अरब वालों ने कई आक्रमण हमारे देश पर किये। उनके बाद तुर्कों के आक्रमण हुए। कभी हमने इन आक्रमणों का मुँह-तोड़ जवाब दिया जिससे आक्रमणकारियों को मुँह की खानी पड़ी। किन्तु कभी हमें पीछे हट जाना पड़ा और आक्रमणकारियों को लूट खसोट, अत्याचार, धर्म प्रचार का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। यहाँ हम अरबों के कुछ महत्वपूर्ण आक्रमणों के विषय में प्रकाश डालेंगे।

आरम्भिक आक्रमण—खलीफा उमर के समय में भारत के समुद्र तट को लूटने के अभिप्राय से एक सेना भेजी गई थी। जिसमें अरब वालों को लोहे के चने चबाने पड़े, फलतः खलीफा उमर के शेष शासनकाल में भारत पर फिर कोई दूसरा आक्रमण नहीं हुआ।

उसमान गनी के शासक अधिक साम्राज्यवादी थे, अतः अब्दुल्ला ने सिन्धु पर आक्रमण कर दिया जिसमें उसकी विजय हुई। विजय से प्रोत्साहित होकर अब्दुल्ला सिन्धु नदी को पार करके आगे बढ़ना चाहता था किन्तु खलीफा ने उसे अनुमति नहीं दी। इस प्रकार भारत-भूमि में वे आगे नहीं बढ़ सके।

मुहम्मद बिन कासिम—सिन्धु पर पहला महत्वपूर्ण आक्रमण मुहम्मद बिन कासिम का हुआ। उस समय ब्राह्मण वंश का सिन्धु पर अधिकार था। राजा [illegible] के [illegible] सिन्धुनिवासी प्रजा में, राजसत्ता का प्रबल [illegible] असन्तोष था। [illegible] राजनीतिक दुर्बलता का कारण था। मुहम्मद बिन कासिम के भारतीय [illegible] के कारणों पर प्रकाश डालते हुए इतिहासकारों ने बहुत अधिक [illegible] लिखे हैं। [illegible] की [illegible] से प्रेरित होकर [illegible] ने भारत पर आक्रमण किया था। [illegible] है कि [illegible] की [illegible] [illegible] से [illegible] हुआ था। डा. [illegible]

से अरबों ने आक्रमण किया होगा। तीसरा कारण धर्म प्रचार हो सकता है। कहा जाता है कि ईराक के गवर्नर हज्जाज के पास सिंहल द्वीप का राजा अनाथ मुसलमान कन्याओं को जिनके माता पिता का देहान्त उसके द्वीप में हो चुका था भेज रहा था। दुर्भाग्य-वश सिन्धु के समुद्र तट पर वह जहाज लूट लिया गया। क्रुद्ध होकर अरब वालों ने सिन्धु पर आक्रमण कर दिया। कुछ लोगों का यह भी मत है कि तत्कालीन खलीफा वलीद के कुछ आदमी भारत में दासियों की खरीद करने आए थे। देबुल के बन्दर-गाह पर इनका जहाज लूट लिया गया। इन्हीं कारणों से सिन्ध के राजा दाहिर और ईराक के गवर्नर हज्जाज में अनबन हो गई जिसके फलस्वरूप उसने देबुल पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण में हज्जाज के सेनापति उबैदुल्ला की पराजय हुई और उसका वध कर दिया गया। दूसरी सेना भी पराजित कर दी गई।

दो सेनापतियों की पराजय के पश्चात् हज्जाज ने अपने दामाद मुहम्मद बिन-कासिम को आक्रमण के लिए भेजा। बारह हजार सवारों (छः हजार घुड़सवार तथा छः हजार ऊँट सवार) के साथ कासिम ७११ ई० में देवल के बन्दरगाह पर आक्रमणकारी हुआ। शीघ्र ही उसने देवल नगर को अपने अधीन कर लिया। नगर निवासियों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने की आज्ञा दी गई। जिसने अस्वीकार किया उसे प्राणदण्ड दिया गया। लगातार तीन दिनों तक हत्याकाण्ड चलता रहा। कासिम ने देवल को पूर्णतया अपने अधीन कर लिया। लूट का पाँचवाँ भाग हज्जाज के पास भेज दिया गया। शेष सैनिकों में बाँट दिया गया। कासिम आगे बढ़ा और उसने नीरुन नगर पर अपना अधिकार कर लिया। यह नगर आधुनिक हैदराबाद के निकट था। दाहिर ने इस नगर की सुरक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं किया था। तत्पश्चात् कासिम उत्तर पश्चिम की ओर बढ़ा और सेहवान पर अधिकार कर लिया। दाहिर के चचेरे भाई बजहरा ने असफल प्रयत्न अवश्य किया था किन्तु कासिम की सेना के आगे वह नहीं टिक सका था। यहाँ हिन्दुओं के साथ कुछ नर्मी बर्ती गई और जिन्होंने जजिया कर देना स्वीकार कर लिया उन्हें प्राणदण्ड नहीं दिया गया। कासिम के विरोधी बजहरा ने सीसम में शरण ली थी, अतः सेहवान जीतने के पश्चात् कासिम की सेना सीसम की ओर बढ़ी। सीसम जाटों की राजधानी था। जाटों ने आत्म समर्पण कर दिया।

इन छोटे-छोटे नगरों को जीतने के पश्चात् कासिम दाहिर से युद्ध करने के लिए रवाना हुआ। ७१२ ई० में उसने सिन्ध नदी पार करके ब्राह्मणाबाद पर आक्र-मण करने के लिए अपने घोड़ों की बाग मोड़ दी। इधर दाहिर भी पचास हजार घुड़-सवारों के साथ पड़ा हुआ था। दुर्भाग्यवश कठिन संघर्षों के पश्चात् भी दाहिर रण-क्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ। दाहिर की मृत्यु के पश्चात् ही उसकी सेना रणक्षेत्र छोड़कर भाग गई। दाहिर का पुत्र जयसिंह बिखरी हुई सेना का पुनर्संगठन कर रहा था। ब्राह्मणाबाद का दुर्ग कासिम के सैनिकों से निश्चय ही अछूता रह गया होता किन्तु जयसिंह का मन्त्री और कुछ सरदार मुसलमानों से मिल गये। जिसके फल-स्वरूप छः मास के कठिन युद्ध के पश्चात् भी जय सिंह को भागकर चित्तौड़ में शरण-लेनी पड़ी।

कासिम का सामना करने वाला दाहिर का भी एक पुत्र बचा हुआ था। वह अरोर में मुसलमान आक्रमणकारियों से लोहा लेने की तैयारियाँ कर रहा था। उसका विश्वास था कि दाहिर अभी जीवित है और इसी विश्वास पर वह टिका हुआ था किन्तु ज्योंही उसका यह विश्वास टूट गया वह हतोत्साह हो गया और वह भी दुर्ग छोड़ कर चित्तौड़ की ओर चल पड़ा। इस प्रकार अरोर पर भी कासिम का अधिकार हो गया। तत्पश्चात् कासिम की सेना मुल्तान की ओर बढ़ी। कई दुर्गों को जीतती हुई यह तूफानी सेना मुल्तान पर आक्रमणकारी हुई। मुल्तान की शक्ति किसी प्रकार दुर्बल नहीं पड़ रही थी किन्तु जिस नहर द्वारा मुल्तान को पानी पहुँचता था उसका भेद किसी राजद्रोही ने कासिम को दे दिया। जिससे लाभ उठाकर कासिम ने मुल्तानी सैनिकों को आत्मसमर्पण के लिये बाध्य किया। मुल्तान के नागरिकों के साथ किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया गया। हाँ, मन्दिरों की धनराशि अवश्य हथिया ली गई। मुहम्मद बिन कासिम का साहस बढ़ता गया। उसने अपने एक सेनापति को दस हजार अश्वारोहियों के साथ कनौज पर आक्रमण करने के लिये भेजा किन्तु इसी बीच वह स्वयं इस धरती से उठ गया।

कासिम का निर्मम अन्त—दाहिर पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् कासिम ने उसकी कन्याएँ सूर्यदेवी और परमल देवी को खलीफा के पास 'तोफा' के रूप में भेज दिया था। जब ये दोनों खलीफा के पास पहुँचीं तो वहाँ उन्होंने यह कहा कि वे अब खलीफा के योग्य नहीं हैं क्योंकि कासिम ने उन्हें भ्रष्ट कर दिया है। खलीफा इस पर बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने कासिम के पास यह आदेश भेजा कि कच्ची खाल में सिलकर कासिम उसके पास भेजा जाय। पत्र पाते ही कासिम ने स्वयं को खाल में सिलवा दिया। चौथे दिन कासिम का प्राणान्त हो गया। खाल खलीफा के सामने खोली गई। दोनों कन्याएँ भी वहाँ उपस्थित थीं। उन्होंने यह स्वीकार किया कि कासिम निर्दोष है और केवल अपने पितृहन्ता से बदला लेने की भावना से ही उन्होंने ऐसा किया था। इस पर खलीफा को और क्रोध आया और उसने दोनों लड़कियों को घोड़े की दुम में बँधवाकर दौड़ाया जिससे उनकी मृत्यु हो गई। कुछ इतिहासकार 'चाचनामा' के इस विवरण को सत्य नहीं मानते।

मुहम्मद बिन कासिम की सफलता के कारण—जैसा कि हम देख चुके हैं लगभग १ वर्ष के भीतर ही मुहम्मद बिन कासिम ने सम्पूर्ण सिन्ध पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इतनी कम अवधि में विजय-पताका फहराना सरल कार्य न था किन्तु इसमें केवल कासिम की योग्यता का ही हाथ नहीं है प्रत्युत कुछ अन्य परिस्थितियों ने भी कासिम को विजयी बनाने में योग दिया। नीचे हम उन्हीं कारणों एवं परिस्थितियों पर प्रकाश डालेंगे :

१. **सुन्दर और विशाल सैनिक संगठन**—हज्जाज ने कासिम को बहुत ही कुशल एवं साहसी सैनिकों की सेना दी थी जो प्रत्येक सामग्री से पूर्णतया सज्जित एवं अनुशासित थी। साथ ही यह सेना [illegible] सैनिक सामग्री से परिपूर्ण थी।

आय थी। गेहूँ और जौ की उपज का $\frac{१}{५}$ भाग उन क्षेत्रों से जिनकी सिंचाई सार्वजनिक नहरों से होती थी, और $\frac{१}{४}$ भाग उन क्षेत्रो से जहाँ सिंचाई नहीं होती थी, लिया जाता था। छुहारों, अंगूरों तथा अन्य फलों पर उपज का $\frac{१}{३}$ भाग कर रूप में लिया जाता था। इसी प्रकार शराब, मछली, मोती आदि पर भी पैदावार का $\frac{१}{५}$ भाग कर रूप में वसूल किया जाता था।

सैनिक सगठन—अरबों के पास जितनी सेना थी वह तो थी ही हिन्दुओं की कुछ सेना को भी इन्होंने अपने में मिला लिया। शान्तमय जीवन हो जाने के पश्चात् अरब विलासप्रिय हो गये और उन्होने भाड़े पर सैनिक रखना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि अरब सेना की विशुद्धता समाप्त हो गई और उनका वह सगठन भी शिथिल पड़ गया।

न्याय व्यवस्था—अरबों ने काजी के ऊपर न्याय-भार छोड़ा था जो कुरान को अपना आधार मानते थे। न्याय में पक्षपात का अश अधिक था। भारतीयो के राजनीतिक एव सामाजिक अपराधों के लिए भी कुरान का सहारा लिया जाता जा। पचायतों का अस्तित्व विद्यमान था।

धार्मिक नीति—अरबों ने भारतीयों के साथ प्रारम्भ मे जो अशोभनीय व्यवहार किया था उससे हम परिचित हो चुके है। सिन्ध में अधिकार स्थापित हो जाने के बाद अरब वालों ने कुछ सहिष्णुता से काम लिया। प्रारम्भ में तो हिन्दुओ को इस्लाम धर्म स्वीकार कराने के लिए अरब वालो ने एड़ी-चोटी का जोर लगाया था और इसीलिए कत्लेआम भी कराया किन्तु यह कब तक सम्भव था। अत. कासिम ने हिन्दुओ के साथ इतनी छूट दे दी कि यदि वे 'ज़जिया' कर दे दें तो उन्हे मुसलमान न बनाया जाय। जजिया कर देने वाला हिन्दू सुरक्षित था। हाँ इतना अवश्य था कि जजिया बहुत ही शक्ति के साथ अपमानपूर्ण व्यवहार से वसूल किया जाता था। जो हिन्दू इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेता था वह इस कर से मुक्त हो जाता था।

अरब शासन के सम्बन्ध मे ऊपर जो कुछ पढ़ा गया है उससे यह परिलक्षित होता है कि अरबो का शासन-प्रबन्ध पूर्ण सुव्यवस्थित एव सगठित नहीं कहा जा सकता। यही कारण था कि अरबों की भारत-विजय स्थायी नहीं रह सकी। एलफिन्सटन, लेनपूल आदि विद्वानो ने इस अस्थापित्व के अनेक कारण बतलाये हैं जिनके विस्तार मे जाने की आवश्यकता नहीं।

अरब और भारत सम्पर्क का सांस्कृतिक महत्व—अरबो का शासन भारत पर अधिक दिनो तक नहीं टिका रह सका। इसलिए उनका कोई राजनीतिक प्रभाव भारत पर नहीं पड़ा किन्तु अरबो की सिन्ध विजय का मुसलमान सस्कृति पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। हम यह देख चुके है कि अरब निवासी प्रारम्भ मे बिल्कुल ही पिछड़े थे, मुहम्मद साहब के उदय के पश्चात् इनका कुछ विकास हुआ था फिर भी ये अभी काफी पिछड़े थे। जब उन्होंने भारत मे प्रवेश किया और भारतीय सभ्यता एवं सस्कृति के प्रमुख अगो का अभिनव दर्शन किया। तो वे आश्चर्यचकित रह गये। ब्राह्मण धर्म मे उन्हें अपना एकेश्वरवाद भी मिला। भारतीय दर्शन की महानता उन्हें अद्वितीय लगी। इसी प्रकार भारतीय सस्कृति और कला ने भी उन्हें आश्चर्य में डाल

दिया। ज्योतिष, गणित, चिकित्सा, शिल्पकला, चित्रकला, संगीतकला आदि अनन्य क्षेत्रों में भारतवासियों ने जो उन्नति कर ली थी वह अरबों को आश्चर्य में डालने के लिए पर्याप्त थी। तबरी ने लिखा है कि एक बार खलीफा हारूँ रशीद ने अपने असाध्य रोग की चिकित्सा के लिए भारत से एक वैद्य बुलवाया था जिसने खलीफा को रोगमुक्त कर दिया।

अरबों ने ब्राह्मणों से शासन संचालन सम्बन्धी अनेक बातें सीखी थीं। ब्राह्मण राज-काज में निपुण भी थे। बौद्ध भिक्षुओं या ब्राह्मण पण्डितों के चरणों में बैठकर अरब विद्वानों ने अनेक ज्ञान-विज्ञान की बातें सीख लीं।

भारतीय ज्योतिष का भी प्रभाव अरब ज्योतिष पर स्पष्टतया दिखलाई पड़ता है। ब्रह्मगुप्त के ब्रह्म सिद्धान्त, और 'खण्ड खाद्यक' नामक ग्रन्थ भारत से बगदाद पहुँचे। जहाँ इन ग्रन्थों का अनुवाद किया गया। इन्हीं ग्रन्थों से अरबों ने पहले पहल ज्योतिष विज्ञान के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त किया था। बगदाद में अनेक भारतीय विद्वान बुलाये गए थे जो वैद्यक, दर्शन, ज्योतिष आदि विषयक भारतीय ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद करते थे।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. अरबों ने किन उद्देश्य से भारत पर आक्रमण किया था? मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण को अपना लक्ष्य बना कर उत्तर दीजिये।

२. क्या कारण था कि मुहम्मद बिन कासिम को सिन्ध आक्रमण में सफलता प्राप्त हुई?

३. मुहम्मद बिन कासिम के सिन्ध आक्रमण का संक्षिप्त इतिहास लिखते हुए खलीफा की असफलताओं पर प्रकाश डालिए।

४. अरबों की सिन्ध विजय अस्थायी सिद्ध हुई क्योंकि उनका शासन-प्रबन्ध दोषपूर्ण था। क्या आप इस कथन से सहमत हैं?

५. भारत ने अरब पर क्या सांस्कृतिक प्रभाव डाला?

अध्याय ३५

तुर्कों के आक्रमण

जैसा कि हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं अरबों की भारतीय विजय स्थायी नहीं रह सकी। उन्होंने एक अत्यन्त उजाड़ प्रदेश पर अधिकार स्थापित किया था जहाँ से कोई विशेष आर्थिक लाभ भी नहीं था, किन्तु उनके तीन शताब्दी पश्चात् तुर्क नामक जाति ने भारत पर जो आक्रमण किये उनका काफी स्थायी राजनीतिक प्रभाव पड़ा। यहाँ हम उन्हीं तुर्की आक्रमणों का अध्ययन करेंगे।

तुर्क जाति—तुर्क लोग मध्य एशिया के निवासी थे। जन सख्या बढ़ जाने के कारण इन्होंने अपने मूल स्थान से स्थानान्तरण किया। यह पर्यटन उस समय हुआ जब की इस्लाम जगत मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहा था। उमैया वश से राज्याधिकार छीन कर अब्बासिया वश ने खिलाफत अपने हाथ मे ले ली थी। राजधानी भी दमिश्क से हटाकर बगदाद मे स्थापित की गई थी। उमैया वश के शासन-काल मे अरब वालों को महत्व प्रदान किया जा रहा था किन्तु अब्बासिया वश के शासन काल मे फारस वालों को ऊँचे-ऊँचे पद दिये जाने लगे। यद्यपि अब्बासिया वश ने देश के सास्कृतिक विकास मे पर्याप्त सफलता प्राप्त कर ली थी तथापि उनकी राजनीतिक शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण होती गई और प्रान्तीय शासकों को शक्तिशाली बनने का अवसर मिलता गया। खलीफाओं ने तुर्क नौजवानों को अपना अगरक्षक बनाना प्रारम्भ किया। बर्बर तुर्कों ने अरब सरदारों का महत्व घटा कर बहुत शीघ्र खलीफा पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। तुर्कों ने खलीफाओं पर अपना ऐसा सिक्का जमा लिया था कि वे उनके हाथों की कठपुतली बन गये। उनकी सेना मे भी तुर्क सैनिकों का ही बोल बाला था। इधर खलीफाओं का नैतिक पतन होता गया। उनकी राज-सभा विलासमय रँग रेलियों की आडम्बरशाला बन गई थी। केन्द्रीय शासन बिल्कुल ही शक्तिहीन हो गया जिसके फलस्वरूप स्थानीय शासक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने लगे। देखते देखते खलीफा साम्राज्य ईरानी, कुर्द, तुर्क, अरब तथा अन्य जातियों के शासकों में बट गया। मावरा उन्नहर प्रान्त पर समानीय वशीय इस्माइल का अधिकार हो गया। यह वहाँ का प्रतिनिधि शासक था। समानी वशीय शासक अपने तुर्क दासों पर बहुत अधिक विश्वास करते थे। इसी वश के एक शासक अब्दुल मलिक ने अपने दास अलप्तगीन को खुरासान का शासक बना दिया था किन्तु अपने स्वामी की मृत्यु के पश्चात अलप्तगीन को इस पद से हटना पड़ा और वह गजनी की ओर चल पड़ा। वहाँ उसने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। गजनी का यह राज्य दसवीं शताब्दी मे बहुत अधिक विकसित हो गया जब कि वहाँ सुबुक्तगीन का अधिकार हुआ।

सुबुक्तगीन

सुबुक्तगीन का सम्बन्ध भारतीय इतिहास से अधिक है। अतः हम इसके बारे में कुछ विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे।

प्रारम्भिक जीवन—सुबुक्तगीन प्रारम्भ में अलप्तगीन का एक होनहार दास था जिसकी कुशाग्र बुद्धि से प्रभावित होकर अलप्तगीन ने उसे 'अमीर-उल-उमरा' की उपाधि प्रदान की थी। स्वामी की मृत्यु के पश्चात् सुबुक्तगीन सिंहासन पर बैठाया गया, किन्तु महत्त्वाकांक्षी सुबुक्तगीन गजनी जैसे छोटे राज्य से सन्तुष्ट न था। अतः उसने साम्राज्य विस्तार की ओर ध्यान दिया।

भारतीय आक्रमण—भारत आक्रमण के पूर्व सुबुक्तगीन ने सुल्तान और लमगान को अपने अधीन कर लिया था। तत्पश्चात् वह भारत की ओर कूच किया। उसका प्रतिरोध पंजाब का राजा जयपाल को ही करना था क्योंकि उसका राज्य सरहिन्द से लमगान और काश्मीर से मुल्तान तक फैला था।

९८६-८७ ई० में सुबुक्तगीन ने भारतीय सीमा में प्रवेश करके ग्रामों का जो विनाश और विध्वंस किया उससे क्रुद्ध होकर जयपाल ने लमगान के आगे बढ़ कर अमीर के राज्य की सीमा को आक्रान्त कर दिया। किन्तु अमीर की विशाल सेना के सम्मुख जयपाल की सेना कुछ न थी। सन्धि की बातें होने लगीं किन्तु सुबुक्तगीन का पुत्र महमूद तैयार नहीं हुआ, इस पर जयपाल ने सुबुक्तगीन के पास दूत

दिया। ९९१ ई० में सुबुक्तगीन की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र महमूद उत्तराधिकारी हुआ।

महमूद गजनवी

भारत पर सबसे भयंकर और अधिक संख्या में होने वाले आक्रमण महमूद (महमूद गजनवी) के ही थे। इसने भारत पर सत्रह बार आक्रमण किये और हर बार अपार धनराशि लूट कर स्वदेश को धन-धान्य पूर्ण कर दिया।

महमूद के प्रारम्भिक प्रयास—बाल्यकाल से ही यह एक बहुत महत्वाकांक्षी था। कहा जाता है कि महमूद के जन्म के थोड़ी देर पूर्व ही सुबुक्तगीन ने एक ऐसा स्वप्न देखा था जिसका सीधा संकेत भावी सन्तान की आशातीत उन्नति से था। महमूद को बाल्यकाल में ही प्रशासकीय शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई थी और सुबुक्तगीन ने गजनी में उसे अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया था। वह कट्टर धर्मानुयायी तथा महान धनलोलुप था। युद्ध से उसे विशेष प्रेम था। अपने पिता के जीवन काल में वह कई लड़ाइयाँ लड़ चुका था। सुबुक्तगीन की मृत्यु के पश्चात् उसके छोटे पुत्र इस्माइल और महमूद में गजनी राज्य के लिए जो संघर्ष हुआ उसमें भी अपनी शक्ति एवं साहस के बल पर ही महमूद को सफलता मिली। रण क्षेत्र में वह अनेक कलाएँ दिखलाता था। उसका युद्ध-कला सम्बन्धी ज्ञान उसे बराबर सफलता देता गया।

महमूद के भारतीय आक्रमण

महमूद के आक्रमण के समय भारत की अवस्था—जिस समय महमूद गजनवी ने भारत पर आक्रमण किया था उस समय के भारत और मुहम्मद बिन कासिम के समय के भारत में अन्तर था। पश्चिमी समुद्रतट पर सिन्ध तथा मुल्तान पर विदेशी राज्य स्थापित हो चुका था। जहाँ की जनता मुसलमानों से प्रभावित थी। इसी प्रकार अब दक्षिण भारत में भी मालाबार तट पर भी अरब वालों के उपनिवेश स्थापित हो चुके थे। इन उपनिवेशों और विदेशी शासनों से आक्रमणकारियों को पूर्ण सहानुभूति मिल सकती थी, शेष भारत पर हिन्दू राजाओं का राज्य था। चनाब से हिन्दूकुश पर्वत तक फैला हुआ शाही वंश का राज्य था। जयपाल जहाँ का तत्कालीन राजा था। दूसरा हिन्दू प्रसिद्ध राज्य काश्मीर का था जहाँ महमूद के आक्रमण के समय नारी शासन था और राजनीतिक अशान्ति व्याप्त थी। कन्नौज का प्रतिहार वंशी राजा राज्यपाल पूर्णतया अयोग्य तथा निर्बल था। बंगाल में पाल वंशीय नरेश महिपाल प्रथम राज्य कर रहा था। गुजरात में चालुक्य वंश, बुंदेलखण्ड में चन्देल तथा मालवा में परमार वंश का आधिपत्य था। दक्षिण भारत में कल्याणी के परवर्ती चालुक्य और तंजोर के चोलों का राज्य था।

सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक का इतिहास पढ़ते समय हमने य... ज्ञात किया था कि प्रभुता के लिए भारतीय राज्यों में परस्पर संघर्ष चल रहे थे। कन्नौ...

और बंगाल के शासकों में निरन्तर संघर्ष चलता रहा। चोलों ने भी बंगाल पर घातक आक्रमण किये थे। परवर्ती चालुक्यों तथा चोलों में भी घोर संघर्ष होते रहे।

किसी भी हिन्दू राजा ने सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध नहीं किया था क्योंकि उन्होंने किसी विदेशी आक्रमण की कल्पना तक नहीं की थी। सामरिक दृष्टिकोण से भारतीय सेना में अनेक दुर्बलताएँ आ गई थीं। अहम् भाव तथा दम्भ ने भारतीय समाज को पतनोन्मुख बना दिया था। देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता के स्थान पर वैयक्तिकता तथा जातीयता ने घर कर लिया था। इस प्रकार महमूद गजनवी के समय का भारत राजनीतिक सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टियों से उत्तरोत्तर अधोगति को प्राप्त होता जा रहा था जब कि मुहम्मद बिन कासिम के समय में उसमें काफी दृढ़ता शेष थी। महमूद गजनवी के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती आक्रमणकारियों ने भारत से अपार धन लूटा। मन्दिरों में हिन्दुओं का धन संचित था। ऊँटों पर सोने लादकर ले जाने वाले लुटेरों को देखकर इतिहासकारों ने जो यह अनुमान लगाया है कि तत्कालीन भारत की आर्थिक अवस्था काफी अच्छी थी, सर्वथा उचित नहीं है। मन्दिरों में संचित धन ने शताब्दियों से सूर्य की किरणें नहीं देखी थीं। विदेशों में भारत की धन सम्बन्धी प्रसिद्धि बहुत पहले से चली आ रही थी।

आक्रमण का उद्देश्य—महमूद ने किस उद्देश्य से प्रेरित होकर भारत पर आक्रमण किया इस सम्बन्ध में अनेक तर्क-वितर्क प्रस्तुत किये गये हैं जिनकी गहराइयों में जाने की हमें कोई आवश्यकता नहीं। (१) ऐसा ज्ञात होता है कि खलीफा अलकादिर बिल्लाह और उसके द्वारा दिये गये उपाधियों से प्रभावित होकर उसने जो यह प्रण कर लिया था कि मैं हर वर्ष हिन्दुओं के विरुद्ध 'जेहाद' (धर्म युद्ध) करूँगा, उस प्रतिज्ञापूर्ति के लिये उसका प्रति वर्ष तूफानी आक्रमण हुआ करता था (२) आक्रमण का दूसरा और सम्भवतः सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह ज्ञात होता है कि भारत के सोने और हीरे-जवाहिरातों ने धन-लोलुप महमूद को आमन्त्रित किया था। (३) तीसरा कारण 'जेहाद' अर्थात् धर्म युद्ध की भावना है। महमूद एक कट्टर मुसलमान था यह पहले ही बताया जा चुका है। अतः उसे मूर्तिपूजा से घृणा थी। मन्दिरों और मूर्तियों के विनाश तथा काफिरों को मुसलमान बनाने के अभिप्राय से भी महमूद ने आक्रमण किया था किन्तु कुछ इतिहासकार इसमें सन्देह करते हैं और उसकी लोलुपता को ही आक्रमण का प्रमुख कारण मानते हैं।

तूफानी आक्रमण—महमूद ने १०००-१०२६ ई० तक भारत पर [illegible] आक्रमण किए। उसका पहला आक्रमण भारत के सीमान्त प्रदेशों पर हुआ था जिसके फलस्वरूप [illegible] पर उसका अधिकार हो गया था। [illegible] पर उसने अपने प्रतिनिधि शासक नियुक्त कर दिये।

[illegible] सन् १००१ ई० में उसने [illegible] पर आक्रमण किया और [illegible] हिन्दुओं [illegible] [illegible] महमूद [illegible]

विजय का उल्लास प्रकट किया। महमूद ने जयपाल को अपमानजनक सन्धि स्वीकार करने को बाध्य किया। इस घोर अपमान से दु.खित होकर जयपाल चिता मे जलकर मर गया।

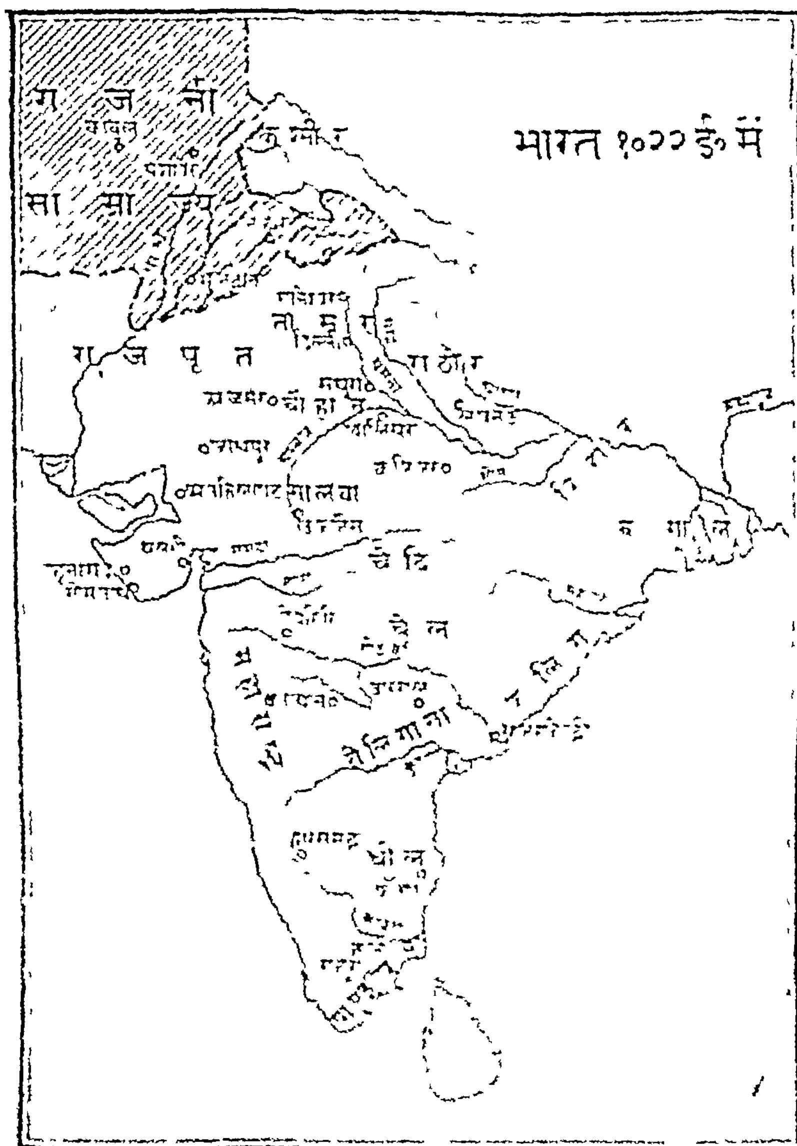
महमूद का तीसरा तूफानी आक्रमण भीम नगर पर हुआ। जिसे विजित करके महमूद ने अपने राज्य में मिला लिया। तत्पश्चात् उसने मुल्तान पर आक्रमण कर दिया। महमूद ने जब गजनी से प्रस्थान किया तो मार्ग की कठिनाइयो के कारण उसे पजाब के शासक आनन्दपाल से यह अनुरोध करना पडा कि वह उसे अपने राज्य से होकर आगे बढ़ने दे। आनन्दपाल मुल्तान के शासक का मित्र था। अत उसने महमूद का अनुरोध अस्वीकार कर दिया। किन्तु महमूद ने उसे पराजित कर दिया और वह बुरी तरह जगल, पहाड और घाटियो में उसका पीछा करता रहा। तत्पश्चात् महमूद ने मुल्तान पर आक्रमण कर दिया। मुल्तान की जनता ने महमूद को २० सहस्र 'दिरहम' दण्डरूप मे दिये।

अपार धन सम्पत्ति लेकर अपने राज्य की स्थिति, जो काशगर के शासक के आक्रमण के कारण डॉवाडोल हो गई थी, सॅभालने के लिए महमूद स्वदेश लौट गया और विजित भारतीय प्रदेशो को सेवकपाल नामक धर्म परिवर्तित हिन्दू को सौप दिया। किन्तु सेवकपाल ने विश्वासघात किया। जिसके फलस्वरूप महमूद ने उस पर आक्रमण कर दिया और उससे ४ सहस्र 'दिरहम' वसूल किया।

मुल्तान के शासक के मित्र आनन्दपाल से अभी महमूद की दिल खोलकर लड़ाई नहीं हुई थी। अत उसने अपना छठाँ आक्रमण आनन्दपाल पर कर दिया जिसने सम्भवत उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, कन्नौज, दिल्ली तथा अजमेर के राजाओ का एक सघ बनाकर आक्रमणकारी का सामना किया। कहा जाता है कि इस विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा के लिए धनी स्त्रियो ने अपने बहुमूल्य रत्न बेच दिये और निर्धनो ने अपनी मजदूरी धन-रूप म दे दी। दोनो सेनाओ मे घोर युद्ध हुआ। खोखरो ने मुसलमानो के छक्के छुडा दिए। किन्तु दुर्भाग्यवश आनन्दपाल का हाथी भयभीत होकर रण क्षेत्र से भाग खडा हुआ और पासा पलट गया। महमूद की विजय हुई और बहुत बड़ी सम्पत्ति उसके हाथ लगी। यहाँ उसे २०० युद्ध के हाथी भी मिले।

महमूद का अगला आक्रमण कागडा के दुर्ग को जीतने के लिए हुआ। इस दुर्ग को नगरकोट भी कहा गया है। यहाँ जन्म जन्मान्तर से हिन्दुओ ने मूर्त्तियो पर अपार धन राशि अर्पित की थी। महमूद के सैनिको ने दुर्ग को घेर लिया। दुर्ग रक्षक सैनिक भाग चुके थे। अत महमूद को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं पड़ी और उसने दिल खोलकर दुर्ग को लूटा। 'उतबी' ने तो उस आक्रमण मे महमूद को जो धन मिला, उसका इतना लम्बा चौड़ा विवरण दिया है कि उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। नगरकोट क्या था 'उतबी' के लिये सोने चाँदी का पहाड़ था। 'फ़िरिश्ता' ने लिखा है कि नगरकोट से महमूद को ७ लाख स्वर्ण दीनारें, ७ मन स्वर्ण और रजतपात्र, २०० मन शुद्ध स्वर्ण मुद्राएँ, २ हजार मन अपरिष्कृत रजत और २० मन रत्न मोती, हीरे, पन्ने, आदि मिले।

१०१० ई० में महमूद ने मुल्तान के विद्रोही शासक दाऊद पर आक्रमण किया और उसे पराजित कर दिया। तीन वर्ष पश्चात् महमूद ने नन्दनाग के शासक भीमपाल पर विजय प्राप्त की।



चित्र २४
महमूद का सबसे अंतिम आक्रमण १०२४ ई० में सोमनाथ पर हुआ।

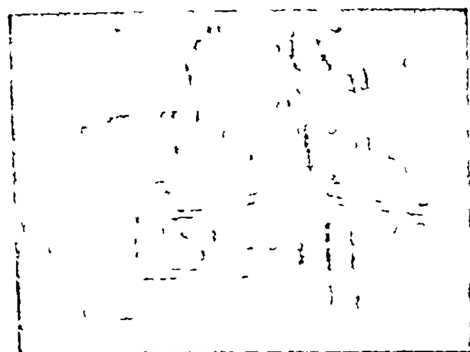
थानेश्वर की रक्षा के लिये हिन्दुओं ने जान हथेली पर लेकर सग्राम किया, किन्तु ये पराजित हुये। उनके शवो से धरती पट गई।

इतनी विजयो के पश्चात् महमूद का साहस काफी बढ़ गया था। अब उसने कन्नौज-नरेश राज्यपाल पर आक्रमण करने की सोची। कन्नौज पूर्व भारत की प्रमुख राजधानी थी। १०१८ ई० मे उसने गजनी से प्रस्थान किया। मार्ग में अनेक हिन्दू दुर्गों का हस्तगत करता हुआ और हजारो हिन्दू सैनिको को मौत के घाट उतारता हुआ, महमूद मथुरा तक पहुँच गया। मन्दिरो का यह देश महमूद द्वारा बुरी तरह लूटा गया। जनवरी १०१८ ई० मे वह कन्नौज के प्रवेशद्वार तक पहुँच गया। राज्य-पाल ने आत्मसमर्पण कर दिया। एक ही दिन मे उसने यहाँ के सातो दुर्गों पर अधिकार कर लिया और नगरवासियो का वध करके उनकी सम्पत्ति छीन ली गई। गजनी लौटते समय भी अनेक दुर्गों पर अपना अधिकार कर लिया। कहा जाता है कि इस अभियान मे महमूद को ३० लाख 'दिरहम' मूल्य की सम्पत्ति, ५५ हजार दास और ३५० हाथी मिले थे।

राज्यपाल के आत्मसमर्पण से क्षुब्ध होकर चन्देल राजकुमार विद्याधर और ग्वालियर के शासक ने उसका वध कर दिया। महमूद अपने अधीन राजा का वध कब सहन कर सकता था, अत उसने चन्देल-नरेश को दण्डित करने के लिये, गजनी से प्रस्थान किया। जमुना पार करने पर उसने देखा कि उसके विरोध मे एक बहुत विशाल सेना लेकर स्वय त्रिलोचन पाल खड़ा है। सौभाग्यवश चन्देल नरेश का साहस छूट गया और वह रणक्षेत्र से भाग गया।

सन् १०२१-२२ में महमूद ने पुन भारत पर आक्रमण किया और उसने ग्वालियर के दुर्ग को जीत लिया। तत्पश्चात् चन्देल नरेश गाण्डय के प्रसिद्ध दुर्ग कालिंजर पर भी उसने अपना अधिकार कर लिया। गाण्डय ने सधि करके अपनी जान बचाई।

महमूद के समस्त आक्रमणों में सबसे अधिक प्रसिद्ध आक्रमण सोमनाथ पर हुआ। सोमनाथ का जगत-प्रसिद्ध मन्दिर काठियावाड के समुद्रतट पर निर्मित था। इस मन्दिर की प्रशसा इतिहास-कारो ने मुक्त कठ से की है। मन्दिर मे अपार धनराशि एकत्रित थी और सोमनाथ की मूर्ति मन्दिर मे निराधार लटका करती थी। इसी मूर्ति पर सोना-चाँदी अर्पित किया जाता था। मूर्ति के निकट ही दो सौ मन की सोने की जजीर थी। महमूद ने मन्दिर पर आक्रमण किया। राजपूतों ने वीरतापूर्वक

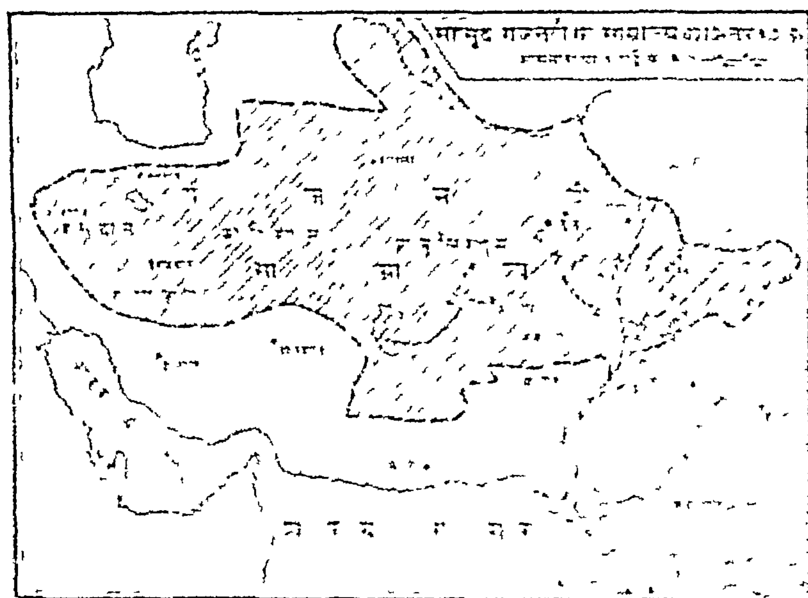


चित्र २५—सोमनाथ का मन्दिर

सामना किया और उसे पीछे ढकेल दिया। दूसरे दिन भी मुसलमानों को पीछे हटना पड़ा। महमूद निराश होने वाला नहीं था। उसने अपने सैनिकों को साहस दिलाया। अन्त में उसकी विजय हुई। ५ हजार हिन्दू धराशायी हुए। कहा जाता है कि जिस समय महमूद मन्दिर में प्रवेश कर रहा था अथवा मूर्ति तोड़ने के लिये बढ़ रहा था उस समय पुजारियों ने गिड़गिड़ा कर प्रार्थना की कि वह चाहे जितना धन ले ले पर मन्दिर को अपवित्र न करे और मूर्ति न तोड़े। महमूद 'बुतफरोश' के नाम से प्रसिद्ध होना नहीं चाहता था प्रत्युत एक सुप्रसिद्ध 'बुतशिकन' बनना चाहता था अतः उसने मूर्ति के दो टुकड़े कर दिये। अपार धन राशि महमूद के हाथ लगी।

जिस समय सोमनाथ के मन्दिर पर आपत्ति पड़ी थी उस समय अनहिलवाड़ा के राजा ने मन्दिर के संरक्षण में भाग लिया था, अतः महमूद ने उसपर भी आक्रमण कर दिया। उसके राज्य के पुरुषों का हत्या करवा कर और स्त्रियों को गुलाम बनाकर १०२६ ई० में महमूद गजनी लौट आया।

महमूद का सत्रहवाँ और अन्तिम आक्रमण १०२७ ई० में मुल्तान के जाटों



चित्र २८

पर हुआ था। जिन्होंने सोमनाथ अभियान से वापस लौटते समय महमूद को तंग किया था। महमूद ने निर्दयतापूर्वक जाटों का दमन कर दिया।

महमूद की [illegible] हो [illegible] थी। [illegible] उसके धर्म के नाम पर [illegible] [illegible] के [illegible]। [illegible]

स्थानो पर हजारों आँखें खून के आँसू बहा रही थी और महमूद के अत्याचारों के नाम पर मानवता कराह रही थी। भारत की अतुल धन सम्पत्ति से गजनी का कोना-कोना भर कर महमूद ने इस्लाम जगत मे काफी नाम कमा लिया था। धन में लोलुप महमूद ने मृत्यु के दो दिन पूर्व ही अपनी सारी सम्पत्ति, चमचमाते हुए हीरे जवाहिरात का ढेर अपने चारो ओर लगाकर देखना आरम्भ किया। सोचा इनमे से एक भी साथ नही जायगा। आँखो से दो बूँद आँसू टपक पड़े। ३० अप्रैल १०३० ई० को उसकी मृत्यु हो गई।

आक्रमणों का प्रभाव

महमूद ने धन प्राप्ति और इस्लामीकरण के लिये जो भयकर आक्रमण किये उनका सन्क्षिप्त ज्ञान हमें प्राप्त हो चुका। वह टिड्डी दल के भाँति आता था और उसी प्रकार लूटता-खसोटता चला जाता था। उसका उद्देश्य यदि सच पूछा जाय तो केवल धन लूटना ही था। भारत मे साम्राज्य निर्माण की कल्पना उसने स्थायी रूप से कभी नहीं की थी। यही कारण है कि उसके आक्रमण का कोई स्थाई प्रभाव भारत पर न पड सका। महमूद के आक्रमण एक घातक आँधी के भाँति थे जिसने लता पुष्पों को जड़ से उखाड फेंका। मथुरा, कन्नौज आदि जैसे कला केन्द्रों को धराशायी बनाकर महमूद ने कला के अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरणों का अन्त कर दिया। प्रोफेसर हबीब ने ठीक ही लिखा है कि "महमूद की विजय हिन्दुओं के नैतिक विश्वास को डिगा न सकी और उसके धर्म (इस्लाम) को स्थायी निन्दा प्राप्त हुई। हमारे देश के वास्तविक इतिहास से महमूद का कोई सम्बन्ध नहीं था।" इतना होते हुए भी महमूद के आक्रमण का कुछ स्थायी प्रभाव पडा है। जिन्हें हम संक्षेप में इस प्रकार अंकित कर सकते हैं—

१ **भावी आक्रमणों की भूमिका**—अरबो ने भारत पर जो आक्रमण किये थे व इतने प्रभावशाली नहीं सिद्ध हो सके। किन्तु महमूद के आक्रमणों ने भावी आक्रमणकारियो को उसी मार्ग से रण अभियान करने की प्रेरणा दी। उत्तर पश्चिम से होने वाले समस्त आक्रमण महमूद द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से ही हुये।

२ **भारत की राजनीतिक दुर्बलता का प्रकाशन**—महमूद के आक्रमणो ने यह सिद्ध कर दिया कि भारत का राजनीतिक संगठन अत्यन्त दुर्बल है। इस तथ्य को प्रकाशित करके महमूद ने भावी आक्रमणकारियो को अप्रत्यक्ष प्रोत्साहन प्रदान किया।

३ **भारतीय सम्पत्ति और कला की क्षति**—हिन्दू दुर्गों, मन्दिरों और मठो को लूट कर महमूद ने देश को दरिद्र बना दिया। मन्दिरों मे युग-युग की संचित थाती गजनी दरबार मे चली गयी। कला के उत्कृष्ट वस्तुओं का विध्वंस करके महमूद ने भारतीय गौरव को कम कर दिया। आज यदि उस समय की समस्त कलाकृतियाँ विद्यमान रहती तो हमें तत्कालीन कला पर गर्व होता।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. भारत पर तुर्की आक्रमण के समय वहाँ की राजनीतिक अवस्था क्या थी ?

२. महमूद गजनवी ने किस उद्देश्य से भारत पर आक्रमण किया था ? क्या यह सच है कि उसका उद्देश्य केवल धन लूटना था ?

३. महमूद गजनवी के कुछ प्रमुख आक्रमणों का उल्लेख करते हुए बतलाइए कि इन आक्रमणों से उसे क्या लाभ हुआ ?

४. 'महमूद गजनवी के आक्रमणों का प्रभाव' शीर्षक एक लेख लिखिये ।

कन्नौज पर आक्रमण—११९४ ई० में मुहम्मद ने कन्नौज के राजा जयचन्द पर आक्रमण किया। युद्ध में जयचन्द की विजय होने ही वाली थी कि वह घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। राजपूत सेना भाग चली। मुहम्मद गोरी कन्नौज जीतने के पश्चात् पेशावर से लेकर बनारस तक के भू-भाग का अधिकारी बन गया।

जिस समय मुहम्मद गोरी कन्नौज विजय मे लीन था उसी समय पृथ्वीराज के भाई हरीराज ने दिल्ली विजय के लिये एक सेना भेजी थी जो ऐबक द्वारा पराजित कर दी गई।

बयाना तथा ग्वालियर पर आक्रमण—मुहम्मद गोरी ने ११९५-९६ ई० में बयाना और ग्वालियर विजय के लिए प्रस्थान किया। किन्तु ग्वालियर पर वह कठिनता से विजय पा सका। ग्वालियर नरेश ने कर देने का वचन दिया, मुहम्मद ने उसका राज्य लौटा दिया।

राजपूताना में भयकर विद्रोह—जब राजपूतो ने देखा कि तुर्क भारतवर्ष में स्थायी रूप से जम जाना चाहते है तो उन्होने उनके विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा करने का निश्चय किया। मेड़ो तथा अन्य चौहान विरोधी सामन्तो ने विद्रोह को सशक्त बनाने के लिये अन्हिलवाड़ा के चालुक्य-नरेश को आमंत्रित किया। इस प्रकार तुर्कों के विरुद्ध यह विद्रोही सघ निर्मित हुआ। अजमेर के एक तुर्क शासक ने तुरन्त कुतुबुद्दीन ऐबक से सहायता माँगी। ऐबक सेना सहित बटनास्थल पर पहुँचा। मेड़ो पर उसका आक्रमण हो ही रहा था कि सहसा गुजरात से एक सेना आ गई जिसने ऐबक को पराजित कर दिया। ऐबक ने दुर्ग म शरण ली और राजपूतो ने घेरा डाल दिया। गोरी ने सूचना पाते ही एक सेना भेजी जिसने ऐबक की रक्षा की।

जान बचने के बाद ऐबक ने हार का बदला लेने के लिये गुजरात पर आक्रमण कर दिया। गुजरात जीत लिया गया। अन्हिलवाड़ा म दिल खोल कर लूट हुई। ऐबक का गुजरात पर विजय तो अवश्य प्राप्त हो गई किन्तु वहाँ तुर्क शासन नही स्थापित हो सका।

ऐबक की अन्य विजऐं—मुहम्मद गोरी की ओर से कुतुबुद्दीन ऐबक भी राज्य विस्तार की ओर प्रयत्न करते थे। पाँच-छः वर्ष के भीतर ही उसने अनेक छोटे-छोटे युद्ध करके कई राजाओ को आतंकित किया और कुछ को अपने राज्य मे मिला लिया।

बुन्देलखण्ड विजय—१२०२-३ ई० मे तुर्कों का भयंकर आक्रमण बुन्देलखण्ड के शासक परमर्दिन चंदेल पर हुआ। परमर्दिन ने सन्धि की बातें प्रारम्भ की किन्तु बीच मे ही उसका देहान्त हो गया और उसके मन्त्री जयदेव ने युद्ध जारी रक्खा पर दुर्भाग्यवश जलाभाव के कारण उन्हें पलायन कर जाना पड़ा। कालिंजर, महोबा तथा खजुराहो पर तुर्की शासन स्थापित हुए।

बिहार तथा बङ्गाल विजय—मुहम्मद गोरी के अनुयायी इख्तियारुद्दीन मुहम्मद बिन बख्तियार ११९७ ई० में बिहार पर तुर्की आधिपत्य स्थापित कर दिया। बख्तियार के सैनिकों ने बिहार के बौद्धों का बुरी तरह विनाश किया था। ११९९ ई० में उसने बङ्गाल पर भी आक्रमण कर दिया और बङ्गाल का शासक भाग कर भाग निकला। बख्तियार ने लखनौती को अपनी राजधानी बनाई। बङ्गाल का कुछ ही भाग उसके अधीन हो पाया था क्योंकि पूर्वी बंगाल में अब भी सेन वंश का शासन स्थापित था।

मुहम्मद गोरी की मृत्यु—अपने बड़े भाई की मृत्यु के पश्चात् मुहम्मद गोरी गजनी का एकछत्र सुल्तान बन गया था। साम्राज्य विस्तार के लिये उसने ख्वारिज्म पर आक्रमण किया था किन्तु उसे अपनी पराजय देखनी पड़ी। इधर गजनी में उसकी हार उधर पंजाब में खोखरों ने विद्रोह किया। ऐबक की सहायता से खोखरों का विद्रोह तो दबा दिया गया, किन्तु उनका षड्यन्त्र चलता रहा और १२०६ ई० में एक खोखर ने मुहम्मद गोरी की हत्या कर दी।

मुहम्मद गोरी का चरित्र—लेनपूल का यह कथन कि मुहम्मद विद्वानों को प्रश्रय नहीं देता था सर्वथा असत्य है। मिनहाज-उस-सिराज तथा फिरिश्ता ने मुहम्मद की न्यायप्रियता, उदारता तथा विद्वानों के प्रति आदर भाव की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। फिरिश्ता के शब्दों में 'उसकी प्रकृति न्यायपरायण शासकों जैसी थी, (वह) ईश्वर से डरने वाला, तथा हृदय से सदा प्रजा की भलाई का ध्यान रखने वाला था।' वह एक वीर योद्धा होने के साथ-साथ दूरदर्शी राजनीतिज्ञ भी था। उसने अपने बाहुबल से ही अपने पूर्वजों के छोटे से पहाड़ी राज्य को एक विशाल साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया था। यह उसकी राजनीतिज्ञता एवं दूरदर्शिता का ही परिणाम है कि वह भारत की राजनीतिक दशा को ठीक ठीक समझ सका और इस निष्कर्ष पर पहुँच सका कि भारत में मुसलमानों का स्थायी राज्य स्थापित हो सकता है। वह न तो महमूद की तरह धर्मान्ध ही था और न धनलोलुप। धनलिप्सा ने महमूद की राजनीतिक महत्वाकांक्षा की राह में बाधा बना दिया था। वह भारत में एक तूफान की तरह आता और उसकी अतुल धनराशि लूट कर गजनी लौट जाता। अतः हम यह कह सकते हैं कि महमूद ने भारतीय [illegible] का [illegible] धन और लूटी [illegible] था। किन्तु दूसरी ओर मुहम्मद एक सच्चा निर्माता था। उसने देश को जीत कर स्थायी राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया।

मुहम्मद की सफलता का सबसे बड़ा कारण यह था कि उसमें किसी भी परिस्थिति को समझने की अपूर्व क्षमता थी। उसमें धैर्य था, वह कष्टसहिष्णु था। वह अपनी किसी भी पराजय को अन्तिम पराजय मानने के लिए तैयार न था। एक बार किसी युद्ध की प्राप्ति में असफल होने पर वह [illegible] के लिए दूने उत्साह से तैयारी करने लगता था और जब तक [illegible] को [illegible] में [illegible] नहीं [illegible] तब तक वह युद्ध की ओर नहीं मोड़ता था। उसमें मनुष्यों की परख की अपूर्व क्षमता थी। यही कारण है कि उसे ऐबक तथा बख्तियारुद्दीन जैसे सेनापतियों की सहायता प्राप्त थी।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ मुहम्मद गोरी कौन था। उसने किस उद्देश्य से भारत पर आक्रमण किया था ?

२. मुहम्मद गोरी के आक्रमणों का उल्लेख करते हुए बतलाइये कि उसे अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई ?

३ सोमनाथ और थानेश्वर के युद्धों में महमूद गजनवी ने जो नृशसता दिखलाई थी क्या वैसी कभी और देखने को मिली थी ?

अध्याय ३७

तुर्क साम्राज्य का प्रसार (दास वंश)

कुतुबुद्दीन ऐबक

मुहम्मद गोरी के युद्धों के सम्बन्ध में पढ़ते समय हमने कुतुबुद्दीन ऐबक का उल्लेख किया था। यहाँ हम उसके सम्बन्ध में कुछ विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे। मुहम्मद गोरी की मृत्यु के पश्चात् उसका भतीजा गयासुद्दीन गोरी का शासक हुआ किन्तु उसे दुर्बल पाकर उसके तुर्क सरदारों ने जिनमें यल्दौज, कुबाचा और ऐबक ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया। यल्दौज ने तो गजनी पर भी अधिकार कर लिया। इसी प्रकार कुबाचा ने सम्पूर्ण सिन्ध को अपने अधीन कर लिया।

ऐबक का प्रारम्भिक जीवन—मुहम्मद गोरी के सरदारों में ऐबक सर्वशक्तिमान था। वह अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में निशापुर के काजी द्वारा खरीदा गया था। काजी ने उसके इस दास की शिक्षा-दीक्षा का सुन्दर प्रबन्ध किया। तत्पश्चात् वह मुहम्मद गोरी के हाथ बेचा गया। हम पढ़ चुके हैं कि ११९२ और ११९७ के बीच अनेक छोटे-छोटे शासकों और भारतीयों के अनेक विद्रोहों को दबाने में और इस प्रकार नव-स्थापित मुस्लिम राज्य की रक्षा में ऐबक ने प्रशंसनीय कार्य किया था। ११९७ से १२०५ ई० तक ऐबक ने चन्देलों और गहड़वालों की पराजय में अद्भुत वीरता दिखलाई थी। वास्तव में ऐबक ही ऐसा व्यक्ति था जिसने भारत में तुर्की साम्राज्य की नींव डाली थी। यही कारण था कि भारत के समस्त तुर्क अधिकारी ऐबक को अपना प्रधान समझने लगे थे। ऐबक के लिए सरल हुआ था कि वह अपने को भारत में स्वतन्त्र शासक घोषित कर दे और गजनी से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखे।

कुतुबुद्दीन भारत का सुल्तान—गयासुद्दीन का राज्य गोर और गजनी के पास में सीमित था। उस समय गोरी वंश उत्तरोत्तर दुर्बल होता जा रहा था। यदि कुतुबुद्दीन ऐबक भारतीय तुर्की साम्राज्य को गोर राज्य से पृथक् किए रखता तो निश्चय ही गयासुद्दीन का भाग्य भारत तक बढ़ जाता। तब गोर राज्य के अधिकारी गयासुद्दीन महमूद ने ऐबक को सूचना भेजी कि यदि उसे भारत का सुल्तान नियुक्त कर दिया जाए तो वह ख्वारिज्म के विरुद्ध उसकी सहायता करेगा। तब उसने ऐबक के पास एक खिलअत, छत्र, दूर-बाश, पताका तथा नक्कारा भेज दिया। ये सब राजसत्ता के चिह्न थे। इस प्रकार ऐबक भारतीय तुर्की राज्य का अधिष्ठाता स्वीकार किया गया। लाहौर में उसका विधिपूर्वक राज्याभिषेक हुआ।

ऐबक की कठिनाइयाँ और उनका निराकरण

यद्यपि ऐबक को सुल्तान घोषित कर दिया गया था तथापि कोई भी दास सुल्तान नहीं हो सकता था और ऐबक अभी दासता से मुक्त नहीं हो पाया था। यह एक

१२०६ ई० मे भारत

चित्र २०

समस्या थी। सौभाग्यवश १२०८ ई० में गयासुद्दीन ने उसे स्वतन्त्र कर दिया और अब वह हर प्रकार से सुल्तान बनने के योग्य हो गया। ऐबक के सामने एक दूसरी

कठिनाई यह थी कि भारत स्थित तुर्क सरदारों में से कुछ महत्त्वाकांक्षी थे। कुछ अन्य अधीनस्थ सरदार भी स्वतन्त्र राज्य निर्माण का स्वप्न देख रहे थे। ऐबक के लिए यह एक समस्या बन गई थी। मुल्तान और उच्छ का शासक कुबाचा ऐसे ही सरदारों में से एक था। ऐबक ने दूरदर्शिता से काम लिया और कुबाचा को अपना दामाद बनाकर उसे अपने अधीन कर लिया। अली मर्दान खिलजी एक दूसरा सरदार था जिसने इख्तियारुद्दीन का वध करके अपने को बंगाल का शासक घोषित कर दिया था। वह भी तुर्की राज्य से बंगाल को स्वतन्त्र रखना चाहता था। इख्तियारुद्दीन का [illegible] खिलजी सरदार अलीमर्दान से [illegible] और इसलिए वह पहले बंगाल में जड़ नहीं जमा सका था, किन्तु बाद में कुतुबुद्दीन ऐबक ने स्वयं उसके इस कार्य में सहायता की क्योंकि ऐबक जानता था कि अन्य कठिनाइयों में फँसे रहने के कारण वह बंगाल में तुर्क राज्य को स्थापित नहीं बनाये रख सकता, पर अलीमर्दान को सहायता देकर और उसे बंगाल का शासक बनाकर ऐबक ने चतुराई से काम लिया। ऐबक की तीसरी कठिनाई थी परिस्थितिवश गजनी की समस्या। यल्दौज ने गजनी पर अधिकार कर लेने के बाद स्वयं को स्वदेश या विदेश के समस्त तुर्क साम्राज्य का मालिक समझना आरम्भ किया। कारण यह था कि प्रारम्भ में गजनी ही तुर्की साम्राज्य का केन्द्र था। ऐबक को उससे भी अधिक खतरा ख्वारिज्म के शाह से था। ऐबक ने तुरन्त कुबाचा को मिलाकर पंजाब की सुरक्षा की व्यवस्था करना आरम्भ कर दिया। यल्दौज ने कुबाचा पर आक्रमण कर दिया किन्तु ऐबक ने न केवल उसे पराजित कर दिया प्रत्युत उसने गजनी पर भी अधिकार कर लिया। पर वहाँ उसका शासन स्थायी न बन सका और १२०८ ई० में लगभग ४० दिन तक गजनी पर शासन करने के बाद ऐबक को लाहौर आना पड़ा। माना कि ऐबक गजनी में शासन नहीं कर सका पर इतना तो हो गया कि अब यल्दौज का साहस भारत की ओर देखने का न रह गया।

इन कठिनाइयों के अतिरिक्त आपत्ति के समय सबसे बड़ी कठिनाई थी राजपूत विद्रोह। चन्देल और परिहारों ने क्रमशः कालिंजर और ग्वालियर के दुर्गों पर अधिकार स्थापित करके वहाँ के तुर्कों को मार भगाया था। इसी प्रकार [illegible] के अनेक छोटे-छोटे राजे, [illegible] और [illegible] तुर्कों के विरुद्ध खड़े हो गये थे और उन्होंने कई तुर्क शासकों को मार भगाया था। ऐबक ने एक एक कर समस्त राजपूत विद्रोहियों को दबा दिया। किन्तु कालिंजर और ग्वालियर पर वह अधिकार न कर सका था क्योंकि चौगान खेलते समय, १२१० ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

कुतुबुद्दीन ऐबक का चरित्र—कुतुबुद्दीन एक महान सेनानायक था जिसमें साहस, [illegible] कूट-कूट कर भरी हुई थी। उसने इन्हीं गुणों के कारण ही वह अपने स्वामी का विश्वासपात्र बन सका था और दास से सुल्तान के पद पर पहुँच सका था। [illegible] उसकी प्रशंसा की है परन्तु उसके शासन में [illegible] का [illegible] नहीं हुआ

था। परन्तु जो भी हो जैसा कि हसन निजामी ने लिखा है कि अपने अदम्य उत्साह तथा शुद्ध विश्वास के कारण वह राज्य तथा राजसिंहासन के योग्य था। मुहम्मद गोरी की योजनाओं को कार्यान्वित करने में परामर्श आदि द्वारा सफलीभूत बनाने का श्रेय ऐबक ही को है। उसमें सगठन करने की भी अद्भुत क्षमता थी। गोरी के विजयों से प्राप्त साम्राज्य को सगठित कर उसमें शान्ति एव सुव्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न उसने दक्षता के साथ किया। भारत की राजनीतिक परिस्थिति को समझने मे उसने अपनी राजनीतिज्ञता का परिचय दिया है।

कुतुबुद्दीन एक उदारहृदय तथा न्यायप्रिय शासक था। 'ताज-उल्-मासिर' के लेखक हसन बिन निजामी ने उसकी न्यायप्रियता के सम्बन्ध मे कहा है कि उसके राज्य मे भेड़ और भेड़िया एक ही घाट पानी पीते थे। 'तबकत-ए-नमीरी' का लेखक उसके चरित्र पर वास्तविक रूप मे प्रकाश डालता है। जब वह यह कहता है कि वह लाखो का दान करता था और हत्याएँ भी इतनी ही विपुल सख्या मे करता था। मुसलमान लेखको ने उसको 'लाख बख्श' (लाखो का दान देने वाला) की उपाधि से विभूषित किया है। लेखको के कथनानुसार यद्यपि "खुदा की राह पर लड़ने वाले शक्तिशाली योद्धा" की तरह युद्धो मे उसने हजारो हिन्दुओ को दास बनाया था, तथापि अन्य अवसरो पर उनके प्रति उसका व्यवहार दयापूर्ण रहा। फिर भी हमे यह मानना पड़ेगा कि ऐबक धर्मसहिष्णु नहीं था। वह युग ही सहिष्णुता का न था। स्मिथ महोदय ने उसका वर्णन एशिया के क्रूर तथा निर्दयी विजेताओ मे किया है। वह लाखों का दान करता था और लाखो की हत्या भी—इस कथन से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि मुसलमानो के लिए वह बड़ा दानी तथा उदार था, परन्तु हिन्दुओ के लिए बड़ा नृशस एव निर्दयी था।

आराम शाह

लाहौर के तुर्क सरदारों ने अपने यहाँ आराम शाह का अभिषेक कराया। इस पर दिल्ली के तुर्क सरदार अप्रसन्न हुए। उनकी अप्रसन्नता का कारण सम्भवत व्यक्तिगत स्वार्थ ही था। अन्यान्य साक्ष्यों से यह ज्ञात होता है कि आराम शाह ऐबक-पुत्र न था। 'मिनहाजुस्सिराज' से भी इस मत का समर्थन हो जाता है, किन्तु आराम शाह जैसे अकर्मण्य व्यक्ति को आखिर सुल्तान बनाने के पीछे कौन सी बात थी? जो भी हो इधर ऐबक की मृत्यु हुई उधर तुर्को की पारस्परिक फूट का जन्म। मुल्तान मे कुबाचा और बगाल मे अलीमर्दान स्वतन्त्र हो गये। दिल्ली के तुर्क सरदारो ने बदायूँ के गवर्नर इल्तुतमिश को सुल्तान पद पर सुशोभित करने के लिए आमन्त्रित किया। इधर इल्तुतमिश बदायूँ से दिल्ली चला और उधर आराम शाह ने लाहौर से प्रस्थान किया, किन्तु इल्तुतमिश ने उसे युद्ध में हराकर दिल्ली का राजसिंहासन हस्तगत कर लिया। इल्तुतमिश से इल्बरी तुर्को का शासन प्रारम्भ होता है।

भारत मे तुर्की राज्य की स्थापना के लिए अब तक जितने भी प्रयास किए गए थे उनका पूर्ण विवरण हमे प्राप्त हो चुका। भारतीय तुर्क राज्य के निर्माण के इन

प्रारम्भिक प्रयासों को सम्भवतः स्थायित्व नहीं प्राप्त हो सका होता, यदि इल्तुतमिश जैसा वीर योद्धा और महान् संगठनकर्त्ता तुर्कों में न हुआ होता। उसके कार्यों का पूर्ण प्रभाव हम अगले अध्याय में जानेंगे।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. मुहम्मद गोरी की मृत्यु के पश्चात गोरी साम्राज्य की अधोगति का उल्लेख करते हुए यह बतलाइए कि भारतीय तुर्की साम्राज्य पर इसका क्या प्रभाव पड़ा ?

२ कुतुबुद्दीन ऐबक कौन था ? उसने किस प्रकार अपने को सुल्तान पद पर आसीन किया ?

३ कुतुबुद्दीन ऐबक की कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए बताइए कि उसने किस प्रकार उन पर विजय प्राप्त की।

४. कुतुबुद्दीन ऐबक को भारत में तुर्की साम्राज्य की स्थापना का श्रेय देना कहाँ तक उचित है ?

अध्याय ३८

तुर्की साम्राज्य का निर्माण और प्रसार

इल्तुतमिश और रजिया

इल्तुतमिश का प्रारम्भिक जीवन—अपने भाइयों की अनुचित ईर्ष्या के कारण इल्तुतमिश को सौदागरों के हाथ बिकना पड़ा। कई हाथों में बिकता-बिकाता वह कुतुबुद्दीन के हाथ बिका। दासता का जीवन इल्तुतमिश ने बड़े धैर्य और साहस के साथ बिताया।

इल्तुतमिश का विकास—अपने श्रम और कुशलता से इल्तुतमिश ने बहुत शीघ्र कुतुबुद्दीन को प्रसन्न कर लिया और कुतुबुद्दीन ने उसे ग्वालियर का अमीर नियुक्त कर दिया। तत्पश्चात् वह बदायूँ का गवर्नर नियुक्त हुआ। हम देख चुके हैं कि किस प्रकार अपनी भुजाओं के बल पर इल्तुतमिश आराम शाह के स्थान पर दिल्ली का सुल्तान बन बैठा।

इल्तुतमिश की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ और उन पर विजय

जिस समय इल्तुतमिश दिल्ली के सिंहासन पर बैठा उस समय उसके सम्मुख अनेक कठिनाइयाँ आ पड़ीं जिनमें से कुछ का संकेत नीचे किया जा रहा है —

१ **खिलजी मलिक के उपद्रव**—बिहार तथा बंगाल में खिलजी मलिक उत्तरोत्तर अपनी शक्ति में वृद्धि करते जा रहे थे और उन्होंने वहाँ अपना स्वतन्त्र शासन स्थापित कर लिया था। इनसे दिल्ली सल्तनत को बहुत बड़ा आघात पहुँचने की आशंका थी।

२ **कुबाचा का विकास**—पश्चिमोत्तर सीमा में कुबाचा ने अपनी शक्ति इतनी अधिक बढ़ा ली थी कि बहुत शीघ्र वह दिल्ली तक पहुँच जाता। कुबाचा का यह विकास इल्तुतमिश के लिए घातक सिद्ध होता।

३ **इल्दोज की बहक**—हम जानते हैं कि इल्दोज गजनी का शासक था और इसलिए वह अपने को मुहम्मद गोरी का सीधा उत्तराधिकारी समझता था। इस आधार पर इल्तुतमिश को वह अपना प्रान्तपति मानता था। उसने अपने इस विचार का प्रकाशन भी किया। इल्तुतमिश चुप रहा, सोचा अवसर आने पर उत्तर दूँगा।

४ **राजपूतों का विद्रोह**—कालिंजर, ग्वालियर, रणथम्भोर, जालोर आदि देखते-देखते तुर्क राज्य से निकल बाहर हुये थे। इन राजपूत राज्यों की स्वतन्त्रता शासन हो बड़ा घातक सिद्ध होती।

५ **सेना की समस्या**—तलवार के बल पर टिका हुआ यह तुर्क शासन सर्वदा सैनिक संगठन की अवस्था पर अवलम्बित था। इल्तुतमिश के सिंहासनारोहण के

समय सेना की व्यवस्था कुछ शिथिल सी थी। तुर्की सेना दो भागों में विभक्त हो गई थी। एक भाग लाहौर तथा दूसरा दिल्ली में था। शीघ्रातिशीघ्र सैनिक संगठन की समस्या स्वयं ही सुलझ गई और दिल्ली सेना के प्रधान सेनापति इस्फहसालार ने ही इल्तुत-मिश को सिंहासनारोहण के लिए आमन्त्रित किया था।

३. अनधिकारी की समस्या—इल्तुतमिश एक दास का दास था। ऐसी दशा में उसे सुल्तान के रूप में स्वीकार करना तुर्क अमीरों को सहन न था। बहुत से कुत्बी तथा मुइज्जी अमीरों ने इल्तुतमिश को अपना सुल्तान स्वीकार नहीं किया। इस विरोध से इल्तुतमिश का कुछ भी नहीं बिगड़ सका और उसने [illegible] सरदारों की सफलता से इनका अन्त कर दिया।

इल्तुतमिश की विजयें

मध्यदेशीय विद्रोहों का दमन—मध्य देश के कुत्बी और मुइज्जी अमीरों ने जो विद्रोह कर दिया था उसके दमनार्थ इल्तुतमिश ने सबसे पहले कदम उठाया और अमीरों की लड़ाई के पश्चात् उसने दिल्ली, बदायूं, अवध, बनारस तथा तराई क्षेत्र के तुर्क सरदारों एवं हिन्दू राजाओं को दबाकर उनसे अपनी अधीनता स्वीकार करा ली।

पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा—कुबाचा की शक्ति का दमन करना परम आवश्यक था क्योंकि उसके हाथ मुल्तान की प्रसिद्ध सल्तनत थी। पश्चिमोत्तर सीमा पर ही यल्दौज का दमन आवश्यक था क्योंकि वे पंजाब पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहते थे। इल्तुतमिश ने यल्दौज को बाध्य किया कि वह उसे दिल्ली का सुल्तान स्वीकार कर ले। यल्दौज ने उसे दिल्ली का सुल्तान स्वीकार तो कर लिया किन्तु मन से इल्तुतमिश का प्रभाव स्वीकार न था। इल्तुतमिश [illegible] प्रारम्भ में ही [illegible] चुका है, अवसर देखकर युद्ध करेगा [illegible] था।

यल्दौज का पराजय

यल्दौज ने कुबाचा को भी अपने अधीन करने के उद्देश्य से युद्ध का आरम्भ कर दिया। लाहौर तथा पंजाब के अधिकांश भाग पर यल्दौज का अधिकार हो गया। किन्तु शीघ्र उसे इल्तुतमिश से लड़ना पड़ा। तराइन के मैदान में इल्तुतमिश ने यल्दौज को पराजित कर दिया।

कुबाचा की पहली पराजय—कुबाचा ने यल्दौज की पराजय के बाद लाहौर पर अपना अधिकार कर लिया था और [illegible] की [illegible] को स्वीकार कर ली थी। किन्तु इल्तुतमिश ने उसको [illegible] कर दिया। [illegible] सन् १२१७ ई० में उसने लाहौर विजय के लिए [illegible]। कुबाचा भाग गया। लाहौर पर इल्तुतमिश का अधिकार हो गया।

मंगोल संकट और कुबाचा—[illegible] पश्चात् के [illegible] चंगेज खाँ के [illegible] ने [illegible] आरम्भ कर दिया। [illegible] भारत की ओर भाग गया। [illegible]

करके पंजाब चला आया। कुबाचा के हाकिमों को निकाल कर उसने लाहौर पर अपना अधिकार कर लिया। इल्तुतमिश से जलालुद्दीन ने मंगोलों के विरुद्ध सहायता माँगी, किन्तु इल्तुतमिश दूरदर्शी था। वह इस प्रकार मंगोलों को भारत में आक्रमण करने अथवा जलालुद्दीन को दिल्ली पर अधिकार जमाने का अवसर नहीं देना चाहता था, अतः उसने जलालुद्दीन का वध करवा दिया। जलालुद्दीन बहुत अप्रसन्न हुआ और खोखरों के राजा से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके पंजाब तथा सिन्ध पर अपना प्रभाव बढ़ाने लगा। इल्तुतमिश जलालुद्दीन के विरुद्ध पंजाब की ओर बढ़ा। जलालुद्दीन खोखरों के साथ कुबाचा को लूटने में लगा था। इसी बीच उसे खुरासान में अपने समर्थकों की बढ़ती हुई संख्या का उसे बोध हुआ। अत: १२२४ में वह स्वदेश लौट गया। जलालुद्दीन ने तो कुबाचा की शक्ति को क्षीण कर ही दिया था, मंगोल तथा खिल्जी तुर्कों ने भी उसे बुरी तरह उलझा दिया।

कुबाचा की अन्तिम पराजय—१२२७ ई० में इल्तुतमिश ने भटिन्डा, कुहरान तथा सरस्वती पर अधिकार स्थापित करता हुआ लाहौर पर आक्रमण कर दिया और लाहौर के हाकिम को मुल्तान का घेरा डालने का आदेश देकर स्वयं उच्छ की ओर बढ़ा। कुबाचा भाग गया और उसने भक्कर में शरण ली। सुल्तान के सैनिकों ने वहाँ भी उसका पीछा किया। जब वह अपना कोष लेकर नाव द्वारा भाग रहा था तो उसकी नौका डूब गई और उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। उत्तरी सिन्ध पर इल्तुतमिश का पूर्ण अधिकार हो गया। दक्षिणी सिन्ध के शासक ने भी उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

पंजाब विजय—खोखर तथा सैफुद्दीन करलुग अब भी दो शत्रु पंजाब में इल्तुतमिश का सामना करने के लिए बच गये थे किन्तु इल्तुतमिश ने खोखरों के दमन के लिए कई चौकियाँ स्थापित कीं। वहाँ प्रबल सैनिक संगठन कर देने के कारण इल्तुतमिश की बराबर विजय होती गई और इस प्रकार मध्यवर्ती, उत्तर पूर्वी एवं पूर्वी पंजाब पर इल्तुतमिश का अधिकार हो गया।

बंगाल विजय—हम पढ़ चुके हैं कि बंगाल ऐबक की मृत्यु के पश्चात् से ही स्वतन्त्र हो गया था, किन्तु अत्याचारी शासक अलीमर्दान से ऊबकर जनता ने विद्रोह कर दिया था और गयासुद्दीन को उन्होंने अपना शासक चुन लिया था। गयासुद्दीन ने बंगाल के हिन्दू राजाओं को अपनी अधीनता स्वीकार करने पर बाध्य किया। लोकप्रिय होने के कारण उसकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

दक्षिण बिहार पर अधिकार स्थापित करने के पश्चात् गयासुद्दीन की बढ़ती ताकत को दबाने के लिए इल्तुतमिश ने १२२५ ई० में बंगाल की ओर प्रस्थान किया। गयासुद्दीन ने डर कर सन्धि कर ली। इल्तुतमिश ने बिहार में अपना शासक नियुक्त कर दिया और वह दिल्ली लौट आया। किन्तु शीघ्र ही उसने सन्धि की सभी शर्तें तोड़ दीं और बिहार के शासक को मार भगाया। यह सूचना पाते ही इल्तुतमिश ने अपने पुत्र नासिरुद्दीन महमूद को उचित अवसर पाकर गयासुद्दीन पर आक्रमण करने का आदेश भेजा। उसने गयासुद्दीन को पराजित कर दिया। महमूद बंगाल का शासन करने लगा। किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् ही बंगाल में दो सरदारों ने स्वतन्त्रता की

घोषणा कर दी। संयोगवश उन दोनों में पारस्परिक संघर्ष छिड़ गया। ठीक अवसर पर इल्तुतमिश ने बंगाल पर दूसरी बार आक्रमण किया और उसने समस्त विरोधियों का अन्त कर दिया।

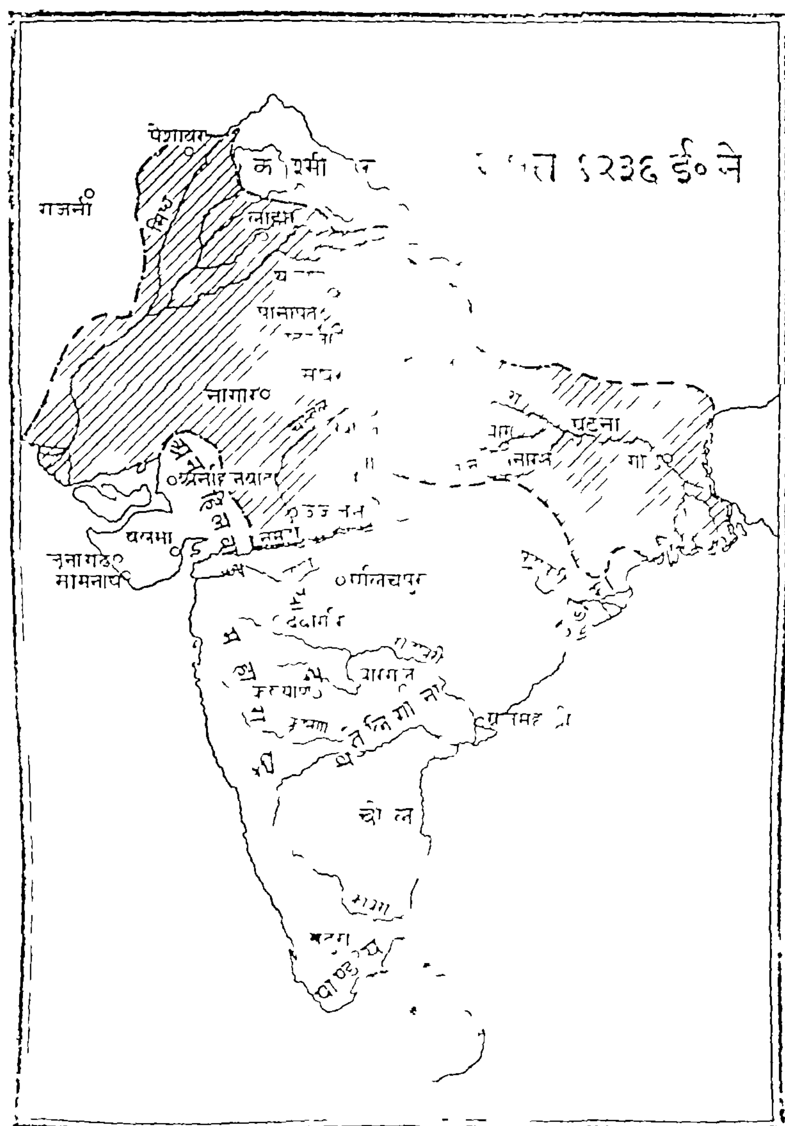
राजपूतों से संघर्ष—हम देख चुके हैं कि १२२५ ई० तक इल्तुतमिश पश्चिमोत्तर सीमा की समस्याओं को सुलझाने में बुरी तरह लगा हुआ था। पूर्व की ओर भी अभी उसे तुर्क सरदारों को दबाना शेष था। अपनी परिस्थिति का पूर्ण ध्यान रखते हुए इल्तुतमिश ने किसी भी स्वतन्त्र राजपूत राज्य से, अजमेर को छोड़कर, युद्ध नहीं किया। किन्तु समस्याओं पर पूर्ण विजय पाने के पश्चात उसने इनकी शक्ति का दमन करना अत्यन्त आवश्यक समझा, क्योंकि राजपूताने में चौहान, जालौर में उदय सिंह तथा रणथम्भौर में [illegible] ने अपनी शक्ति बहुत अधिक बढ़ा ली थी। इसी प्रकार चन्देलों और परिहारों की शक्ति मध्य भारत और बुन्देलखण्ड में बहुत बढ़ गई थी।

इल्तुतमिश ने १२२६ ई० से इन राजपूत राज्यों की ओर अपना ध्यान दिया और चार वर्ष के भीतर ही उसने रणथम्भौर, मन्दौर, जालौर, अजमेर, बयाना, थनगढ़ तथा सांभर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। १२३१ में उसने ग्वालियर भी जीत लिया और १२३३ ई० में उसने चन्देलों तथा १२३४-३५ में उज्जैन और भिलसा विजय के लिए सेनाएँ भेजीं किन्तु इल्तुतमिश की विजय अस्थायी ही सिद्ध हुई। इन राजपूत युद्धों के अतिरिक्त कुछ अन्य छोटे-मोटे राजपूत राज्यों से भी इल्तुतमिश का संघर्ष हुआ था। इल्तुतमिश ने इन राजपूत राज्यों का [illegible] कर देने के लिए [illegible] किया था और वहाँ तुर्की [illegible] रखकर सदा के लिए राजपूत विद्रोहों का अन्त कर दिया।

दोआब की पुनर्विजय—गंगा यमुना के बीच का भूभाग दोआब कहलाता है। इल्तुतमिश जिस समय राजधानी से दूर राजपूतों के विद्रोह का दमन कर रहा था ठीक उसी समय उसे व्यस्त देख कर उत्तर प्रदेश के हिन्दू [illegible] ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी जिनमें बनारस, कन्नौज तथा बदायूँ प्रमुख थे। [illegible] को छोड़कर रुहेलखण्ड भी पूर्ण स्वतन्त्र हो गया। ज्यों ही इल्तुतमिश को राजधानी के विद्रोहों से अवकाश मिला, उसने तुरन्त इन विद्रोही भागों पर आक्रमण कर दिया और उन्हें पुनः सत्ता स्वीकार करने को बाध्य किया।

इल्तुतमिश के कार्यों का महत्त्व—यदि हम इल्तुतमिश के समय की राजनीतिक व्यवस्था पर ध्यान दें तो हमें ज्ञात होगा कि [illegible] इस समय भी दिल्ली [illegible] कि [illegible] दूसरे [illegible] हो गया। [illegible] और [illegible] व्यवस्थाओं का [illegible] हुआ था। [illegible] इल्तुतमिश [illegible] नहीं था। [illegible] बहुत [illegible] और [illegible] की [illegible]। इल्तुतमिश [illegible]। [illegible] राजनीतिक परिस्थिति [illegible] अवश्य होगा [illegible], किन्तु [illegible] सिद्ध हुई। [illegible] किया [illegible] आक्रमण कर

देने पर अथवा कई स्थानों के विद्रोहों का दमन कार्य एक साथ हाथ में ले लेने से निश्चय ही असफलता की आशंका थी, किन्तु इल्तुतमिश ने बहुत सोच-समझ कर काम किया और उचित अवसर पर उसने उचित शक्ति से आक्रमण किया। राजपूतों



चित्र २८

की विरोधात्मक प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई होती, यदि इल्तुतमिश ने चतुरता

से काम न लिया होता। इल्तुतमिश की सैनिक सफलताओं का सबसे बड़ा कारण यह है कि उसने विजित प्रदेशों में विद्रोह की भावना दूर करने के लिए तुर्की बस्तियाँ स्थापित कर दी थीं। पंजाब और गंगा प्रदेश में तुर्क बस्तियाँ स्थापित करके इल्तुतमिश ने बहुत बड़ा कार्य किया था।

इल्तुतमिश के अधिकारी और साम्राज्य विस्तार में अवरोध

इल्तुतमिश तुर्की [illegible] का था। उसके [illegible] के लिए [illegible] थे, और उन्होंने इल्तुतमिश का वध करके [illegible] शासन स्थापित करने का निश्चय किया। १२३५ में [illegible] इल्तुतमिश [illegible] किया, किन्तु इल्तुतमिश बच गया। [illegible] इस घटना के [illegible] किया किन्तु मार्ग में ही [illegible] और [illegible], जहाँ उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार के लिए संघर्ष होता [illegible] इल्तुतमिश का अपने [illegible] में [illegible] नहीं। इसीलिए [illegible] उत्तराधिकारी [illegible] किया था और [illegible] शासन का अनुभव [illegible] था किन्तु [illegible] था। [illegible] नासिरुद्दीन [illegible] था। अतः इल्तुतमिश ने अपनी पुत्री रज़िया के [illegible] का निश्चय किया और [illegible] उत्तराधिकारी नियुक्त करने की [illegible] था। [illegible] सरदारों की [illegible] नियुक्त [illegible] इल्तुतमिश [illegible] थे। [illegible] इसीलिए [illegible] [illegible] दिल्ली का [illegible] [illegible] पश्चात् ही [illegible] और रज़िया [illegible] नियुक्त हुई।

इल्तुतमिश का चरित्र—[illegible] के सुल्तान [illegible] की [illegible] इल्तुतमिश [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

इल्तुतमिश [illegible]

सुल्ताना रजिया



चित्र २६—रजिया

सिंहासन प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी रजिया के सम्मुख कई समस्याएँ थीं। जिनका भली भाँति सामना करने में चूक जाने पर उसे सिंहासन से हाथ धोना पड़ता। सबसे बड़ी कठिनाई तो यह थी कि अभी इल्तुतमिश के कई पुत्र जीवित थे जिनके कई समर्थक थे। किसी भी समय कोई भी उत्तराधिकार के लिए उठ खड़ा होता और उत्तराधिकार के लिए रजिया की स्थिति खतरे में पड़ जाती। उधर कुछ तुर्क सरदार और प्रधान मन्त्री भी रजिया के विरोध में थे। इल्तुतमिश की मृत्यु के पश्चात् केन्द्रीय शासन शिथिल देख कर राजपूतों ने भी स्वतन्त्र होने की इच्छा प्रकट की। ऐसी परिस्थितियों में रजिया को बड़ा धैर्य और साहस से काम लेना था। उसके पास इतनी सेना नहीं थी कि वह सभी विद्रोहियों को एक साथ दबा दे।

विद्रोह और दमन—मुल्तान, हाँसी, लाहौर और बदायूँ के विद्रोही हाकिम दिल्ली की ओर बढ़ते चले आ रहे थे। इनकी संयुक्त सेना ने दिल्ली के निकट पड़ाव डाल दिया। इनकी सेनाओं का सामना करने की शक्ति रजिया में न थी। किन्तु यहाँ रजिया ने कूटनीति से काम लिया और विद्रोहियों में ईर्ष्या और फूट उत्पन्न करा

[illegible] आवश्यक है।"

किशलू खाँ

बहराम शाह अमीरों को सन्तुष्ट न कर सका। अपनी अल्प बुद्धि के कारण उसने एक काजी का वध करवा दिया जिसके फलस्वरूप उसे भी अपना अन्त देखना पड़ा और उसकी मृत्यु के पश्चात् किशलू खाँ ने अपने को दिल्ली का सुल्तान घोषित कर दिया। यह इल्तुतमिश का एक बहुत ही महत्वाकांक्षी दास था और उसकी एक पुत्री से ब्याह कर लिया था। किशलू खाँ ने कई बार राजनीतिक प्रभुता प्राप्त करने की चेष्टा की थी और उसे अब अवसर प्राप्त हो सका था। किन्तु अमीर और सरदार उससे असन्तुष्ट थे, अत उन्होंने अलाउद्दीन मसऊद को दिल्ली की गद्दी पर बिठाया और किशलू खाँ को सन्तुष्ट करने के लिए उसे अजमेर, मन्दावर तथा नागौर की जागीरे दे दी।

अलाउद्दीन मसऊदशाह

अपने शासन के प्रारम्भिक काल मे तो मसऊद को किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त हुई किन्तु आगे चलकर वह सरदारो और अमीरो के प्रभाव से कुछ मुक्त हो सका।

रजिया की मृत्यु के पश्चात् से ही तुर्की साम्राज्य का सकोच प्रारम्भ हो गया था। अधिकाश दूरस्थ प्रान्त स्वतन्त्र रूप से कार्य करने लगे थे। बगाल और मुल्तान के शासक तो अपने को पूर्ण स्वतन्त्र समझने लगे थे। इस प्रकार बिहार मे राजपूतो ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। मसऊद के शासन काल में एक सबसे महत्वपूर्ण घटना यह घटी कि जाजनगर के राय ने बगाल पर आक्रमण कर दिया था जिसे बड़ी कठिनाई के पश्चात् मसऊद की सेना पीछे हटा सकी। मसऊद ने किशलू खाँ के सम्बन्धी बलबन को सबसे पहले उच्च पद प्रदान किया और उसी बलबन ने मसऊद के विरुद्ध एक षड्यन्त्र में भाग लिया।

दिल्ली सल्तनत का संगठन और भी गर्त में पड़ा होता यदि मसऊद ने कुशल सरदार मंगू के आक्रमण का मुँहतोड़ जवाब न दे दिया होता। उसने अनेक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् उसका दिमाग फिर गया और उसने अमीरों तथा सरदारों के साथ अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। फलतः नासिरुद्दीन को आमंत्रित किया गया और मसऊद को सिंहासनच्युत करके उसे सुल्तान बनाया गया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. इल्तुतमिश ने तुर्की साम्राज्य के प्रसार में क्या योग दिया ?

२. इल्तुतमिश के राजपूत युद्ध का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

३. इल्तुतमिश के सम्मुख कौन-कौन सी प्रारम्भिक कठिनाइयाँ थीं और उन पर वह कैसे विजयी हुआ ?

४. रजिया के विषय में आप क्या जानते हैं ?

अध्याय ३६

नासिरुद्दीन महमूद और बलबन के साम्राज्य विस्तार सम्बन्धी कार्य

नासिरुद्दीन को सिंहासनासीन करा कर तुर्क सरदारों और अमीरों ने अपनी सहसा उन्नति की कल्पना की किन्तु नासिरुद्दीन ने [illegible] को [illegible]-समझ कर किया। न तो उसने सहसा किसी को पदोन्नत कर दिया और न किसी को सहसा पदच्युत ही कर दिया। बलबन जैसा सुयोग्य मन्त्री पाकर नासिरुद्दीन को अनेक कठिनाइयाँ सरल ज्ञात हुईं। पहले हम नासिरुद्दीन की कठिनाइयों का ही उल्लेख करेंगे।

नासिरुद्दीन की समस्याएँ

साम्राज्य विस्तार अथवा राज्यसत्ता के स्थायित्व में बाधा स्वरूप उपस्थित होने वाली निम्नलिखित समस्याएं नासिरुद्दीन के सम्मुख विद्यमान थी —

तुर्की अमीर—इल्तुतमिश की मृत्यु के पश्चात् से ही तुर्की अमीरों की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती थी। उनमें पारस्परिक द्वेष और ईर्ष्या की भावना थी, अत वे अनेक दलों में विभक्त हो गए थे और प्रत्येक दल अपनी राजनीतिक प्रभुता स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील था। इन्हीं अमीरों तथा सरदारों ने सिंहासन के लिए षड्यन्त्र एवं हत्याओं का ताँता बँधवा दिया था। इनकी कृतियों के कारण कोई भी सुल्तान दो-चार वर्ष से अधिक टिक नहीं पाता था, इसीलिए तुर्की साम्राज्य के विस्तार मे बाधा उपस्थित होती थी।

२. **राजपूत**—विजित राजपूत राज्य भी केन्द्र को दुर्बल देख कर स्वतन्त्रता की घोषणा कर देते थे। अवसर पाकर वे सल्तनत पर आक्रमण करने का प्रयत्न करते थे। कर देना बन्द कर देना तो साधारण सी बात थी। साम्राज्य विस्तार मे ये भी बहुत बड़ी समस्या सिद्ध हो रहे थे।

३ **मगोल**—इन दिनों मंगोलों के आक्रमणों ने सीमान्त प्रदेश को प्रपीडित कर दिया था। यदि इन आक्रमणों को न रोका जाता तो दिल्ली सल्तनत खतरे में पड जाती।

समस्याओं का निराकरण

तुर्की सरदारों पर नियन्त्रण—बहुधा सुल्तान पक्षपात करते थे जिससे सरदारों म असन्तोष उत्पन्न हो जाता था। नासिरुद्दीन ने पक्षपातहीन होकर सरदारों के साथ उचित व्यवहार किया और उसने सरदारों को इस प्रकार पदासीन किया कि किसी दल विशेष की शक्ति बढ़ने न पावे। कालान्तर मे उसने बलबन की योग्यता से प्रभावित होकर उसे विशेष प्रश्रय दिया और इस प्रकार बलबन के दल का पूर्ण सहयोग प्राप्त करके अन्य अमीरों पर नियन्त्रण प्राप्त कर लिया। बलबन की राय से ही उसने

शेर खाँ को भटिण्डा तथा लाहौर का शासक नियुक्त कर दिया जिसने पश्चिमोत्तर सीमा की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। बलबन के अन्य हितैषी सरदार भी अब नासिरुद्दीन के समर्थक हो गए।

पंजाब पर पुनः अधिकार—पंजाब पर पुनः अधिकार स्थापित करने के लिए नासिरुद्दीन ने १२४७ ई० में आक्रमण कर दिया। नमक की पहाड़ी के राजा जसपाल को पराजित करके सुल्तान दिल्ली लौट आया। उसी समय झेलम नदी के उस पार मुगलों की सेना भी पड़ाव डाले पड़ी थी। किन्तु सुल्तान की विशाल सेना को देखकर उसका साहस न हुआ कि वह आक्रमण करे।

जलालुद्दीन का विद्रोह—दोआब के उपद्रवों के सम्बन्ध में हम पहले ही पढ़ चुके हैं। यहाँ कभी कभी तुर्क सरदारों ने भी विद्रोह का झण्डा खड़ा किया था। नासिरुद्दीन के भाई जलालुद्दीन ने भी जो कन्नौज का हाकिम था विद्रोह करने का निश्चय किया। उसने नासिरुद्दीन को यह सूचित किया कि [illegible] द्वारा सिंहासन प्राप्त करना चाहता है। नासिरुद्दीन ने उसकी सूचना को ठुकरा दिया। तब वह भयभीत होकर तुर्किस्तान भाग गया और वहाँ मंगोलों से मिलकर दिल्ली का सुल्तान बनने की चेष्टा करने लगा। किन्तु वह सफल न हो सका। नासिरुद्दीन ने उसे क्षमादान दिया और लाहौर का शासक नियुक्त कर दिया। जलालुद्दीन ने उसके बाद कोई विद्रोह नहीं किया। इस प्रकार दोआब में शान्ति स्थापित हो गई।

किशलू खाँ का विद्रोह—नागौर के सरदार किशलू खाँ ने सुल्तान से यह प्रार्थना की कि मुल्तान तथा उच्छ की जागीरें उसे दे दी जायँ। यह जागीरें हुसैन के अधिकार में थीं, अतः सुल्तान ने यह शर्त लगा दी कि यदि वह हुसैन को नागौर तथा अपनी अन्य जागीरें दे देता है तो उसे उन दो जागीरें दे दी जायँगी। सुल्तान के आदेशों की उपेक्षा करते हुए किशलू खाँ ने मुल्तान तथा उच्छ पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। झगड़े का निपटारा करने के लिए सुल्तान को स्वयं वहाँ जाना पड़ा।

बलबन का पतन और पुनरागमन—अब तक बलबन की शक्ति काफी बढ़ गई थी और सुल्तान ने उसकी कन्या से अपना विवाह भी कर लिया था। बलबन की इस बढ़ती हुई शक्ति से कुछ लोगों को ईर्ष्या हुई जिनमें सुल्तान की माँ और रैहान प्रधान थे। इन्होंने सुल्तान का कान भर कर बलबन को हाँसी और फिर नागौर का हाकिम बनवाया। सुल्तान ने बलबन को जब वहाँ जाने की आज्ञा दी तब उसे चुपचाप शिरोधार्य करना पड़ा। किन्तु रैहान की चाल अधिक दिनों तक न चल सकी और सुल्तान को [illegible] दीखने लगा। विवश होकर सुल्तान ने बलबन को पुनः दिल्ली बुला लिया। वह पूर्ववत् कार्य करने लगा। रैहान बदायूँ का हाकिम नियुक्त कर दिया गया। इस प्रकार १२५५ ई० में एक बहुत बड़ी आफत टल गई।

कुछ अन्य विद्रोह—साम्राज्य विस्तार में बाधक सिद्ध होने वाले कुछ अन्य विद्रोह भी १२५५-१२५८ ई० के बीच में हुए जिनके मुख्य नायक थे रैहान, कुतलुग खाँ तथा किशलू खाँ। बलबन ने विद्रोही प्रवृत्ति के हाकिमों को [illegible]

[illegible] फिर भी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुत्र [illegible]

[illegible] मुगलों [illegible] मुगलों का [illegible] स्थापित किया । [illegible] से [illegible] हो गया । [illegible] के [illegible] तराइ में [illegible] गया जहाँ कुतुलुग खाँ से उसकी भेंट हुई । [illegible] की संयुक्त सेनाओं ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया । उन्हें राजधानी के कुछ विद्रोहियों ने आश्वासन दिया कि आक्रमण होने पर वे दिल्ली के द्वार खोल देंगे । किन्तु बलबन को इन राजद्रोहियों का पता चल गया । उसने उन्हें दबाने की उचित व्यवस्था कर दी । किशलू खाँ से मुल्तान छीन लिया गया और मुगलों का साथ पाकर भी वह कुछ न कर सका । इस प्रकार हम देखते हैं कि नासिरुद्दीन के शासन काल (१२४६-१२६६) में तुर्क अमीरों और सरदारों के विद्रोह बराबर होते रहे और नासिरुद्दीन अपने नायब बलबन की सहायता से उनका दमन करता रहा ।

मंगोल—नासिरुद्दीन के समय में मंगोलों ने जो उपद्रव खड़े किये उस पर विस्तृत प्रकाश अन्यत्र डाला जायगा, यहाँ केवल इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि नासिरुद्दीन के शासन-काल में दिल्ली सल्तनत की शक्ति के सम्बन्ध में मंगोलों की बड़ी ऊँची भावना थी, अतः सिन्ध और पश्चिमी पंजाब पर अधिकार रखते हुए भी उन्होंने आगे बढ़ने की इच्छा नहीं की ।

बलबन का अंतिम अभियान—मन्त्री बलबन का अन्तिम अभियान १२६६ ई० में मेवात के पहाड़ी प्रदेश पर हुआ । मलका नामक एक हिन्दू के नेतृत्व में यहाँ के विद्रोहियों ने मुसलमानों की सम्पत्ति लूट ली थी । उलुग खाँ ने इन लुटेरों को बुरी तरह पराजित कर दिया । उसने विद्रोहियों से भारी सम्पत्ति लूट ली । इस प्रकार मेवात में शान्ति स्थापित की गई ।

बलबन के कार्यों का महत्व और उसका चरित्र—नासिरुद्दीन के सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है कि वह धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाला एकान्तवासी सुल्तान था । यदि उसे बलबन जैसा योग्य व्यक्ति न मिला होता तो निश्चय ही पूर्व सुल्तानों द्वारा निर्मित साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया होता और तुर्की साम्राज्य की क्या गति हुई होती, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती । नासिरुद्दीन के नायब की हैसियत से बलबन ने

बलबन की समस्याएं

बलबन के सम्मुख निम्नलिखित समस्याएं थीं—

(१) **सल्तनत का सुदृढ़ीकरण**—भारत पर तुर्की साम्राज्य स्थापित हुए लग-भग ६० वर्ष हो गये थे किन्तु जनता के मन तक विद्रोह और षड्यन्त्र का ताना नहीं टूटा था। विजेता तथा विजित का घनिष्ठ सम्बन्ध अब तक भी स्थापित नहीं हो पाया था। भारतीय राजे तुर्कों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। प्रजा का भी यही भाव था। केवल आतंक और भय के द्वारा यह शासन चल रहा था। विद्रोहियों को ऐसे वातावरण में फलने फूलने का अवसर मिल जाया करता था और उनसे राजसिंहासन उलट जाने की बराबर आशंका बनी रहती थी। बलबन के सम्मुख इस कमजोरी को भी दूर करने की पहली समस्या थी।

(२) **चालीस दासों की समस्या**—इल्तुतमिश ने सल्तनत के सुदृढ़ीकरण के लिए चालीस दासों के दल का सगठन किया था जिन्होंने उसके समय में तो कुछ राज भक्ति दिखलाई, किन्तु कालान्तर में ये राजनीतिक विद्रोहों के प्रणेता सिद्ध हुए। यह अत्यधिक महत्वाकांक्षी हो गये थे और राज्य हड़पने की चिन्ता में लीन थे। नासिरुद्दीन के मन्त्री पद से बलबन ने इनमें से कुछ का तो दमन कर दिया था और कुछ ने जीवन से आँखें मूँद लीं, किन्तु अभी कुछ शेष रह गये थे, जिनका दमन बहुत ही आवश्यक प्रतीत हो रहा था।

(३) **आर्थिक समस्या**—नासिरुद्दीन अथवा उसके पूर्ववर्ती सुल्तानों के समय में जो राजनीतिक विद्रोह हुए थे उन्हें दबाने में राजकोष का बहुत बड़ा अंश रिक्त हो गया था। इतना ही नहीं अनेक सरदारों ने कर देना भी बन्द कर दिया था। बलबन के सम्मुख इस आर्थिक समस्या ने विकट रूप धारण कर लिया था जिसे सुलझाये बिना राज-काज असम्भव था।

(४) **विजितों का दमन**—अभी ऐसे हिन्दू साहसी राजे विद्यमान थे जो कई बार कुचले जाने पर भी घायल साँप की तरह फुफकार उठते थे और कुछ तो सुल्तान की प्रजा को लूटते-खसोटते राजधानी तक चढ़ आते थे। इन्हें दबाने के लिए किए गये अब तक के सारे प्रयत्न पूर्ण सफल नहीं हो सके थे। अतः सल्तनत की प्रतिष्ठा और उसकी सुरक्षा के लिए आवश्यक था कि इन उपद्रवी हिन्दू सरदारों को पूर्णतया दबा दिया जाय।

(५) **स्वतन्त्र राजपूत राज्यों का दमन**—जब विजित राजपूत राज्यों से सल्तनत को इतना बड़ा खतरा बना था तो भला सल्तनत को राजपूत राज्यों से कितनी बड़ी हानि की आशंका की जा सकती थी यह स्वतः-सिद्ध है। बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड तथा राजपूताना में स्वतन्त्र राजपूत राज्यों की स्थापना हो चुकी थी जिन्होंने भारत से तुर्कों का निष्कासन अपना ध्येय बना लिया था। इन राज्यों का दमन न केवल साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से आवश्यक था प्रत्युत सुरक्षा की भावना से भी इनका दमन आवश्यक हो गया था।

(६) **मंगोल आक्रमण की समस्या**—साम्राज्य पर आघात पहुँचाने वाली एक महत्वपूर्ण समस्या मंगोलों का आक्रमण कह सकते हैं। सिन्ध तथा पश्चिमी पंजाब में

इन्होंने अपनी जड़ जमा ली थी और मध्य के समस्त मुसलमान शासनों को इन्होंने रौंद दिया था। मध्य एशिया के विद्वान तथा अन्यान्य महापुरुष भाग कर दिल्ली में शरण ले रहे थे। इस दृष्टि से तथा अन्य दृष्टियों से भी मंगोलों का भारत की ओर बढ़ आना कभी भी सम्भव हो सकता था। ऐसे का अशुद्ध शासन और उन पर यह आक्रमण भला कितना भयावह सिद्ध होता।

उपर्युक्त कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि बलबन के लिए दिल्ली का राजमुकुट बाहरी जगमगाहट के बावजूद काँटों का ताज भर था किन्तु इस वृद्ध अनुभवी सुल्तान ने अपनी शक्ति सुदृढ़ करने के साथ साथ साम्राज्य को उन्नति के पथ पर अग्रसर कर दिया जिससे उसकी यश-ध्वनि समस्त मध्य एशिया में गूँजने लगी।

समस्याओं का निराकरण

प्रतिष्ठा वृद्धि—बलबन के सम्मुख जितनी समस्याएँ थीं उन्हें सुलझाने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक था कि वह सुल्तान पद को जनता में सर्वोच्च वस्तु प्रमाणित कर दे। अब तक के सारे सुल्तान शान-पद-प्रतिष्ठा हीन थे। सरदारों और अमीरों के हाथ की कठपुतली बनकर वे नाचते फिरे और दरबार में किसी प्रकार का अनुशासन स्थापित करने में वे असफल सिद्ध होते रहे, किन्तु बलबन ने यह समझ लिया था कि सुल्तान के पद की प्रतिष्ठा वृद्धि बिना कर्मचारियों पर धाक नहीं जम सकती है और जब तक कर्मचारियों पर धाक नहीं जमेगी तब तक प्रजा नहीं प्रभावित हो सकता। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सुल्तान ने अपने दरबार को इस प्रकार सुव्यवस्थित, सुसंगठित एवं सुसज्जित किया कि वह मध्य एशिया में राज दरबारों का आदर्श बन गया।

हिन्दू विद्रोहों का दमन—बलबन के भारी ठाट-बाट ने उच्छृंखल मुसलमान सरदारों को आतंकित कर दिया किन्तु हिन्दुओं पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। हिन्दू विद्रोहों के दमनार्थ बलबन ने सेना को पूर्ण सुसंगठित किया। भारत में अत्यधिक उपद्रव मचाने वाले मेवातियों का दमन उसने बहुत ही कठोरता से किया और १२६६ ई० में उसने न केवल जंगल साफ कर देने के लिए हुक्म दिया [illegible] गोपाल गिरि में एक सुदृढ़ गढ़ बनवा कर वहाँ अफगान सैनिक नियुक्त कर दिये गये।

मेवातियों के दमन के [illegible] थी कि [illegible] और [illegible] के [illegible] ने [illegible] आरम्भ कर दिये। बलबन ने एक कुशल शासक की [illegible] किया। [illegible] एक-एक [illegible] पर दिया [illegible] विद्रोहियों का दमन [illegible]। [illegible] जौनपुर, कटिहार और [illegible] में [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] है

जिसे अमरोहा और बदायूँ के हाकिम दबाने में असफल रहे थे। इस पर [illegible] के क्रोध की सीमा न रही और उसने तुरन्त राजधानी से चलकर [illegible] सेना संगठित करके दमनार्थ प्रस्थान कर दिया। [illegible] किया गया उसका उल्लेख न करना ही शोभनीय है। 'इस भांति [illegible], क्रूर अत्याचारों एवं प्रबल सैनिक प्रदर्शन द्वारा मेवात, अन्तर्वेद, [illegible] और कटेहर के विद्रोह शान्त किए गए।'

तुर्क अमीरों पर नियन्त्रण—साम्राज्य सुरक्षा के लिए आवश्यक था कि उन तमाम सरदारों तथा अमीरों का पूर्ण नियन्त्रण में कर लिया जाय जिनसे स्वामि-भक्ति का तनिक भी आशंका हो। शम्सी सरदार इनमें प्रमुख थे। शेर खाँ सुन्कर इन सरदारों मे सबसे अधिक प्रबल था। शेर खाँ न केवल बलबन का सम्बन्धी था प्रत्युत नासिरुद्दीन के शासन काल मे बलबन का विश्वासपात्र बनकर तत्कालीन राजनीति में उसने बहुत बड़ा भाग लिया था, किन्तु सुल्तान बनने के पश्चात सुल्तान की दृष्टि न केवल शेर खाँ की ओर से बदल गई प्रत्युत सम्पूर्ण शम्सी दल से उसे घृणा हो गई थी। उसकी इस नीति को देखकर शेर खाँ सुल्तान बलबन से मिलने नहीं गया। बलबन उससे सशंकित हुआ और सोचने लगा कहीं शेर खाँ मंगोलों से मिलकर मुझसे दिल्ली न छीन ले। जब शेर खाँ चार वर्ष तक हीला हवाला करता रहा और दरबार में उपस्थित नहीं हुआ तो सुल्तान ने विष देकर उसकी हत्या करवा दी।

शेर खाँ की मृत्यु के पश्चात् सुल्तान ने तातार खाँ तथा उसके बाद तुगरिल बेग को बंगाल का हाकिम नियुक्त किया। पहले बंगाल पर सुलतान का अधिकार केवल नाम मात्र को था किन्तु अब बंगाल पूर्णतया उसके अधीन हो गया। सुलतान ने यहाँ कूटनीति से काम लिया। उसने अधिकांश योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों को सीमान्त दुर्गों मे रख दिया। इनमें पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष था, अत इनकी फूट से मंगोलों ने लाभ उठाया। बलबन को भी अच्छा अवसर मिला और उसने इन पर दोषारोपण करके इन्हें बन्दी बनवा लिया अथवा बध करवा दिया।

गुप्तचर विभाग का पूर्ण संगठन करके बलबन अमीरों एवं सरदारों के दमन मे संलग्न था। उसे राज्य की छोटी से छोटी सूचना मिल जाती थी। पक्षपातहीन कठोर दण्ड विधान ने विद्रोहियों को साहसहीन कर दिया था। राज्य मे पहले की अपेक्षा बहुत कुछ शान्ति स्थापित हो चुकी थी।

तुगरिल का विद्रोह—बलबन के दास तुगरिल ने जो बंगाल का हाकिम था उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। बात यह थी १२७९ ई० मे पश्चिमोत्तर सीमा पर मंगोलों के आक्रमण हो रहे थे जिनके दबाने मे बलबन के पुत्र संलग्न थे। बलबन अचानक बीमार पड़ गया। तुगरिल ने सोचा अब बलबन की जीवन लीला समाप्त होने वाली है। तुगरिल खाँ के पास सैनिक शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई थी, अत उसने स्वयं को लखनौती का सुल्तान घोषित कर दिया। तुगरिल खाँ को दबाने मे असफल दो सेनापतियों को बलबन ने मौत के घाट उतार दिया। अन्त मे तुगरिल को दबाने के लिए सुल्तान ने स्वयं प्रस्थान किया। तुगरिल बंगाल के जंगलों मे छिप गया। सुल्तान को तुगरिल का पता न लगा। अन्त में तुगरिल का पता लग गया और उसका बध कर

दिया गया। तुगरिल के साथी पकड़े गये, सुल्तान उन्हें लेकर लखनौती आया। वहाँ इन विद्रोहियों को खुले बाजार फाँसी दी गई। सारी जनता थर्रा उठी। सुल्तान ने बुगरा खाँ को बंगाल का हाकिम नियुक्त किया।

दिल्ली लौट कर सुल्तान ने अपनी सेना के उन सैनिकों को दण्ड देने का निश्चय किया जो तुगरिल से मिल गये थे। किन्तु उसने अनुनय विनय के पश्चात साधारण सिपाहियों को मुक्त कर दिया और बड़े अधिकारियों को भी हल्की कुल्ही सजा देकर अथवा उन्हें भैंसे पर बैठा कर सारे नगर की सैर करा कर क्षमादान दे दिया।

सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा—जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है कि पंजाब तथा सिन्ध में मंगोलों का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। इनसे साम्राज्य को बहुत अधिक खतरा था, अतः सबसे पहले सुल्तान ने अपनी सैनिक शक्ति बहुत अधिक बढ़ा ली। सेना सम्बन्धी अनेक सुव्यवस्थाओं का प्रबन्ध करके बलबन ने पहले नगर को सशक्त बना लिया, तत्पश्चात् उसने लाहौर के दुर्ग का मरम्मत करवाई और उसे एक सुदृढ़ स्थान बना दिया। सीमान्त प्रदेशों की रक्षा का भार उसने एक व्यक्ति के हाथ में न देकर तीन अधिकारियों पर छोड़ा, जिससे विद्रोह की आशंका न रह जाय। इस प्रकार सुल्तान ने सीमान्त प्रदेशों को तीन क्षेत्रों में विभक्त करके एक क्षेत्र में तातार खाँ को, दूसरे में शाहजादा मुहम्मद खाँ को और तीसरे में बुगरा खाँ को नियुक्त कर दिया। इन क्षेत्रों में [illegible] और वीर सैनिकों का दल रख दिया गया, आवश्यकता पड़ने पर इनकी सहायता के लिए राजधानी में भी एक विशाल सेना सदैव सुसज्जित रहती थी। बलबन के इन प्रयासों का फल अच्छा हुआ। यद्यपि मंगोलों ने व्यास नदी पार करने के लिए कई बार प्रयास किये पर उन्हें [illegible] नहीं मिली। मंगोलों के आक्रमणों को रोकने में ही शाहजादा मुहम्मद को अपनी जान से [illegible] पड़ी। सुल्तान का यह उत्तराधिकारी उसका बहुत ही प्रिय था। इसकी मृत्यु का गहरा धक्का सुल्तान के दिल पर लगा। यद्यपि मंगोलों ने [illegible] दीपालपुर पर युद्ध छेड़ [illegible] में बलबन को एक बार [illegible] लिया गया। बलबन ने मंगोलों को आगे बढ़ने से रोक तो दिया था किन्तु वह उनका दमन नहीं कर सका। हम आगे देखेंगे कि अलाउद्दीन [illegible] कर दिया था।

कैकुबाद

हम कह चुके हैं कि शाहजादा मुहम्मद की मृत्यु हो जाने के बाद [illegible] चुकी थी। [illegible]

[illegible]

योग्यता अपने गुरुओं को गुरु दक्षिणा रूप में लौटा दी। भोग विलास, नाच रंग में वह इतना डूब गया कि राज-काज से कोई सम्बन्ध ही नहीं रह गया। उसके दरबारियों ने भी उसका अनुसरण किया, फलतः शासन की बागडोर कोतवाल निजामुद्दीन के हाथ में आ गई।

निजामुद्दीन का षड्यन्त्र

निजामुद्दीन अत्यन्त महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने सुल्तान को सुरा और सुन्दरी में तन्मय करके उसकी मृत्यु को बहुत शीघ्र आमन्त्रित करने का निश्चय किया और इतनी अवधि में अपने सभी प्रतिद्वन्दियों एवं शक्तिशाली सरदारों का अन्त करके भविष्य के लिए मार्ग निष्कण्टक बना लेने की व्यवस्था की। निजामुद्दीन ने अपनी पत्नी को राजमहल में भेज दिया जो सुल्तान पर पूरी तरह छा गई।

अब सुल्तान को मुट्ठी में करके निजामुद्दीन अपने विरोधियों के दमन में लगा। उसने केखुसरो का वध करा दिया, ख्वाजा खातिर को गधे पर चढ़ा कर अपमानित कराया और विदेशी सरदारों पर षड्यन्त्र का अपराध लगाकर कत्ल करवा दिया। रिक्त स्थानों पर उसने अपने समर्थकों की नियुक्ति करवा दी। इतना ही नहीं निजामुद्दीन ने सुल्तान को उलटा-सीधा पढ़ा कर मंगोल नौ मुस्लिमों के बहाने शक्तिशाली तुर्क अमीरों का दिल्ली में बुरी तरह वध करवा दिया। निजामुद्दीन ने अपना मार्ग काफी साफ कर लिया था। अब केवल एक कार्य शेष रह गया था, वह था कैकुबाद का वध, जिससे सिंहासन हाथ में आ जाता।

पिता-पुत्र सम्मेलन और निजामुद्दीन का वध—बलबन की मृत्यु के पश्चात् से ही बुगरा खाँ (कैकुबाद का पिता) स्वतन्त्र शासक के रूप में राज्य कर रहा था। कैकुबाद जब दिल्ली का सुल्तान बनाया गया तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई थी। उसने जब यह सुना कि उसका पुत्र निजामुद्दीन द्वारा अनुचित मार्ग पर तीव्रगति से बढ़ाया जा रहा है तो उसे बड़ा दुःख हुआ। पुत्र को उपदेश देने के अभिप्राय से बुगरा खाँ चल पड़ा। इधर निजामुद्दीन भी अपना दुर्भाग्य समझ रहा था, अतः उसने सुल्तान को खूब भड़काया और कहा कि निश्चय ही बुगरा खाँ किसी स्वार्थ से दल बल के साथ आ रहा है, अतः उसका प्रत्युत्तर देना चाहिए। किन्तु बात बिगड़ने नहीं पाई और जब एक विशाल सेना लेकर कैकुबाद सरयू तट पर पहुँच गया तो निजामुद्दीन के लाख प्रयत्न करने पर भी बुगरा खाँ और कैकुबाद की सेना में युद्ध की नौबत नहीं आई। निजामुद्दीन ने दूसरी चाल चली उसने सुल्तान को बताया कि बुगरा खाँ पिता होते हुए भी सुल्तान का अधीनस्थ है, अतः उसे दरबार में सुल्तान का झुककर अभिवादन करना चाहिये। बुगरा खाँ ने सब कुछ स्वीकार कर लिया और जब पिता-पुत्र का सामना हुआ तो दोनों के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। कैकुबाद पिता के चरणों पर गिर पड़ा। निजामुद्दीन बड़ा कुटिल था, उसने पिता-पुत्र को एकान्त में मिलने का अवसर नहीं दिया। विदा होते समय बुगरा खाँ ने कैकुबाद के कान में कहा, 'अपना चरित्र सँभालो और निजामुद्दीन की हत्या करा के अपनी रक्षा करो।' तभी से सुल्तान का रुख निजामुद्दीन के विरुद्ध हो गया। निजामुद्दीन के विरोधियों को अच्छा अवसर मिला और उन्होंने विष देकर उसकी जीवन लीला समाप्त कर दी।

बलबन के वंश का अन्त

निजामुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् सुल्तान ने तुर्की और खिलजी सरदारों में पारस्परिक मेल-मिलाप स्थापित करने का प्रयत्न किया क्योंकि यही दो दल उस समय शक्तिशाली थे। तुर्की अमीर खिलजियों का वध कराने की योजना में लीन थे। जलालुद्दीन खिलजी खिलजियों का नेतृत्व कर रहा था। हिन्दुस्तानी मुसलमान भी उसके साथ थे। खिलजियों का वध कराने की योजना इसलिए कार्यान्वित न हो सकी कि कैकुबाद रोगग्रस्त हो गया। तुर्की सरदारों ने अवसर पाकर क्यूमर्स को गद्दी पर बिठा दिया और उसने खिलजियों के वध की आज्ञा दे दी। किन्तु जलालुद्दीन खिलजी को सारे षड्यन्त्र का पता चल गया और उसने उचित व्यवस्था कर दी। कहते हैं कि उथल पुथल के पश्चात् कैकूबाद कारागार में डाल दिया गया। वहाँ शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गयी और जलालुद्दीन खिलजी दिल्ली के राजसिंहासन पर आसीन हुआ। इस प्रकार तथाकथित दास वंश का अन्त होता है और दिल्ली सिंहासन पर खिलजी वंश का आधिपत्य स्थापित हो गया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. नासिरुद्दीन ने साम्राज्य सुरक्षा के लिए जितने प्रयत्न किये उन पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

२. नासिरुद्दीन की प्रारम्भिक कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का संक्षिप्त विवरण दीजिये।

३. नासिरुद्दीन के समय में कुछ प्रमुख हिन्दू विद्रोहों पर प्रकाश डालिए।

४. क्या यह सच है कि बलबन के अभाव में नासिरुद्दीन पूर्ण असफल शासक सिद्ध हुआ होता और तुर्की साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने की भी आशंका थी?

५. मन्त्री बलबन के कार्यों का उल्लेख करते हुए साम्राज्य सुरक्षा की दृष्टि से उनका महत्व बताइए?

६. सुल्तान बलबन का संक्षिप्त इतिहास लिखिए?

७. कैकुबाद के विषय में आप क्या जानते हैं?

अध्याय ४०

तुर्की साम्राज्य का प्रसार (खिल्जी वंश)

हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं कि कैमूर्स को सिंहासनाच्युत करके जलालुद्दीन खिल्जी स्वयं दिल्ली का सुल्तान बन बैठा था। जलालुद्दीन बलबन के समय में सेना में प्रवेश हुआ था और सामन्त प्रदेश के संरक्षक सेनापतियों में से एक था। केकुबाद के काल में वह समाना का हाकिम था। इसी समय से उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और वह कैकुबाद का युद्ध मन्त्री हो गया। १२९० ई० तो वह स्वयं दिल्ली का सुल्तान ही बन बैठा। सिंहासन प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी उसने प्राचीन राजधानी दिल्ली में प्रवेश नहीं किया क्योंकि दिल्ली वाले उससे असन्तुष्ट थे क्योंकि वे उसे तुर्क न समझ कर अफगान समझते थे और राजपद पर केवल तुर्कों की ही बपौती है ऐसा दिल्ली वालों का विश्वास था। किन्तु जलालुद्दीन बड़ा कुशल था, उसने समस्त शक्तिशाली व्यक्तियों को ऊँचे ऊँचे पद पर नियुक्त करके दिल्ली वालों को अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार अपनी योग्यता का परिचय देने में जलालुद्दीन सफल हुआ और वह शान्तिपूर्वक दिल्ली में प्रवेश कर सका।

जलालुद्दीन के समय की आपत्तियाँ और उनका अन्त

जलालुद्दीन की चरित्रगत विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए हम आगे बतायेंगे कि वह अपने अन्य पूर्ववर्ती शासकों से कितना भिन्न था और उसमें इन्सानियत की कितनी अधिक बू थी। यहाँ केवल इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि उसकी उदारता को लोगों ने कायरता समझ लिया और इस प्रकार अनेक महत्वाकांक्षी व्यक्तियों को सुल्तान के विरुद्ध षड्यन्त्र करने की प्रेरणा मिली। यद्यपि कुछ इतिहासकारों ने जलालुद्दीन की शान्तिपूर्ण नीति की कटु आलोचना की है और यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यह उसकी दुर्बल नीति का ही परिणाम था कि उसे अपने भतीजे द्वारा ही अपना अन्त देखना पड़ा, किन्तु यदि हम जलालुद्दीन के शासन की राजनीतिक घटनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि उसके समय में न तो कोई सफल विद्रोह ही हो सका, न तो कोई बाह्य आक्रमण ही क्षति पहुँचा सका, न तो किसी षड्यन्त्र से सुल्तान अभिज्ञ रह सका और न एक बार क्षमा किए हुए व्यक्तियों ने दुबारा विद्रोह ही किया। हाँ, उसे धोखा अपने सगे-सम्बन्धियों से अवश्य हुआ।

यहाँ हम उसके शासन काल की उन घटनाओं का उल्लेख करेंगे जिनका सीधा सम्बन्ध साम्राज्य के विस्तार अथवा संकोच से है।

मलिक छज्जू का विद्रोह—१२९० ई० में मलिक छज्जू ने यह देख कर कि

दिल्ली में तथा दिल्ली के बाहर भी कुछ लोग खिल्जियों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। मलिक छज्जू कड़ा और मानिकपुर का अधिकारी था और उसने जलालुद्दीन के राज्यारोहण के समय उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। मलिक छज्जू को अवध के सूबेदार, कुछ तुर्क सरदार तथा स्थानीय हिन्दू जमींदारों ने पूरी पूरी सहायता देने का आश्वासन दिया। छज्जू का उत्साह बढ़ गया और उसने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर के दिल्ली विजय के लिए प्रस्थान कर दिया। सुल्तान को जब यह सूचना मिली तब उसने स्वयं सैन्य-अभियान किया और छज्जू अपने साथियों सहित पकड़ लिया गया। अन्त में सुल्तान को उन पर दया आई और उसने उनके साथ उदारता का व्यवहार किया। प्रधान विद्रोहियों का स्थानान्तरण कर दिया गया और उनका नेता छज्जू नजरबन्द कर दिया गया। कड़ा और मानिकपुर का शासन अलाउद्दीन के हाथ में दे दिया गया।

अलाउद्दीन की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ और उन पर विजय

दिल्ली का सिंहासन प्राप्त कर लेने के पश्चात भी अलाउद्दीन निष्कण्टक नहीं था। उसके सम्मुख निम्नलिखित उलझनें थीं —

(१) लोकप्रियता का अन्त, (२) जलाली अमीरों का अन्त, (३) जलालुद्दीन के उत्तराधिकारियों का अन्त, (४) सीमान्त प्रान्तों की सुरक्षा, (५) शासन संगठन और स्वतन्त्र राज्यों का अन्त।

अलाउद्दीन ने एक एक कर इन सारी समस्याओं को सुलझाने का यत्न किया। सबसे पहले उसने अपार धन राशि द्वारा लोगों को लुटा कर जनता को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। सैनिकों को छः मास का वेतन पारितोषिक के रूप में देकर उसने सेना को पूर्णतया मिला लिया। इस प्रकार उसने [illegible] जनता को [illegible] किया कि वह इस सोने चाँदी की जगमगाहट में अपने उदार सम्राट् के रक्त की लाली भूल जाय।

अलाउद्दीन ने सरदारों और अमीरों को प्रसन्न करने के लिए पदों का वितरण बहुत ही लाभकर ढंग से किया। उसने जलालुद्दीन के कुछ ऊँचे पदाधिकारियों को तो पूर्ववत् बना रहने दिया किन्तु शेष सभी महत्त्वपूर्ण पदों पर उसने अपने शुभचिन्तकों को नियुक्त कर दिया। इस प्रकार उसकी स्थिति सुदृढ़ हो गई।

अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का सबसे महत्वपूर्ण उपाय अलाउद्दीन की समझ में जलालुद्दीन के उत्तराधिकारियों का अन्त था, अतः उसने इब्राहीम तथा उसकी माँ को कैद करने के लिए एक सेना भेजी जो दो मास तक मुल्तान नगर का घेरा डाले पड़ी रही। अन्त में सुल्तान की सेना को विजय मिली और शाही खानदान वाले बन्दी बना लिए गये जिसमें दोनों राजकुमार भी सम्मलित थे। राजकुमारों को निर्दयतापूर्वक सुल्तान ने अन्धा कर दिया।

अलाउद्दीन ने नसरत खाँ को जलाली अमीरों के दमन का कार्य सौंपा। उसने कुछ अमीरों को अन्धा कर दिया, कुछ को कारागार में डाल दिया, और कुछ अमीरों को तलवार के घाट उतार दिया। जलाली अमीरों की सम्पत्ति छीन कर अलाउद्दीन ने लगभग १ करोड़ रुपया प्राप्त कर लिया।

सीमा प्रान्तों की सुरक्षा के लिए जलालुद्दीन बराबर सतर्क रहता था। उसने मंगोल आक्रमण का सामना करने के लिए बलबन की नीति अपनायी। इस प्रकार दुर्गों की मरम्मत और सुन्दर सैनिकों की नियुक्ति द्वारा अलाउद्दीन ने अपनी शक्ति काफी सुदृढ़ कर दी। अलाउद्दीन के समय में मंगोलों ने कई बार आक्रमण किये किन्तु वे केवल सीमांत जनता में आतंक एवं अशान्ति तक उत्पन्न कर पाते थे, दिल्ली तक पहुँचने का स्वर्ण अवसर उन्हें नहीं मिल पाता था।

साम्राज्य विस्तार के लिए अलाउद्दीन ने उत्तर तथा दक्षिण दोनों ओर अपनी सेनाएँ भेजीं और उसकी सेना काफी सफल हुई। बहुत दिनों से सुव्यवस्थित शासन-प्रबन्ध का अभाव था, अतः अलाउद्दीन खिल्जी ने सुन्दर शासन संगठन की योजना भी

बनाई जिसमें उसे पर्याप्त सफलता भी मिली । यहाँ हम उसकी विजयों के विषय में ही पढ़ेंगे ।

साम्राज्य-विस्तार के प्रयास

उनसे उनके गुप्त धन का पता पूछा और उसे भी खोद निकाला। सैनिकों ने लूटमार के सिलसिले मे अनेक मन्दिर तोड़े जिनमे सोमनाथ का मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध था। उलुग खाँ और नसरत खाँ लूट का माल लेकर दिल्ली की ओर चल पड़े, मार्ग में नियमानुसार सैनिकों से लूट के माल का विवरण माँगा गया जिससे राज्य को उसका पंचमांश भाग दिया जा सके। कहा जाता है कि तलाशी लेने में सैनिकों के साथ निर्दयता का व्यवहार किया गया जिससे नव मुस्लिम मगोल सैनिक बिगड़ उठे और उन्होंने एक षड्यन्त्र द्वारा दोनों सेनापतियों का अन्त कर देने का निश्चय किया। सौभाग्यवश षड्यन्त्र असफल हुआ। षड्यन्त्रकारी भाग निकले और उन्होंने राजपूत राजाओं के यहाँ शरण ली। मुहम्मद शाह भी इन्ही शरणार्थियों मे से एक था जिसने रणथम्भौर के शासक हम्मीर के यहाँ शरण ली थी।

जिस समय अलाउद्दीन के सेनापतियों ने उसके सामने सुवर्ण और रत्न का पहाड़ लगा दिया उस समय उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। कर्ण की रानी कमला देवी तथा हजार दीनारीदास काफूर को पाकर तो उसके प्रसन्नता की सीमा न रही।

अलाउद्दीन ने विद्रोही सैनिकों के बच्चे और स्त्रियों के साथ ऐसी निर्दयता दिखलाई कि उससे सम्पूर्ण साम्राज्य मे आतक छा गया।

रणथम्भोर-विजय—गुजरात विजय के पश्चात् अलाउद्दीन का साहस बढ़ गया। उसने देखा कि राजपूत राज्यों का पराजित करना कोई बहुत कठिन कार्य नहीं है। कुछ कारणों ने अलाउद्दीन खिलजी को रणथम्भौर विजय के लिए प्रोत्साहित भी किया जिसमें सब से प्रमुख कारण तो यह था कि राजधानी के निकट स्वतन्त्र राजपूत रियासतो का बना रहना सर्वथा अहितकर था। रणथम्भौर राजपूताने मे सर्व शक्तिशाली राज्य था। यद्यपि कुतुबुद्दीन ऐबक और इल्तुतमिश के काल मे रणथम्भौर का दुर्ग तुर्कों के अधीन आ गया था, किन्तु इल्तुतमिश की मृत्यु के पश्चात् ही चोहानो ने पुन. इस पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था और तब से तुर्कों के किसी आक्रमण ने उनका कुछ नहीं बिगाड़ा। अलाउद्दीन को रणथम्भौर पर आक्रमण करना था किन्तु उसके लिए अभी समय आने वाला था। सयोगवश रणथम्भौर के राजा ने मुहम्मद शाह तथा अन्य विद्रोही मगोल सैनिकों को शरण दे दी जिससे बाध्य होकर अलाउद्दीन को १२०० ई० में उस पर आक्रमण कर देना पड़ा। सुल्तान ने राजा हम्मीर के पास यह सन्देश भेजा कि यदि वह मगोल शरणार्थियों को दिल्ली भेज दे अथवा स्वय उनका वध कर दे तो उस पर आक्रमण नहीं किया जायगा। प्रत्युत्तर में हम्मीर ने यह साफ साफ कहला दिया कि राजपूत शरणागत को किसी प्रकार भी ठुकरा नहीं सकता क्योंकि यह उसकी जातीय परम्परा के विरुद्ध है, अस्तु अलाउद्दीन की सेना ने जो उलुग खाँ और नसरत खाँ की अध्यक्षता मे पहले से ही प्रस्थान कर चुकी थी, रणथम्भौर के दुर्ग को घेर लिया किन्तु नसरत खाँ मारा गया और उलुग खाँ को भाग कर झाईं में शरण लेनी पड़ी।

अब सुलतान स्वय एक सेना लेकर चल पड़ा, मार्ग में उसके भतीजे अकत खाँ ने उसका वध करके सिंहासन प्राप्त करने की चेष्टा की, किन्तु उसका षड्यन्त्र

सफल होने से पूर्व असफल हो गया और किसी प्रकार सुल्तान की जान बच गई। विद्रोहियों के परिवार को कठोरतम दण्ड दिया गया। अकत खाँ को मौत के घाट उतार दिया गया।

सुल्तान ने रणथम्भौर पहुँचकर पुनः घेरा डाल दिया, किन्तु इसी बीच उसे अपने दो भान्जों के विद्रोह की सूचना मिली जो बदायूँ और अवध के हाकिम थे, किन्तु वे दोनों पराजित हुए और बन्दी बना कर रणथम्भौर भेज दिये गये जहाँ सुल्तान ने उनकी आँखें निकलवा ली।

इससे भी गंभीर विद्रोह हाजी मौला का हुआ जो काजी अलाउलमुल्क के पश्चात दिल्ली का कोतवाल बनना चाहता था। सुल्तान को रणथम्भौर में फँसा हुआ देखकर हाजी मौला ने इल्तुतमिश के एक वंशज को दिल्ली के सिंहासन पर बिठा दिया, किन्तु शीघ्र ही हाजी मौला तथा उसके साथी पकड़े गये, नामधारी सुल्तान का वध कर दिया गया। अलाउद्दीन ने विद्रोहियों को पूर्णतः कुचलना और

कर लिया गया और ७०० [illegible] डोलों में [illegible] रानी की सहेली के बहाने सुल्तान के [illegible] की ओर [illegible] घमासान युद्ध हुआ, तब तक राणा चित्तौड़ पहुँच चुका था। [illegible] हो गए, किन्तु अल्पसंख्यक राजपूत [illegible] टिक सके। जब उन्हें भागने की कोई आशा न [illegible] पूर्ण निश्चय करके वंश परम्परानुसार [illegible] राज-परिवार की दुधमुँही बच्चियाँ तक आग की [illegible] जौहर का यह दृश्य सम्पूर्ण चित्तौड़ में जगमगा उठा। [illegible] दुर्ग में प्रवेश किया पर वहाँ पद्मिनी न मिली। [illegible] बिखरी पड़ी थी।

पद्मिनी की इस कथा के सम्बन्ध में आधुनिक इतिहासकारों का यह मत है कि उक्त कथा पूर्णतया काल्पनिक है और इसका निर्माण कवि मलिक मुहम्मद जायसी के ग्रन्थ 'पद्मावत' के आधार पर फिरिश्ता ने कर लिया है क्योंकि समकालीन लेखकों ने इस घटना का कोई उल्लेख नहीं किया है। इस सम्बन्ध में केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि उक्त कथा में कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिस पर विश्वास न किया जा सके। न तो दिल्ली सुल्तानों की रूप-लालुपता कोई अपरिचित वस्तु है और न राजपूतों का जौहर व्रत ही कोई आश्चर्यजनक या नवीन काण्ड है। अतः हम पद्मिनी की कथा पर काफी अंशों तक विश्वास कर सकते हैं।

चित्तौड़ का दुर्ग जीतने के पश्चात् अलाउद्दीन ने खिज्र खाँ को वह दुर्ग सौंप दिया और नगर का नाम खिजराबाद रख दिया। १३११ ई० के आस-पास राजपूतों के दबाव के कारण खिज्र खाँ को चित्तौड़ छोड़ना पड़ा और उसके बाद सुल्तान ने मालदेव को चित्तौड़ भेजा जो सात वर्ष तक वहाँ रहा, किन्तु सातवें वर्ष के अन्त में राणा हम्मीर ने एक षड्यन्त्र रचा जिसके फलस्वरूप दुर्ग उसके अधीन हो गया।

मालवा विजय—चित्तौड़ पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् अलाउद्दीन ने मालवा पर आक्रमण कर दिया, यह कार्य उसने ऐनुलमुल्क मुल्तानी को सौंपा। दस सहस्र सेना लेकर वह मालवा की ओर चल पड़ा। मालवा का राय महलक देव उस समय वहाँ का शासक था। उसका सेनापति उसी का भाई कोका प्रधान था जो रणनीति तथा कूटनीति में काफी दक्ष था। ४० सहस्र अश्वारोही तथा एक लाख पैदलों की विशाल सेना लेकर राजपूतों ने शाही सेना का सामना किया किन्तु महलक देव खेत रहा और मालवा पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया।

मालवा पर अधिकार स्थापित कर लेने के पश्चात् ऐनुलमुल्क ने माण्डू, धारानगरी, उज्जैन तथा चँदेरी पर भी अपना अधिकार कर लिया।

मारवाड़-विजय—राजपूताना में मारवाड़ ही एक स्वतन्त्र रियासत थी। सिवाना यहाँ का प्रबलतम दुर्ग था। मारवाड़ में उस समय शीतल देव का राज्य था। अलाउद्दीन बहुत दिनों तक सिवाना दुर्ग का घेरा डाले हुए पड़ा रहा, अन्त में शीतलदेव को सुलतान से संधि करनी पड़ी। सुल्तान ने शीतल देव का दुर्ग तो नहीं छीना किन्तु उसका राज्य दिल्ली के अमीरों में बाँट दिया गया।

जालौर-विजय—यद्यपि जालौर के शासक कान्हड़देव चौहान ने लगभग १३०४ ई० में अलाउद्दीन की अधीनता स्वीकार कर ली थी तथापि उसने धीरे-धीरे स्वतन्त्र शासन की व्यवस्था प्रारम्भ कर दी और सुल्तान के प्रति अपना [illegible] प्रकट कर दिया। अतः १३११ ई० में अलाउद्दीन ने उसके विरुद्ध एक सेना भेजी। प्रारम्भ में तो कान्हड़देव ने कई स्थानों पर शाही सेना को पराजित किया किन्तु [illegible] के बाद [illegible] उसने वहाँ भी सफलता प्राप्त की। कान्हड़देव [illegible] मालदेव को जालौर का शासक बनाने के लिए नियुक्त किया गया जिसने जालौर विजय में सुल्तान की काफी सहायता की थी।

सम्पूर्ण उत्तरी भारत को सुल्तान ने अपने अधीन अवश्य कर लिया, किन्तु अलाउद्दीन के अन्तिम वर्षों में राजपूतों के विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी और अनेक राजपूत रियासतों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया।

दक्षिण-विजय—अब तक किसी सुल्तान ने दक्षिण की ओर कोई महत्त्वपूर्ण सैनिक सफलता नहीं प्राप्त की थी, किन्तु अलाउद्दीन प्रारम्भ से ही दक्षिण की सम्पत्ति से परिचित और उस पर अपना अधिकार स्थापित करने की चिन्ता में लीन था। अलाउद्दीन ने अपने गुलाम काफूर को [illegible] सेना का [illegible] नियुक्त किया। काफूर [illegible], गुलाम [illegible] था और इसने [illegible] को [illegible] तरह प्रभावित कर लिया। सुल्तान के [illegible] ने [illegible] की [illegible] को बलपूर्वक पकड़ कर दिल्ली भेज दिया जहाँ [illegible] सुल्तान [illegible] गया। अन्त में सुल्तान को भेंट कर काफूर ने रामचन्द्र यादव को अपनी अधीनता स्वीकार करने को बाध्य किया। रामचन्द्र दिल्ली दरबार में भेजा गया जहाँ [illegible] उसे रायरायान की उपाधि प्रदान की गई।

वारंगल-विजय—देवगिरि के पश्चात् [illegible] वारंगल के [illegible] का [illegible] गया। १३०९ ई० में काफूर ने [illegible] बढ़ता हुआ वारंगल के दुर्ग के सामने अपनी सेना खड़ी कर दी। [illegible] तक दुर्ग का घेरा डाले पड़ा रहा, अन्त में राजा [illegible] को [illegible] की प्रार्थना करनी पड़ी। उसने न केवल सन्धि कर लेना ही स्वीकार किया, [illegible] स्वीकार करने [illegible] अपनी [illegible] की [illegible], किन्तु [illegible] न हो सका। उसने [illegible] कि यदि [illegible] और [illegible] दे दे तब सन्धि कर लेना [illegible] जायगा। [illegible] करनी पड़ी। काफूर [illegible] लूट [illegible] दिल्ली लौट आया।

माबर विजय—दक्षिण की [illegible] के पश्चात् [illegible] उत्तेजित [illegible] और [illegible] पर अपना अधिकार [illegible] का निश्चय किया। द्वारसमुद्र और माबर [illegible] दक्षिण के [illegible] थे। [illegible] के [illegible] तुर्की [illegible] की [illegible] का [illegible] हो [illegible] और [illegible] का [illegible]

सम्पूर्ण कार्नू, कोकन के कुछ भाग तथा सम्पूर्ण मैसूर प्रदेश पर स्थापित थे। होयसल तथा यादवों में घोर वैमनस्य था जिससे उनमें पारस्परिक कलह उत्तरोत्तर बढ़ता गया और इसी फूट ने दोनों की शक्ति क्षीण कर दी थी। यदि इन दोनों में एकता की भावना बनी रहती तो गहरी नदियां, ऊँची-नीची घाटियों और घने जंगलों को पार करके शाही सेना कदापि सुदूर दक्षिण तक न पहुँच पाती। १३१० ई० में काफूर द्वारसमुद्र राज्य में पहुँच गया, उसने बल्लाल को पराजित कर दिया। काफूर ने राय को यह सूचना दी कि या तो वह इस्लाम धर्म स्वीकार कर ले अथवा अपार धनराशि देकर प्राणदान प्राप्त करे। विवश होकर राय ने अपने कोष का बहुत बड़ा अंश काफूर को दे दिया और उसने दिल्ली की अधीनता स्वीकार कर ली। मुसलमानों को लूट में बहुत अधिक धन मिला। बल्लाल दिल्ली भेज दिया गया।

अब काफूर मदुरा के पाण्ड्यों की ओर बढ़ा। बात यह थी कि पाण्ड्य राज्य में सुन्दर पाण्ड्य और वीर पाण्ड्य में पारस्परिक वैमनस्य चल रहा था। वीर पाण्ड्य ने सुन्दर पाण्ड्य को मार भगाया और वह स्वयं सिंहासनासीन हो गया। सुन्दर पाण्ड्य ने दिल्ली सुल्तान से सहायता माँगी थी। उसकी सहायता करने के लिए ही काफूर एक विशाल सेना के साथ भेजा गया था। बल्लाल मार्ग प्रदर्शन कर रहा था। १३११ ई० में काफूर मदुरा पहुँच गया। वीर पाण्ड्य भाग खड़ा हुआ। काफूर ने उसका पीछा किया। किन्तु अथक परिश्रम के पश्चात् भी वह उसे न पकड़ सका। इस दौड़ धूप में काफूर को मन्दिरों को लूटने का अवसर अवश्य प्राप्त हो गया। मदुरा को पूरी तरह लूटने के पश्चात् काफूर दिल्ली लौट आया। अमीर खुसरो के कथनानुसार काफूर ने मदुरा से ५१२ हाथी, ७००० घोड़े, ५०० मन विभिन्न रत्न तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएं प्राप्त कीं। बल्लाल भी काफूर के साथ दिल्ली आया और सुलतान ने उसका पूर्ण स्वागत किया।

शंकर देव की पराजय—रामदेव की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र शंकरदेव ने दिल्ली को कर देना बन्द कर दिया था और जब काफूर ने होयसल नरेश के विरुद्ध रण-अभियान किया था तब शंकरदेव ने काफूर की कुछ भी सहायता नहीं की थी। अलाउद्दीन के लिए यह असह्य था, अतः उसने १३१२ ई० में काफूर को चौथी बार एक विशाल सेना के साथ दक्षिण की ओर भेजा। काफूर ने महाराष्ट्र में भयंकर लूट मचा दी, यादव राजकुमार पराजित हुआ और उसे मार डाला गया। इस अभियान के फलस्वरूप सम्पूर्ण दक्षिण भारत काफूर के अधिकार में आ गया। उसके इसी अभियान ने दक्षिण के अनेकानेक प्राचीन राजवंशों—चोल, चेर, पाण्ड्य, होयसल, काकतीय, यादव आदि को पूर्णतः निर्मूल कर दिया और वे दिल्ली सल्तनत के अधीन हो गये।

१३१२ ई० के अन्त तक अलाउद्दीन का साम्राज्य उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत तक फैल गया था।

दक्षिण में अलाउद्दीन की सफलता के कारण

अलाउद्दीन खिल्जी प्रथम सुल्तान था जिसने अपने बाहुबल की भीषणता का

नारी, मद्य तथा संगीत में लीन रहते थे, अलाउद्दीन इन तीनों से परे था। अपने प्रारम्भिक जीवन में यद्यपि वह सुरापान किया करता था, परन्तु बाद में उसने उसका परित्याग केवल स्वयं ही नहीं किया वरन् अपनी प्रजा को भी मना कर दिया। उसे आखेट तथा अन्य प्रकार की क्रीड़ाओं में विशेष अभिरुचि थी। कबूतरों तथा बाजों को उड़ाने का वह बहुत शौकीन था। यद्यपि वह स्वयं [illegible] नहीं था तथापि वह विद्वानों का आदर करता था। उसके समय के [illegible] विद्वानों में अमीर खुसरो तथा हसन का नाम लिया जा सकता है। सुल्तान इनका [illegible] करता था। उसे कला से भी प्रेम था और उसने कई दुर्गों का निर्माण कराया जिसमें अलाई का दुर्ग सबसे प्रसिद्ध है। उसने कई मस्जिदों का जीर्णोद्धार कराया था और कुतुब मस्जिद का विस्तार करने और सहन में एक नये मीनार के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया था।

कुछ विद्वानों का कथन है कि अलाउद्दीन में सैनिक प्रतिभा उच्च कोटि की नहीं थी क्योंकि उसकी विजयों का सारा श्रेय उसके योग्य सेनापतियों को मिलना चाहिए। परन्तु ऐसा मानना भूल है क्योंकि अलाउद्दीन ने अपने जीवन के प्रारम्भ काल में ही मलिक छज्जू के विरुद्ध सफल युद्ध कर तथा भिलसा पर आक्रमण कर अपनी सैनिक प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया था। इसके अतिरिक्त भी उसने कई युद्ध किये थे जिनमें उसे सदैव सफलता मिलती रही। एक योग्य सेनानी के साथ-साथ वह एक सफल शासक भी था। अपनी मौलिकता के कारण उसने शासन में कई नवीन व्यवस्थाएँ प्रचलित की थी।

जो भी हो अलाउद्दीन बड़ा ही द्वेषपूर्ण एवं सन्देही व्यक्ति था। प्रतिशोध लेने की भावना तो उसमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। उसकी कृतघ्नता तथा द्वेष के अनेक उदाहरण हमारे सम्मुख आते हैं। उसने उन्हीं अमीरों का दमन किया जिन्होंने उसे सिंहासन प्राप्त कराने में उसकी सहायता की थी। अपने चचा जलालुद्दीन तथा अन्य सगे-सम्बन्धियों की निर्मम हत्या और नये मुसलमानों का संहार उसकी क्रूरता एवं नृशंसता के ज्वलन्त उदाहरण हैं। डा० स्मिथ ने अलाउद्दीन के शासन को बहुत ही गौरवहीन बताया है और उसको क्रूर तथा बर्बर की उपाधियों से विभूषित किया है। हिन्दुओं के प्रति उसके व्यवहार और भी बुरे थे।

अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी

अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् विपक्षी दलों में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। मलिक काफ़ूर ने अब तक काफी ख्याति प्राप्त कर ली थी। अत उसकी महत्वाकांक्षा उत्तरोत्तर बढ़ रही थी, उसने एक-एक करके राजकुमारों को पराजित कर दिया और उसने एक जाली वसीयतनामा पेश किया जिसमें सुल्तान अलाउद्दीन ने उमर खाँ को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। उमर की आयु उस समय केवल छः वर्ष थी, इसलिए काफ़ूर स्वयं शासक बन बैठा। काफ़ूर ने सबसे पहले अलाउद्दीन के वास्तविक उत्तराधिकारियों अथवा उनके सहायकों का अन्त करके मार्ग निष्कंटक करने का निश्चय किया। अत मुबारक खाँ के अतिरिक्त शेष सभी राजकुमारों को बन्दी गृह में डाल दिया

[illegible] मार डाले गए। काफूर की इस नीति ने खिलजी वंश के समर्थकों को असंतुष्ट कर दिया। उन्होंने षड्यन्त्र रचना प्रारम्भ किया [illegible]। [illegible] ने [illegible] षड्यन्त्रकारियों का साथ दिया। [illegible] काफूर और उसके [illegible] को मार डाला। काफूर की मृत्यु के पश्चात् [illegible] कुतुबुद्दीन मुबारक शाह के नाम से १३१६ ई० में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

कुतुबुद्दीन मुबारक शाह

[illegible] प्राप्त करने के पश्चात् कुतुबुद्दीन ने [illegible] की नीति [illegible]। [illegible] कैदियों [illegible] से मुक्त किया। [illegible] ने [illegible] उनको पुनः [illegible]। मुबारक शाह के [illegible] शान्ति स्थापित [illegible], इतना ही नहीं, मुबारक शाह ने [illegible] पूर्वजों की [illegible] का भी सुधार किया। [illegible] को हटाकर मुबारक शाह ने [illegible] को [illegible] किया।

मुबारक शाह के शासन-काल में राजनीतिक [illegible] पहली घटना १३१८ ई० में देवगिरि के [illegible] हरपालदेव का विद्रोह है, जिसका [illegible] कर दिया गया और [illegible]। दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना [illegible] मुबारक शाह की [illegible] है। [illegible] मुबारक शाह [illegible] कर दिया गया। [illegible] नासिरुद्दीन [illegible] किया।

[illegible]

[illegible] दिया।

[illegible]

चि॰ १०

यकलखी खाँ नाक कान विहीन कर दिया गया और उसके साथियों को कठोर दण्ड मिला।

साम्राज्य अधोगति की ओर—सुन्दर ढंग से शासन आरम्भ करने वाले इस सुल्तान का मस्तिष्क बहुत गंदा हो गया और वह ऐसे कुकर्मों में फंस गया कि राज्य की प्रतिष्ठा और साम्राज्य की शक्ति का भारी पतन होने लगा। उसकी विलासिता और उसके निर्मम अन्त के सम्बन्ध में डा० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है—विलास प्रियता ने मुबारक को नष्ट कर दिया। वह अभिमानी प्रतिशोधक तथा अत्याचारी हो गया और कुत्सित वासनाओं में लिप्त रहने लगा। शिष्टता और सदाचार को उसने तिलांजलि दे दी। साधारणतया वह वेश्याओं के सहवास में रहने लगा। नाचने वाली लड़कियों की माँग बहुत बढ़ गई। एक लड़के, मनोहर हिजड़े अथवा सुन्दर कुमारी का दाम ५०० से लेकर १००० और २००० टंक तक हो गया। सुल्तान को उस समय शिष्टता का कुछ ध्यान न रहता था जब वह अपने मूर्ख साथियों के गन्दे शब्दों द्वारा दरबार के प्रतिष्ठित अमीरों की हँसी करता था। खुसरो का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा और अपने सजातियों की सहायता से उसने बादशाह को मार डालने का षड्यन्त्र रचा। सुल्तान को खुसरो के विचारों की सूचना मिल गई, किन्तु उसने अपने शुभचिन्तकों के उपदेश पर कुछ भी ध्यान न दिया। षड्यन्त्रकारियों ने रात्रि के समय राजभवन में प्रवेश किया और सुल्तान को मार डाला। तत्काल ही एक सभा की गई और खुसरो सरदारों और अधिकारियों की सम्मति से १३२० ई० में नासिरुद्दीन की उपाधि धारण करके गद्दी पर बैठा।

खुसरो

यह गुजरात की एक नीच जाति का व्यक्ति था, कुछ इतिहासकार तो इसे मेहतर तक मानते हैं। उसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था, इसका हृदय जितना ही दूषित था मस्तिष्क उतना ही स्पष्ट और कुशाग्र था। अपनी प्रतिभा के ही बल पर वह मुबारक का प्रिय एवं विश्वासपात्र बन गया था। उसमें बुद्धि के साथ शारीरिक शक्ति भी कम न थी। तिलगाना के शासक के विरुद्ध खुसरो को जो सफलता मिली वह इसका प्रमाण है। सुल्तान ने खुसरो को तिलगाना विजय के पश्चात् दिल्ली वापस बुला लिया अन्यथा खुसरो की तो यह इच्छा थी कि दक्षिण में स्वतन्त्र राज्य स्थापित करे, किन्तु दिल्ली आकर भी उसकी शक्ति में कोई कमी नहीं पड़ी और जैसा कि हम देख चुके हैं उसने बड़ी सरलता से सुल्तान का वध कर दिया। कहा जाता है कि सुल्तान की हत्या करने के पश्चात् खुसरो ने सभी अमीरों को राज प्रासाद में बुलवाया, जहाँ वे रात भर बन्द रखे गए और इधर खुसरो के अनुयायी हरम (राजमहल) में प्रवेश करके राजकुमारों तथा रानियों की हत्या में लीन थे। खुसरो के अत्याचार ने साम्राज्य में आतंक व्याप्त कर दिया। यही कारण है कि मुसलमान इतिहासकारों ने खुसरो के शासन-काल को आतंक काल कह कर पुकारा है।

खुसरो के अत्याचारों को चुनौती देने वाला फखरुद्दीन जूना (मुहम्मद तुगलक) नाम का एक व्यक्ति खड़ा हुआ। उसका पिता गाजी मलिक दिपालपुर का शासक था।

अध्याय ८३

तुर्की साम्राज्य का प्रसार (तुगलक वंश)

गयासुद्दीन तुगलक

सिंहासनारोहण

नासिरुद्दीन खुसरो शाह की पराजय के पश्चात् १३२० ई० में गयासुद्दीन सिंहासन पर बैठा। यद्यपि सेना एवं सामन्तों ने खुसरो का साथ नहीं दिया और अनेक सामन्त विद्रोह कर गाजी मलिक की सेना में चले गये थे फिर भी गयासुद्दीन को एक भयानक युद्ध करना पड़ा था। गयासुद्दीन दिल्ली का प्रथम सुल्तान था जिसने अपने नाम के साथ गाजी शब्द का प्रयोग किया। वस्तुतः यह उपाधि तातार सेनाओं को लगभग १६ बार पराजित करने के उपलक्ष में धारण की गई थी। अपनी विजय के कारण वह हिन्दुस्तान एवं खुरासन में एक कुशल युद्ध नेता के रूप में प्रसिद्ध था। गयासुद्दीन तुगलक के सिंहासनारोहण में हमें एक इस्लाम धर्म की प्रजातान्त्रिक भावनाओं का आभास होता है। तुर्की राज्य की स्थापना के समय से यह प्रथम अवसर था जब कि दिल्ली सिंहासन पर एक ऐसे व्यक्ति ने पदार्पण किया जो सर्वसम्मति से सुल्तान घोषित किया गया था। यद्यपि यह सर्वसम्मति सामन्तों एवं अमीरों की ही थी तथापि भारत के मुस्लिम राज्य में यह एक नवीन एवं महत्वपूर्ण घटना थी। सिंहासनारोहण के समय गयासुद्दीन वृद्ध हो चुका था परन्तु उसमें राजनैतिक कुशलता की कमी न थी। उसने अलाउद्दीन के सम्बन्धियों के प्रति उदार व्यवहार दिखलाकर अपना सम्मान बढ़ा लिया और पद एवं उपाधियों का वितरण कर अपने हितैषी बढ़ाये।

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ और उन पर विजय

जिस समय गयासुद्दीन सिंहासन पर बैठा साम्राज्य की दशा छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। केन्द्रीय शासन की दुर्बलता के कारण साम्राज्य की सीमा संकुचित हो गई थी। खुसरो के शासन-काल को हिन्दू सत्ता की पुर्नस्थापना का प्रयत्न बताया गया है और वस्तुतः हिन्दू राजा एवं सरदार स्वतन्त्र होने की अपनी अपनी योजनायें बना रहे थे। साम्राज्य के बाह्य प्रदेशों में प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ जोर पकड़ रही थीं और स्थानीय निरंकुश शासकों ने केन्द्रीय सत्ता को दुर्बल बना दिया था। मुगल, खोखर एवं अन्य जातियों के षड्यन्त्र चल रहे थे, और पञ्जाब एवं सिन्ध में उनका बोलबाला था। राजपूताना में जैसलमेर स्वतन्त्र हो ही चुका था परन्तु गुजरात में जो एक शताब्दी से दिल्ली साम्राज्य का एक अंग माना जाता था इस समय दुर्व्यवस्था का बोलबाला था और राजपूत इस पर अधिकार करने की भरसक चेष्टा कर रहे थे। बंगाल तो प्रायः स्वतन्त्र ही था। वहाँ पर दो शासकों के सिक्के चल रहे थे। दक्षिण में भी

बंगाल से लौटते समय सुल्तान को मिथिला के करनाट वंशी नरेश हरिसिंह देव का सामना करना पड़ा। हरिसिंह पराजित हुआ और नेपाल की ओर भाग गया और अहमद खाँ को तिरहुत का राज्यपाल बना दिया गया।

गयासुद्दीन का चरित्र

सीमाओं का रक्षक गयासुद्दीन तुगलक कोमल एवं उदार प्रकृति का शासक था और अपने व्यवहार में अत्यन्त सरल था, उसे शक्ति का घमण्ड न था। अपने सहयोगियों के प्रति उसने सदा एक-सा व्यवहार किया था। उसे सुल्तान के कर्तव्यों का भली-भाँति ज्ञान था और वह धार्मिक प्रवृति का व्यक्ति था। अपने धर्म के नियमों एवं रीति-रिवाजों का पालन करता था। वह अपने धार्मिक व्यवहार में कठोर था, परन्तु अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति उसने कभी भी संकुचित विचारों को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया। अन्य धर्मावलम्बियों के विरुद्ध युद्ध अथवा कठोर व्यवहार किसी धर्मान्धता का परिणाम नहीं था वरन् एक राजनैतिक आवश्यकता एवं कुशल शासक का प्रतीक था।

वह दूसरों के प्रति व्यवहार में ही सरल न था वरन् उसका समस्त जीवन विलासिता एवं कुटिलता से दूर एक सादा एवं आत्म-निर्भरता का जीवन था। निर्धनता एवं विपत्तियों का सामना करते करते उसे विलासमय जीवन के कुप्रभाव का भली-भाँति ज्ञान था। उसे विलासमय जीवन से अति घृणा थी और वह मद्यपान आदि से कोसों दूर रहता था। वह अपने सिद्धान्त का पक्का और जनता का शुभचिन्तक था। अलाउद्दीन की रक्तमय नीति एवं कठोरता के विपरीत उसने कुशलता एवं बुद्धिमत्ता से साम्राज्य की प्रतिक्रियावादी शक्तियों का दमन किया था। मुबारक एवं खुसरो के विलासमय एवं भ्रष्ट शासन से अव्यवस्थित शासन को संगठित करना कोई कम सफलता न थी।

गयासुद्दीन की मृत्यु

युवराज जूना खाँ ने बंगाल से वापस आते हुये विजयी सुल्तान के स्वागतार्थ राजधानी से छः मील दूर अफगानपुर में एक महल का निर्माण करवाया। हाथियों के प्रदर्शन के समय वह भवन धराशायी हो गया और दब जाने के कारण सुल्तान एवं उसके अल्पवयस्क पुत्र महमूद की मृत्यु हो गई। सुल्तान की मृत्यु के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। कहा जाता है कि सुल्तान एवं युवराज जूना खाँ के सम्बन्ध अच्छे न थे और जूना खाँ सिंहासन पर अधिकार करना चाहता था। कुछ भी हो ऐतिहासिक तथ्यों से अब यह सिद्ध हो चुका है कि इस दुर्घटना में राजकुमार जूना खाँ का हाथ था और सुल्तान की मृत्यु आकस्मिक न होकर निश्चित एवं पूर्व आयोजित षड्यन्त्र के परिणाम-स्वरूप हुई थी।

मुहम्मद तुगलक

मुहम्मद तुगलक का सिंहासनारोहण—सुल्तान गयासुद्दीन की रहस्यमय मृत्यु के पश्चात् जूना खाँ मुहम्मद तुगलक के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ। उसका

शासक ने अब्बू सईद से मित्रता स्थापित कर ली थी और मुहम्मद तुगलक की सहायता करने से इनकार कर दिया। दूसरी ओर अमीरों ने विद्रोह कर दिया और तरमाशिरी को सिंहासन से उतार दिया। परिणामस्वरूप फारस की पूर्वी सीमा एक प्रकार सुरक्षित थी और इस प्रकार अब्बू सईद की शक्ति बढ़ गई थी। ३,७०,००० व्यक्ति की विशाल सेना को भारत के बाहर ले जाना सरल न था। हिन्दूकुश के संकीर्ण मार्ग में अनेक विपत्तियों की सम्भावना थी। यातायात का प्रबन्ध भी अच्छा न था। अत इस विशाल सेना को रसद आदि पहुँचाना कठिन था और शत्रु प्रदेश में आवश्यक रसद प्राप्त करना असम्भव था। साथ ही साथ भारतीय मुस्लिम सेनाओं को बाह्य प्रदेश एवं युद्ध रीति अनुभव भी न था। सुल्तान के सेनानायक कुशल न थे।

कराचल विजय की योजना—कहा जाता है कि मुहम्मद तुगलक ने चीन विजय की योजना बनाई थी और फरिश्ता के विवरण के आधार पर उसे बहुत समय तक सत्य स्वीकार कर लिया गया था, परन्तु वास्तविकता कुछ और ही थी। सुल्तान मुहम्मद भारत एवं चीन की सीमा पर स्थित कराचल नामक स्थान पर अधिकार करना चाहता था। आधुनिक इतिहासकारों का ऐसा मत है। इस योजना के लिए भिन्न भिन्न कारण बताये जाते हैं। इतिहासकार बर्नी ने उसे खुरासान विजय की योजना का सहायक अंग बतलाया है और हाजीउद्दबीर ने रूपवती स्त्रियों की प्राप्ति को ही इस योजना का कारण बतलाया है। परन्तु अधिकतर इतिहासकारों का मत यह है कि यह योजना पर्वतीय प्रदेश के विद्रोही सरदार के विद्रोह दमन हेतु बनाई गयी थी। सम्भवतः इस सरदार ने दिल्ली की सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। सुल्तान की सेनाओं ने कराचल पर आक्रमण किया, परन्तु पहाड़ी प्रदेश में उन्हें पराजित होना पड़ा। सुल्तान को जन-धन की अपार क्षति उठानी पड़ी। क्रुद्ध सुल्तान ने पुनः आक्रमण करने की आज्ञा दी, परन्तु इस आक्रमण के पूर्व ही योजना का उद्देश्य प्राप्त हो चुका था। पर्वतीय सरदार ने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली क्योंकि वह तराई में कृषि करना चाहता था, परन्तु सुल्तान से शत्रुता के कारण वह ऐसा नहीं कर सकता था क्योंकि तराई वाले भाग दिल्ली साम्राज्य के अंतर्गत थे।

राजपूताना विजय योजना—राजपूताने की गाथाओं से प्रतीत होता है कि मुहम्मद तुगलक ने सिंहासनारूढ़ होते ही चित्तौड़ के राजा हम्मीर के साथ युद्ध किया। इस युद्ध में सुल्तान पराजित हुआ और बन्दी बना लिया गया। तीन मास उपरान्त जब हम्मीर को पचास लाख टङ्क, सौ हाथी तथा अजमेर, रणथम्भौर, मुइसपुर, नागौर के प्रान्त का वचन दिया गया तब सुल्तान बन्दी गृह से छोड़ दिया गया। टाड, एर्सकाइन, गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा आदि इतिहासकारों ने इस कथन को सत्य माना है। डा० ईश्वरीप्रसाद तथा आगा मेहदी हुसेन इसे यह कह कर अस्वीकार करते हैं कि फारसी के किसी ग्रन्थ में इसका उल्लेख नहीं मिलता। द्वितीय मत ही अधिक सही जान पड़ता है क्योंकि दिल्ली सुल्तान का तीन मास तक कैद रहना और साथ ही साथ दिल्ली एवं सम्पूर्ण साम्राज्य में शान्ति स्थापित रहना यह दोनों बातें ऐसी हैं जिनमें परस्पर मेल नहीं है। समय को ध्यान में रखते हुये हमें यह कहना

पड़ता है कि यह घटना सत्य न हो। सुल्तान का [illegible] में [illegible] ही [illegible] ही
जाया करते थे। सिंहासन प्राप्ति के लिए सुल्तान [illegible]
की हत्या कर दिया करते थे तो क्या [illegible] तुग़लक के [illegible]
[illegible] इस भावना से [illegible]। नहीं, ऐसा [illegible] प्रतीत होता है। [illegible]
[illegible]
[illegible] सुल्तान के लिए [illegible] था। सुल्तान [illegible]
इस बात का प्रमाण है कि [illegible]
के [illegible]

१. [illegible] में [illegible] के कारण सुल्तान को इतना [illegible] ही नहीं
मिला कि [illegible] देता।

२. सुल्तान [illegible] शत्रुओं की [illegible] से [illegible] हो गया था।

३. [illegible] की भौगोलिक स्थिति [illegible] के कारण ही सुल्तान [illegible] को
[illegible] करने में सफल नहीं हो सके थे।

अपना एक राजदूत भेजा था और जब खलीफा का दूत दिल्ली आया तो सुल्तान ने उसके स्वागतार्थ ऐसे वस्त्र धारण किये थे जिन पर खलीफा का नाम छपा रखा था। खलीफा के राजदूत के सम्मान में सुल्तान ने उसे साष्टांग प्रणाम किया था। सुल्तान को खलीफा की ओर से सम्मानसूचक वस्त्र प्राप्त हुआ था।

विद्रोह और उन पर विजय

साम्राज्य संगठित एवं शक्तिशाली होते हुए भी मुहम्मद तुगलक को अनेक विद्रोहियों एवं षड्यन्त्रकारियों एवं प्रतिक्रियावादियों का सामना करना पड़ा जिनके कारण साम्राज्य छिन्न भिन्न एवं पतनोन्मुख हो गया और उसका उत्तरदायित्व भार सुल्तान पर डाला गया। वस्तुतः सुल्तान की योजनायें तर्क पर आधारित थी और उसे जनता की भावनाओं का ध्यान न था। परिणामस्वरूप जनता के असहयोग और अपने सामन्तों की अयोग्यता के कारण सुल्तान की लगभग प्रत्येक योजना असफल रही। असफलता से खिन्न होकर सुल्तान का स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया। उसे न तो प्रजा पर ही विश्वास रहा और न अपने सामन्तों एव सेना-नायकों पर ही। दूसरी ओर प्रजा एवं सरदार सुल्तान की रहस्यमय योजनाओं को समझने में अयोग्य थे। फलतः प्रजा में सुल्तान के प्रति सद्भावना एव स्वामि भक्ति का अभाव था। प्रजा सुल्तान को और सुल्तान प्रजा को दोषी समझते थे। दोनों को एक दूसरे के प्रति घृणा थी। ऐसी परिस्थिति में विद्रोही एवं प्रतिक्रियावादी शक्तियों का उत्कर्ष प्राकृतिक ही है। यही नहीं सुल्तान ने अपने सामन्तों को अयोग्य एवं षड्यन्त्रकारी मानकर विदेशी सामन्तों की सहायता ली। इसका परिणाम सुल्तान एवं साम्राज्य दोनों के लिए घातक हुआ। देशी सरदार सुल्तान के विरुद्ध हो गए और विदेशी सरदार केवल अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए ही सुल्तान की सहायता कर रहे थे। प्रजा के असहयोग और अपने स्वार्थमय भावनाओं के कारण विदेशी सरदार शासन-प्रबन्ध को सुचारु रूप से चलाने में असफल रहे। तत्पश्चात् निम्नवर्गीय व्यक्तियों को शासन का कार्य भार सौंप दिया गया। परिणाम स्वरूप साम्राज्य की दशा गम्भीर हो गई और सुल्तान को विद्रोह दमन के लिए स्थान-स्थान पर भागना पड़ा।

सिन्ध के दो विद्रोह—सिन्ध में पहला विद्रोह १३२८ ई० में हुआ। विद्रोही थे कमालपुर के काज़ी तथा खतीब। दोनों विद्रोहियों को कैद कर उनकी खाल खिंचवा ली गई। दूसरा विद्रोह सेहवान में १३३३ ई० में हुआ। सेहवान का शासक रतन (हिन्दू) था जिसको अजीम उसिन्ध की उपाधि प्राप्त हुई थी। कुछ मुसलमानों ने षड्यन्त्र रच कर उनकी हत्या करवा दी। सुल्तान को जब मालूम हुआ तो उसने सिन्ध के हाकिम इमादुलमुल्क को विद्रोहियों को कठोर दण्ड देने के लिए भेजा। प्रमुख विद्रोहियों को बन्दी बना कर उनकी खाल खिंचवा ली गई व उनमें भूसा भरवाकर दुर्ग के द्वार पर लटका दिया गया।

बहाउद्दीन का विद्रोह—सन् १३२६ ई० में दक्षिण में सागर के जागीरदार बहाउद्दीन ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। वह जागीरदार अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहता था और सुल्तान की विभिन्न योजनाओं की असफलता से लाभ

उठा कर उसने विद्रोह करना उचित समझा। परन्तु सुलतान की दो विशाल सेनाओं ने विद्रोहियों की विद्रोही प्रवृत्ति का शीघ्र दमन किया। बहाउद्दीन बन्दी बना लिया गया और दिल्ली लाया गया। सुलतान ने उसकी खाल खिंचवा ली और विद्रोहियों में आतंक फैलाने के विचार से उसे प्रान्तों में घुमाया गया। उसके मांस को चावल में मिला कर उसके स्त्री सम्बन्धियों को खिला दिया गया।

बहराम खाँ का विद्रोह, हिजरी सन ७२८—यह विद्रोह राजधानी परिवर्तन के पश्चात् सबसे भयानक विद्रोह था और ऐसा भी विचार है कि हिन्दुस्तान में प्रथम महत्वपूर्ण विद्रोह था। बहराम किश्लू खाँ के नाम से प्रसिद्ध था और भूतपूर्व सुलतान गयासुद्दीन तुगलक का घनिष्ठ मित्र था और यही कारण था कि सुलतान मुहम्मद उसका सम्मान करता था और उसे अपना चाचा कहा करता था। विद्रोह का कारण इब्नबतूता एवं तारीखे मुबारकशाही के विवरण के अनुसार भिन्न भिन्न है। इब्नबतूता का कथन है कि किश्लू खाँ बहाउद्दीन की लाश के प्रदर्शन के विरुद्ध था और लाश को मुलतान लाये जाने पर उसने इसे दफना दिया। यहिया का कथन है और यही सत्य जान पड़ता है कि राजधानी बदलने की योजना के अनुसार सुलतान ने प्रत्येक गवर्नर तथा कुछ अमीरों को नवीन राजधानी में अपना परिवार भेजने की आज्ञा दी। किश्लू खाँ के पास इस सूचना के आ जाने पर उस

सुल्तान को स्वय सेना लेकर वहाँ जाना पड़ा और लुटेरों को दण्ड देना पड़ा। इन लुटेरों के सरदारों को पकड़ लिया गया और उन्हें इस्लाम धर्म ग्रहण करने को बाध्य किया गया।

साहू लोदी का विद्रोह—मुल्तान में मलिक साहू लोदी ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। मुल्तान के शासक को कारावास मे डालकर मलिक साहू ने अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। सुल्तान एक बड़ी सेना लेकर मुल्तान की ओर रवाना हुआ। थोड़ी ही दूर गया था कि उसे अपनी माता की मृत्यु का समाचार मिला। कुछ दिन शोक मनाने के बाद सुल्तान फिर आगे बढ़ा, परन्तु जब वह दिपालपुर पहुँचा तो उसे मलिक साहू का पत्र मिला जिसमे क्षमा की प्रार्थना की गई थी। मलिक साहू मुल्तान से भाग गया था। अत सुल्तान फिर आगे नहीं बढ़ा।

दक्षिण के विद्रोह—दक्षिणी भारत विद्रोहों का केन्द्र बना हुआ था। उस पर प्रभुत्व रखने के उद्देश्य से ही तो सुल्तान ने दौलताबाद नई राजधानी बनाई थी परन्तु सुल्तान युद्धों में इतना व्यस्त रहा कि दौलताबाद मे भी अधिक दिन तक रह न सका। लगभग समस्त दक्षिण भारत सुल्तान के आधिपत्य मे था। माबर, वारंगल, द्वारसमुद्र जैसे सुदूरवर्त्ती प्रान्तों को भी सुल्तान अपने शासनाधीन कर चुका था। १३३५ ई० में माबर स्वतन्त्र हो गया तथा १३३६ ई० मे हरिहर और उसके भाई बुक्का ने स्वतन्त्र विजयनगर साम्राज्य की नींव डाली। इस साम्राज्य की हम अन्यत्र विशद् व्याख्या करेंगे। प्रताप रुद्रदेव काकतीय के पुत्र कन्यनायक ने सन् १३४४ ई० में दक्षिण के हिन्दू संगठित किये। बर्नी के अनुसार साहू अफगान के विद्रोह काल मे वारंगल के हिन्दुओं का एक विद्रोह फूट पड़ा। इस क्षेत्र मे कन्यनायक (कृष्णनायक अथवा कपयनायक भी) ने अपना प्रभाव बहुत बढ़ा लिया। नायब वजीर मलिक मकबूल दिल्ली भाग गया। हिन्दुओं का अधिकार वारंगल पर हो गया और यह पूरा साम्राज्य स्वतन्त्र हो गया। इसी समय कम्पाला के शासक ने भी इस्लाम त्याग कर विद्रोह कर दिया और वह भी स्वतन्त्र हो गया। दिल्ली साम्राज्य के अन्तर्गत अब केवल देवगिरि और गुजरात रह गये थे।

चतुर्थ बल्लाल, हरिहर, कृष्णनायक तथा अनेक छोटे छोटे सरदारो के संगठित विद्रोह ने दक्षिण में ऐसी शक्ति संचय कर ली कि आखिरकार वारंगल द्वारसमुद्र तथा कारोमंडल समुद्रतटवर्ती प्रदेश मुसलमानो के अधिकार से बिलकुल निकल गये। सन् १३४६ ई० में होयसल वंश का शासन समाप्त हो गया। हरिहर ने अपनी शक्ति को स्थापित कर विजयनगर को दक्षिण मे सर्व प्रमुख राज्य बना दिया जो उत्तर के मुसलमानी साम्राज्य के लिए दक्षिण मे दीवार बन गया।

कुतुलग खॉ को देवगिरि से हटा कर सुल्तान ने बड़ी भूल की। सारा राज्य अव्यवस्थित हो गया। इधर मालवा तथा धार के मूर्ख जागीरदार कलार पुत्र अजीज खुम्मार ने विदेशी अमीरो की हत्या की। इससे अमीरो मे आतंक फैल गया और स्वरक्षार्थ उन्होने शस्त्र उठा लिए। दक्षिण में विद्रोह का ताना-बाना-सा बुन गया। सुल्तान ने स्वय गुजरात को ससैन्य प्रस्थान किया। भडोच पहुँच कर उसने निजामुद्दीन अली-मुल मुल्क द्वारा विदेशी अमीरों को राजकीय शिविर मे बुलवाया। रायचूर,

सुल्तान उस पर बहुत विश्वास करता था। एहसान शाह के विद्रोह के बाद भी सुल्तान ने उसे हाँसी का गवर्नर रहने दिया था। जब इब्राहीम को सुल्तान की मृत्यु की सूचना मिली तो उसने भी अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया और सुल्तान के राजदूत को बन्दी बना लिया, परन्तु जब उसे ज्ञात हुआ कि सुल्तान अभी जीवित है तो उसने दूत को छोड़ दिया और आत्म-समर्पण कर दिया। परन्तु फिर भी सुल्तान ने उसकी हत्या करवा दी।

बंगाल में विद्रोह—१३३७ ई० में पूर्वी बङ्गाल के राज्यपाल बहराम शाह के कवचवाहक फखरुद्दीन ने उसकी हत्या कर दी और स्वयं शासक बन बैठा। लखनौती के गवर्नर कद्र खाँ ने फखरुद्दीन को दण्ड देने के लिए उस पर आक्रमण किया पर युद्ध में काम आया। फखरुद्दीन ने अपने नाम की मुद्रायें ढलवाईं और अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली। सुल्तान अन्य समस्याओं और विद्रोहों के दमन में इतना उलझा हुआ था कि उसने इस विद्रोही को दण्ड देने के लिए प्रस्थान करना उचित न समझा। सुल्तान के मौन धारण से फखरुद्दीन ने आन्तरिक विरोधों को बड़ी योग्यता से दबा दिया। शीघ्र ही उसने समस्त प्रदेश को अपने अधिकार में कर लिया।

फखरुद्दीन बड़ा वीर और योग्य शासक था। इब्नबतूता ने उसको बड़ा धार्मिक, दानी एवं निरंकुश शासक बतलाया है। उसके काल में बङ्गाल की आर्थिक दशा बहुत सुधर गई और चीज़ें बहुत सस्ती हो गईं। प्रजा बहुत सुखी थी।

गुलबर्गा में विद्रोह—सुल्तान ने अली शाह को, जो एक उच्च पदाधिकारी था, गुलबर्गा (दक्षिण) में कर वसूल करने भेजा था, परन्तु अली शाह ने गुलबर्गा के हाकिम भैरों का बध कर दिया और अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। अपने अधिकार में उसने बीदर भी कर लिया परन्तु कुतलुग खाँ ने उसे परास्त कर दिया और पकड़ कर सुल्तान के पास भेज दिया। सुल्तान ने उसे गजनी भेज दिया परन्तु सुल्तान की आज्ञा के बिना वह वापस आ गया और सुल्तान ने उसका बध करवा दिया।

ऐनुलमुल्क का विद्रोह—ऐनुलमुल्क अवध तथा जफराबाद का गवर्नर था। वह बड़ा स्वामिभक्त व सुल्तान का विश्वासपात्र था। दक्षिण के गवर्नर कुतलुग ख्वाजा के काम से सुल्तान संतुष्ट न था। इसलिए उसने ऐनुलमुल्क को दक्षिण का गवर्नर नियुक्त किया और सपरिवार दक्षिण भेजना चाहा, परन्तु जफराबाद व अवध के शरणार्थियों ने सुल्तान से पीछा छुड़ाने के लिए ऐनुलमुल्क के कान भरने आरम्भ किये। ऐनुलमुल्क को यद्यपि दक्षिण जाने में प्रसन्न होना चाहिए था, परन्तु वह सशंकित हो गया और विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। ऐनुलमुल्क ने सुल्तान की बहुत सेवा की थी। जब दुर्भिक्ष के दिनों में सुल्तान अपनी राजधानी फर्रुखाबाद जिले के सरगद्वारी नामक स्थान पर ले गया था तो ऐनुलमुल्क व उसके भाइयों ने दुर्भिक्ष की वेदनाओं को हरने में बड़ी सहायता पहुँचाई थी। अतः उसका विद्रोह सुन कर सुल्तान आश्चर्यचकित रह गया। सुल्तान ने अपने कड़े नियन्त्रण में सेना ले

कर धावा बोल दिया। बहुत काल तक लगातार घमासान युद्ध होता रहा। दोनों ओर के बहुत से मारे गए थे। परन्तु ऐनुलमुल्क पराजित हुआ और कैद कर लिया गया। उसके सहयोगियों का बड़ी क्रूरता से वध करवा दिया गया, परन्तु [illegible] सेवाओं को दृष्टि में रखते हुए सुल्तान ने उसे क्षमा कर शाही बगीचों का निरीक्षक बना दिया।

मुहम्मद तुगलक का चरित्र

मुहम्मद तुगलक का व्यक्तित्व असाधारण था। मध्यकालीन सुल्तानों में वह योग्यतम व्यक्ति था। उसकी स्मरण शक्ति विलक्षण थी और वह अनेक विद्याओं का पण्डित था। वह अरबी एवं फारसी भाषाओं का पण्डित था। वह ललित कलाओं का प्रेमी और गणित, तर्क शास्त्र, ज्योतिष, दर्शन शास्त्र और शरीर विज्ञान का भी ज्ञाता था। साहित्य का कोई अंग ऐसा न था जिससे वह अछूता रहा हो। बर्नी ने लिखा है कि "वह [illegible] एक गम्भीर विचार तथा बुद्धि का चमत्कार [illegible] था।" वह कुरान के ज्ञान से पूर्ण रूप से परिचित था। वह किसी भी समस्या का गूढ़ अध्ययन कर सकता था और उसी समय उसे उस समस्या के मोटे रहस्य का ज्ञान भी रहता था। वह एक आदर्शवादी था और [illegible] एक दार्शनिक शासक के रूप में विचार किया करता था। वह इतनी विलक्षण बुद्धि का मनुष्य था कि एक बार किसी समस्या का हल स्वयं ढूंढ कर निकाल लेता तो उसे कार्यरूप में परिणत कर देता था और उसके परिणाम की चिन्ता नहीं करता था। ऐसा करने में वह इतना तत्पर था कि [illegible] वर्षों लगते थे। वह बड़ा [illegible] था और [illegible] पड़ता था। [illegible] [illegible] था, परन्तु [illegible] में [illegible] थी। [illegible] [illegible] पूर्ण थे। [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] और वह धर्म को [illegible] करता था।

[illegible]

एक विद्रोही के बन्दी बना लिये जाने पर उसने न केवल उसकी हत्या करवा दी वरन् उसके मांस को भोजन के साथ मिला कर उसके सम्बन्धियों के पास भेजवा दिया था। यही नहीं वह उलमाओं को कठोर दण्ड दिया करता था और इब्नबतूता का कथन है कि उसके द्वार पर एक भिखारी का लखपती होना और एक धनी का निर्धन होना अथवा मृत्यु को प्राप्त होना साधारण बात थी।

एक शासक के रूप में वह प्रजा की भलाई करना चाहता था। वह शासन-प्रणाली में सुधार करना चाहता था और भारत को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ऊँचा उठाना चाहता था। उसे शासकीयता का पूर्ण ज्ञान था और किसी सीमा तक वह भारतीय (हिन्दू) जनता को कुछ अधिकार अथवा सुविधायें देना चाहता था। उसे राज्य की समस्याओं का अच्छा ज्ञान था और उसमें इन समस्याओं को सुलझाने की योग्यता थी। उसे अपनी योजनाओं में असफलता प्राप्त हुई तो इसका उत्तरदायित्व केवल मुहम्मद तुगलक पर नहीं था।

उसके चरित्र के आधार पर सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक की कड़ी आलोचना की गई है। एलफिंस्टन, हेवेल आदि कुछ इतिहासकारों ने उसे पागल बताया है, परन्तु यह निराधार है। डा० ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में "पाश्चात्य कालीन लेखकों ने उस पर जो रक्त पिपासुता एवं विक्षिप्तता के दोष लगाये हैं वह अधिकांश में निराधार हैं। किसी भी समकालीन लेखक ने उसे पागल नहीं बताया। रक्त पिपासुता का दोष मुल्लाओं द्वारा लगाया गया है, जिनके प्रति सुल्तान का व्यवहार स्पष्टतया उपेक्षापूर्ण रहा। यह सत्य है कि मध्य युग के अन्य निरंकुश शासकों के समान वह भी प्रचण्ड क्रोधावेश से भर उठता था और अपनी इच्छाओं के प्रतिकूल चलने वालों को उनके पद एवं सम्मान का कुछ भी ध्यान न कर घोर दण्ड देता था।"

बर्नी एवं इब्नबतूता के वर्णन से भी यही सिद्ध होता है कि मुहम्मद तुगलक को निरर्थक रक्त बहाने का शौक न था और वह अपने शत्रुओं के प्रति भी मानवीय व्यवहार करता था। श्री गार्डनर ब्राउन के अनुसार—"उसका निरंकुश कहना सत्य हो सकता है, परन्तु मध्य युग में अन्य किसी प्रकार का शासन तन्त्र का विचार भी नहीं किया जा सकता था, इस शब्द को ऐसे रूप में प्रयोग करना, जैसे कि यह किसी दुराचार अथवा रोग का नाम हो, इस सत्य को भुला देना है कि एक निरंकुश शासक जिस तक नवीन विचारों की पहुँच हो सकती है या जो सुधार के कार्यों में प्रवृत्त होता है, वह एक ऐसे समय में जब शिक्षा का प्रचार हो और रूढ़िवाद बद्धमूल हो, अपनी प्रजा की अभिवृद्धि के लिए बहुत कुछ कर सकता है।"

वास्तव में उसके सुधारों की योजनायें समय से आगे थीं और उसके अविकसित मस्तिष्क के अधिकारी उसका हृदय से सहयोग न देते थे और यही कारण था कि उसकी योजनायें असफल रहीं। परन्तु इस असफलता के लिए सुल्तान भी उत्तरदायी था क्योंकि वह अपने अधिकारियों को अपने कठोर नियन्त्रण के अन्तर्गत करने में असफल रहा। यद्यपि डा० ईश्वरी प्रसाद एवं अन्य इतिहासकारों ने उसकी असफलता को गौरवमय असफलता घोषित करने की चेष्टा की है तथापि सत्य तो यह है कि

दक्षिण की ओर प्रस्थान किया तो उसने राजधानी में फिरोज़ के अन्तर्गत एक कोसिल का निर्माण किया था और इस कोसिल को सुल्तान की अनुपस्थिति मे राजधानी के उचित प्रबन्ध का कार्य दिया गया था। सुल्तान की मृत्यु के समय फिरोज़ थट्टा में पहुँच चुका था। ऐसा प्रतीत होता है कि राजकीय परिवार मे सम्बन्धित व्यक्तियों में फिरोज़ सर्वोच्च व्यक्ति था और परिणामस्वरूप एक मत से सुल्तान चुना गया। परन्तु फिरोज के सिंहासनारोहण के सम्बन्ध मे मतभेद है। शम्श ए सिराज अफीफ का कथन है कि मुहम्मद तुगलक के एक पुत्र था और बर्नी इस कथन को अस्वीकार करता है। वह फिरोज़ का सिंहासनारोहण निम्नलिखित आधार पर उचित बतलाता है :

(१) भूतपूर्व सुल्तान (मुहम्मद तुगलक) ने फिरोज़ को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था।

(२) भूतपूर्व सुल्तान ने फिरोज़ को अपने साम्राज्य के एक भाग का शासन प्रबन्ध सौंप कर उसे शासन कार्य में विशेष अनुभव प्राप्त करने की प्रत्येक सुविधा प्रदान की थी।

(३) सिन्ध के सैनिक पड़ाव में एक उच्च पदाधिकारी की उपस्थिति आवश्यक थी और इसीलिए फिरोज़ को बुलाया गया था।

(४) खलीफा को भेजे गये पत्र में फिरोज का नाम जिस ढग से लिखा गया था उससे फिरोज के उत्तराधिकारी नियुक्त किये जाने की बात सत्य सिद्ध होती है।

(५) मुहम्मद तुगलक के कोई पुत्र न था।

वास्तविकता यह थी कि मुहम्मद का कोई पुत्र न था। अन्यथा बर्नी को एव सिंहासन पर अपने पुत्र का दावा करने वाली मुहम्मद की बहन को इसका ज्ञान होना चाहिये था। बर्नी का कथन है कि प्रधान मन्त्री ख्वाजा जहाँ ने एक अल्पवयस्क बालक को गद्दी पर बैठा दिया। बर्नी ने प्रधान मन्त्री के इस कार्य को देश विद्रोह बतलाया है। परन्तु हमें मान्य नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रधान मन्त्री के एक दूत ने उसे सूचना दी थी कि फिरोज़ एव तातार खाँ मार डाले गये हैं। परिणामस्वरूप ख्वाजा-जहाँ ने साम्राज्य को सुरक्षित रखने के विचार से एक अल्पवयस्क बालक को मुहम्मद का पुत्र घोषित कर सिंहासन पर बैठा दिया। दूसरी ओर परिस्थिति की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुए अमीरों ने खुदावन्द जादा के पुत्र के स्थान पर फिरोज़ तुगलक को सुल्तान घोषित किया। फिरोज राजकीय झमेले में नहीं पड़ना चाहता था। परन्तु स्थिति की गम्भीरता के कारण उसे इस पद को स्वीकार करना ही पड़ा। ख्वाजा जहाँ ने फिरोज से क्षमा माँग ली। परन्तु फिरोज की इच्छा के विपरीत उसके अन्य सरदारों ने उसे विश्वासघाती कहा। प्रधान मन्त्री को समाना की जागीर मे चले जाने को कहा गया परन्तु मार्ग में ही उसका बध करवा दिया गया। इस प्रकार फिरोज के सिंहासनारूढ होते ही उसकी दुर्बलता एव सरदारों की स्वेच्छाचारिता का परिचय मिलता है।

साम्राज्य-विस्तार

बगाल पर प्रथम आक्रमण—पहले बताया जा चुका है कि मुहम्मद तुगलक

थी। बङ्गाली जानते थे कि यदि सुल्तान की सेना डटी रही तो उनकी पराजय अवश्यम्भावी है। अत. सन्धि की वार्त्ता चलने लगी। सिकन्दर के दूत हैबत खाँ ने बड़ी चतुरता, धैर्य एव दृढ़ता का परिचय दिया। सिकन्दर ने सुनारगाँव जफर खाँ को लौटा दिया व सुल्तान को ४० हाथी तथा अन्य बहुमूल्य उपहार भेट मे दिये गये। इस प्रकार दूसरी बार भी सम्राट खाली हाथ वापस लौट आया।

जाजनगर पर आक्रमण—बङ्गाल से लौटते हुए सुल्तान जौनपुर मे ठहरा, वहाँ से वह जाजनगर (वर्त्तमान उडीसा) की ओर चला। उस समय जाजनगर बहुत समृद्ध था एव वहाँ खाद्य सामग्री की बहुलता थी। शाही सेना को आता देख कर जाजनगर का राय भाग खड़ा हुआ। वह टापू मे भाग कर छिप गया जहाँ शाही सेना ने उसका पीछा किया। सुल्तान ने पुरी मे जगन्नाथ के मन्दिर को तोड़ कर समुद्र में फकवा दिया। निराश होकर राय ने सन्धि के दूत भेजे। राय ने प्रति वर्ष कुछ हाथी देना स्वीकार कर लिया। सुल्तान मार्ग मे अन्य अनेक हिन्दू सरदारो एव जमीदारों को आक्रान्त करता हुआ दिल्ली लौट आया।

नगरकोट पर आक्रमण—नगरकोट मे ज्वालामुखी मन्दिर जिसमे प्रति वर्ष असख्य तीर्थ यात्री आकर भेंट चढ़ाते थे अति प्राचीन एव प्रचुर सम्पत्ति का आगार था। नगरकोट को मुहम्मद तुगलक ने १३३७ ई० मे विजय किया था। परन्तु अपने जीवन में वह उसे खो भी बैठा। उपर्युक्त मन्दिर के ऐश्वर्य को फिरोज जैसा कट्टर धर्मान्ध कैसे सहन कर सकता था। सुल्तान ने नगरकोट का दुर्ग घेर लिया। ६ मास तक घेरा पड़ा रहा और दोनों पक्षों का बल कम हो गया। राय ने किले के बाहर निकल कर सुल्तान से क्षमा माँग ली और सुल्तान ने उसे क्षमा प्रदान करते हुए दुर्ग लौटा दिया। नगरकोट के ज्वालामुखी मन्दिर मे सुल्तान को १३०० सस्कृत के ग्रन्थ उपलब्ध हुए जिनमे से कुछ का अनुवाद उसने फारसी में कराया।

थट्टा पर आक्रमण—जैसा हम पिछले पृष्ठों में पढ़ चुके हैं मुहम्मद तुगलक की मृत्यु थट्टा के निकट हुई थी। थट्टा के लोगा से बदला लेने की भावना से फिरोज ने सिन्ध की ओर प्रस्थान किया। एक विशाल सेना एकत्रित हो गई, परन्तु इसी समय महामारी एव दुर्भिक्ष का प्रकोप हो गया और लगभग चौथाई सेना रसद न मिलने के कारण समाप्त हो गई। परन्तु जब बची हुई सेना से सुल्तान ने आक्रमण किया तो उसने जाम बाबानिया को परास्त कर दुर्ग मे खदेड दिया। इसी बीच सैन्य बल बढ़ाने के लिए सुल्तान गुजरात को प्रस्थान किया, परन्तु मार्ग मे दर्शकों ने विश्वासघात किया। सेना रास्ता भूल गई और कच्छ के रन मे फँस गई। इसी समय घोर अकाल पड़ा। बड़ी कठिनाई से सुल्तान गुजरात पहुँचा और लगभग दो करोड मुद्रायें व्यय कर उसने युद्ध सामग्री जुटाई। सेना ने थट्टा की ओर प्रयाण किया और सिन्ध नदी के तट पर डेरा डाला, परन्तु सिन्धियो ने उन्हें नदी पार न करने दिया। पुन' नदी के ऊपर की ओर जाकर भक्कर के नीचे से नदी को पार किया गया। भीषण सग्राम छिड़ गया। परन्तु ठीक ऐसे समय पर जब कि विजय की सम्भवना हो गई थी सुल्तान ने सेना को वापस बुला लिया क्योकि निर्दोष मुसलमानो का रक्तपात सुल्तान कैसे देख सकता था! सिन्धियो का प्रतिरोध इस पर समाप्त नहीं हुआ। अत सुल्तान की युद्ध समिति ने

रूप में सामान्य प्रजा के हित को देखते हुए उसके शासकीय चरित्र का मूल्यांकन द्वारा निश्चित की जाती है। उसे अकबर महान् अथवा औरंगजेब के समान बतलाना अनुचित होगा। उसमें अकबर महान् के चारित्रिक गुणों का शतांश भी न था और यद्यपि धार्मिक कट्टरता में वह औरंगजेब का पूर्वज था परन्तु उसमे उस महान् शासक के अन्य गुणों का लेश मात्र भी न था।

उसके चरित्र की और साथ ही साथ उसके शासन की मुख्य विशेषता थी उसकी धर्मान्धता। औरंगज़ेब के पूर्व सिकन्दर लोदी के शासन को छोड़ कर अन्य किसी भी शासन काल में धर्म को इतनी प्रधानता नहीं दी गई थी। आश्चर्य तो यह है कि राजपूत माता के गर्भ से उत्पन्न सुल्तान मे कट्टर पन्थी भावनाओं का उदय कैसे हुआ। वह कट्टर सुन्नी वर्ग का अनुयायी था और अपने कट्टर सहयोगियों के प्रभाव मे रहने के कारण उसने अन्य धार्मिक सम्प्रदायों के दमन की आज्ञा दी। धार्मिक स्थानों एवं मकबरों पर स्त्रियों को जाने से रोक दिया और इस नियम का उल्लंघन करने वालों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई। इतिहास में सर्वप्रथम ब्राह्मणों पर जज़िया कर लगाया गया। हिन्दुओं के मन्दिरों को ध्वंस किया गया और मूर्तियों को तोड़-फोड़ कर समुद्र में फेंकवा दिया। मन्दिरों के स्थान पर मस्जिदों का निर्माण कराया। हिन्दू ही नहीं उदार मुस्लिम सम्प्रदाय भी उसके कोप-भाजन बने।

उसके शासन काल में राज्य द्वारा धर्म परिवर्तन को प्रोत्साहित किया गया और इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने वाले व्यक्ति को जजिया से मुक्त कर दिया जाता था। तारीखे-फिरोज़-शाही के अनुसार उसने एक ब्राह्मण को जिसने मुसलमान बनने से इनकार कर दिया था यह दोष लगाकर राजप्रासाद के सामने जीवित जलवा दिया था।

धर्म का प्रभाव उसकी सैनिक योग्यता पर भी हुआ। बात-बात मे कुरान का अनुगामी सुल्तान अपने सहधार्मियों का खून बहाना पाप समझता था और इसी प्रवृत्ति के कारण उसमें एक कुशल सेना नायक के गुणों का अभाव था। एक सैनिक नेता के रूप मे वह पूर्णतया असफल रहा है। युद्ध स्थल पर होते हुए भी उसे अपनी नीच वासनाओं का ध्यान रहता था और अपने खेमे में अर्द्ध नग्न अवस्था में पड़ा रहता था। तातार खाँ के डाँटने पर सुल्तान ने उसे अन्यत्र भेज दिया था। परन्तु फिरोज में कुछ गुण भी थे। अपने सहधर्मियों के प्रति दयालु था। उसने मुस्लिम कन्याओं के विवाह हेतु धन दिया था। न्याय में कठोर दण्डों का अन्त करवा दिया और गुप्तचर प्रणाली को भी समाप्त कर दिया। मुस्लिम संस्थाओं को दान दिया गया और प्रजा की भलाई हेतु सिंचाई की सुविधायें प्रदान की, चिकित्सालय खुलवाये और निःशुल्क चिकित्सा का प्रबन्ध किया गया। इस प्रकार उसने प्रजा की भलाई के हेतु पूरा प्रयत्न किया।

मृत्यु—अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वृद्धावस्था एवं अपने दुर्बल स्वभाव के कारण राज कार्य खान ए जहान पर छोड़ दिया जो घमण्डी और उदण्ड स्वभाव का मनुष्य था। इससे अमीर रुष्ट हो गये। युवराज मुहम्मद एवं 'खान-ए-जहान' के बीच मनमुटाव हो गया जिसके कारण घोर अव्यवस्था छा गई। युवराज के नीच

अमीरों के कारण गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। अन्त में मुहम्मद को गिरि प्रदेश की ओर खदेड़ दिया गया। अपने पौत्र तुगलक ग्यासुद्दीन शाह को उत्तराधिकारी नियुक्त करके अक्टूबर १३८८ ई० में ८० वर्ष की आयु में फीरोज का देहावसान हो गया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. तुगलक वंश का संस्थापक कौन था? उसने किस प्रकार साम्राज्य-विस्तार किया?

२. मुहम्मद तुगलक के विषय में आप क्या जानते हैं। क्या वह वास्तव में पागल था?

३. फिरोज तुगलक के कार्यों पर प्रकाश डालिए?

अध्याय ४२

मंगोल और दिल्ली के तुर्क सुलतान

मगोल कौन थे—मध्यकालीन भारतीय इतिहास की एक मुख्य विशेषता थी उत्तरी भारत एव मध्य एशिया की राजनैतिक उथल-पुथल का पारस्परिक सम्बन्ध। उत्तरी भारत में तुर्की साम्राज्य की स्थापना उन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप थी जो उसी समय मध्य एशिया में घट रही थीं। इस मरु प्रदेश की उथल-पुथल का दबाव भारतीय राजनैतिक व्यवस्था पर पड़ता रहा है। कुतुबुद्दीन ऐबक के शासन काल से भारत में मुस्लिम राज्य एक प्रकार से स्वतन्त्र राज्य था। मध्य एशिया के राज्यों से अलग एक अन्य मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई थी। परन्तु उसी समय मध्य एशिया मे दो महान् शक्तियों का उदय हुआ जिनके परिणामस्वरूप भारत को एक ऐसी समस्या का सामना करना पड़ा जो अद्वितीय रूप से विनाशकारी थी। एक शक्ति थी ख्वारिज़म के साम्राज्य की और दूसरी थी विनाशकारी एव निर्मम मगोल सैनिको की।

कुछ विद्वानों के कथनानुसार मगोल या मुगल एक ही शब्द के विभिन्न रूप हैं। मध्य एशिया के पश्चिमवर्ती राज्यों में इस्लाम धर्मावलम्बियों के सम्पर्क में आने पर इनके जातीय नाम का अशुद्ध उच्चारण होने लगा और इन्हे मुगल कह कर पुकारा गया। परन्तु कुछ विद्वानों के मतानुसार भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में मगोल शब्द का व्यवहार केवल उन धर्महीन छोटी आँखो वाले जन समूह के लिए किया जाना चाहिए, जिनमें अधिकाश चगेज खॉ के अनुयायी थे और मुगल शब्द का व्यवहार उस तुर्क जाति के लिए सुरक्षित रखना चाहिए जो मगोलो से अधिक सभ्य थे और जिन्होने १४ वीं शताब्दी मे इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया था।

मगोल शब्द की उत्पत्ति मग शब्द से हुई है और इसका अभिप्राय है "वीर, साहसी एव दुर्दान्त।" प्रारम्भ में मगोल एक विशाल समूह की एक शाखा मात्र थे जो मध्य एशिया में विचरण किया करते थे। कालान्तर मे उन्हें एक ऐसे साम्राज्य के रूप में ढाल दिया गया था जो विश्व इतिहास के केवल एक विजेता द्वारा स्थापित किया गया था। यह मध्य एशिया का विशाल साम्राज्य था। सुविख्यात चगेज़ खॉ के नेतृत्व में उस जाति ने तातार, एव चीन प्रदेश और कैस्पियन सागर पर अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित कर ली थी।

मगोल लोग प्रचण्ड एव बर्बर थे। उनकी आँखें छोटी और कद ठिगना था। उनके हाथ रीछ के पजों की तरह बलिष्ठ होते थे। उनका स्वभाव क्रूर और प्रभाव विनाशकारी होता था। कुबलाई खॉ के सम्बन्ध मे हैवर्थ ने आश्चर्यजनक विवरण दिया है। वह लिखता है कि कुबलाई खॉ आग के समीप सो जाया करता था और आग से

ज़म साम्राज्य में उस वंश का सर्वश्रेष्ठ एवं सफल व्यक्ति मुहम्मद शासन कर रहा था जो न केवल अपने शत्रुओं का दमन करने में ही सफल हुआ था वरन् उसने गौर सीमा पर भी अधिकार कर लिया था। दुर्भाग्यवश उसने चंगेज खाँ के राजदूत को कुछ बुरा-भला कह दिया। बस फिर क्या था। मध्य एशिया में एक भयंकर तूफान आ गया। चंगेज खाँ अपमान सहन कर लेने वाला व्यक्ति न था। उसने अपनी विशाल सेना के साथ आक्रमण कर दिया और अगले तीन वर्षों में उसने ख्वारिज़म के शक्तिशाली शासक के सम्पूर्ण गौरव को मिट्टी में मिला दिया। महमूद की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र जलालुद्दीन मैंगबर्नी ने युद्ध जारी रखा और एक बार अपने मूल स्थान पर अधिकार करने में सफल हो गया परन्तु चंगेज ने उसे पुनः खदेड़ दिया। जलालुद्दीन ने भारतीय सीमा में प्रवेश किया।

इस समय दिल्ली के सिंहासन पर शमसुद्दीन इल्तुतमिश विराजमान था और मध्य कालीन भारत उस दूरदर्शी शासक का कृतज्ञ है क्योंकि इल्तुतमिश ने चंगेज खाँ की शक्ति का आभास पा लिया था। उसे इस बात का भी ज्ञान था कि यदि ख्वारिज़म के वीर सुल्तान जलालुद्दीन को दिल्ली साम्राज्य में आने की स्वीकृति दे दी गई तो समस्त दिल्ली साम्राज्य तुर्कों से छिन जाएगा। जलालुद्दीन ने दिल्ली आने की इच्छा प्रकट की थी और वह दिल्ली सुलतान की सहायता चाहता था। परन्तु इलतुतमिश ने विनम्रतापूर्वक उसकी प्रार्थना को ठुकरा दिया और उसके दूत को मरवा डाला। फिर भी जलालुद्दीन ने चंगेज खाँ का वीरतापूर्वक सामना किया और पराजय होते देख सिन्ध नदी में कूद पड़ा। वीर का सामाना वीर ही कर सकता है। जलालुद्दीन के उस साहसपूर्ण कार्य को देखकर चंगेज खाँ ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि उसकी हत्या न करें। जलालुद्दीन सुरक्षित निकल गया। मंगोलों ने आगे बढ़ कर मुल्तान पर अधिकार कर लिया। परन्तु इस स्थान की असह्य गर्मी को सहन न कर सकने के कारण वह वापस लौट गये और भारत से एक महान विपत्ति टल गई।

इस प्रकार मध्य एशिया की घटनाओं का भारतीय राजनीति पर काफी प्रभाव पड़ा। भारत के तुर्की साम्राज्य को अपने जीवन काल के प्रारम्भिक वर्षों में मंगोलों की अप्रत्यक्ष परन्तु अपूर्व सहायता प्राप्त हुई और दिल्ली सुल्तानों को अपने राज्य संगठन का सुअवसर प्राप्त हुआ। एक सफल शासक एवं सेना-नायक होते हुये भी इल्तुतमिश को राज्य संगठन के कार्य में महान् कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। गजनी का यालदूज़ और सिन्ध का कुबैचा साम्राज्य संगठन के मार्ग में काँटा बने हुए थे। परन्तु मंगोलों के आक्रमण से दोनों की शक्ति क्षीण हो गई और इल्तुतमिश के लिए उन्हें पराजित करना सरल हो गया। ख्वारिज़म राज्य के पतन के बाद यालदूज के एक भगोड़ा भाग रह गया और सन् १२१५ में इल्तुतमिश द्वारा परास्त हुआ।

अब कुबैचा को लीजिये। उसे भी चंगेज खाँ द्वारा भगाए हुये जलालुद्दीन का सामना करना पड़ा। यालदूज की तरह कुबैचा भी पञ्जाब और यहाँ तक कि दिल्ली पर अपना अधिकार करना चाहता था। पञ्जाब में जलालुद्दीन के आगमन ने कुबैचा एवं इल्तुतमिश दोनों को सतर्क कर दिया। इल्तुतमिश द्वारा सहायता की ओर से निराश होकर जलालुद्दीन सिन्ध की ओर बढ़ा और कुबैचा की शक्ति को दबा दिया।

सम्पूर्ण शक्ति लगा दी थी। यही नहीं वरन् इस विस्तृत साम्राज्य को शासन, न्याय, सामन्तवाद के सगठन और प्रतिद्वन्द्वियों के दमन द्वारा सुदृढ बनाया। एक अन्य आकस्मिक प्रभाव यह हुआ कि बर्बर मगोल सेनाओं के प्रकोप से भागने वाले मध्य एशिया वाले साहित्यकारों, कवियों एव दार्शनिको ने दिल्ली साम्राज्य मे शरण ली। उनकी आर्थिक दशा शोचनीय थी और भूख से पीड़ित थे। इस प्रकार मगोलो के आक्रमण स्वरूप भारत में विदेशी मुसलमानों का आगमन हुआ और साहित्यिक दिशा में काफी उन्नति हुई।

पुनः राजनैतिक इतिहास की ओर चलें। इल्तुतमिश की मृत्यु के उपरान्त मगोलों ने दिल्ली सामन्तों के षड्यन्त्रों, सुल्तान की दुर्बलता एव उत्तर-पश्चिमी सीमा की ओर से दिल्ली सुल्तान की उदासीन नीति का पूरा-पूरा लाभ उठाया। उन्होने पजाब पर आक्रमण किया और व्यास नदी की सीमा तक अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ा लिया।

सन् १२२८ में चगेज खाँ की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी उकताई ने १२२८ से १२४१ तक, चगताई ने १२२८ से १२४० तक शासन किया। पहले बताया जा चुका है कि कैयूक चगताई का उत्तराधिकारी था। उसकी मृत्यु के उपरान्त मगूता ने १२५४ तक शासन किया। उसके बाद हलाकू खाँ सिंहासनारूढ हुआ। चगेज के उत्तराधिकारियों में हलाकू खाँ का स्थान सर्वोच्च है। उसका प्रभाव बगदाद से लेकर गजनी तक था।

भारत में उसी काल में इल्तुतमिश, रुकुनुद्दीन फिरोज, रज़िया, बहराम एव नासिरुद्दीन ने शासन किया। नासिरुद्दीन महमूद के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त की समस्या थी। भाग्यवश उसे बलबन का सहयोग प्राप्त था। सुल्तान ने पश्चिम की ओर प्रस्थान किया। मगोल पीछे हटा दिये गए। खोखरों को नियन्त्रण में किया गया। पजाब के सामन्तो को भी स्वामिभक्ति के लिए जमानत देने के लिए बाध्य किया गया। परन्तु सुल्तान को सफलता का वास्तविक कारण कुछ और था। उस समय मध्य एशिया का शासक मगू खाँ अपनी आन्तरिक समस्याओं में उलझा हुआ था। इसी कारण सुल्तान मगोलो को पीछे हटाने में सफल हुआ था परन्तु सुल्तान की यह सफलता स्थायी नहीं थी। मगोलो ने पुनः व्यास नदी की सीमा तक अपना अधिकार स्थापित कर लिया और नासिरुद्दीन के शासन काल में उनका यह अधिकार स्थायी रहा। उन्होंने आक्रमणकारी नीति का अनुकरण किया और पश्चिमी पञ्जाब उनके अधिकार में था। बलबन ने अपने सम्मुख दो उद्देश्य रखे थे, उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त की सुरक्षा और अपनी शक्ति की सुदृढ़ता।

इस प्रकार बलबन ने अपनी योजना को कार्यान्वित करना शुरू किया। पञ्जाब के विद्रोही सामन्तों के स्थान पर उसने अपने सम्बन्धियों को नियुक्त किया। यही नहीं उसने सम्बन्धियों पर भी नियन्त्रण रखा। उसने शेर खाँ सुनकर और कुतलुग ख्वाजा को मुल्तान, उच, तबर हिन्द एव सुनाम की सुरक्षा हेतु उन प्रदेशों मे सेना अध्यक्ष नियुक्त किया। दूसरी ओर बलबन ने एक अन्य वर्गीय व्यक्ति इजुद्दीन किचलू खाँ को नागोर का सेनाध्यक्ष नियुक्त किया। इस प्रकार एक ओर बलबन के निजी व्यक्ति थे

मगोलों को पीछे खदेड़ दिया गया था और लाहौर एव मुल्तान पर पुन. अधिकार कर लिया गया। यह समस्या की पुनरावृत्ति थी। मगोला ने इसे अपना अपमान समझा और आक्रमण कर दिया। राजकुमार मुहम्मद उस समय वहाँ पर नहीं था। लाहौर पर अधिकार कर लिया गया और वह मुल्तान की ओर अग्रसर हुआ। परन्तु राजकुमार मुहम्मद ने उसे पराजित किया और वह स्वयं मारा गया। इस प्रकार भारत एव मगोलों के पारस्परिक सम्बन्ध का अन्त हुआ।

सक्षेप में मगोल आक्रमण के तीन प्रभाव हुए :—

(१) इससे निरकुश शासक की शक्ति और दुर्बल सुल्तान की दुर्बलता में वृद्धि हुई।

(२) भारतीय तुर्की साम्राज्य का विस्तार असम्भव हो गया।

(३) पजाब विशेषतया: मुल्तान मगोलों का निवास-स्थान बन गया और अला-उद्दीन के समय में इन पर गुप्तचर होने का आरोप लगाया गया।

खिल्जी वश और मगोल—१२९० ई० में जलालुद्दीन फिरोज़ खिल्जी की उपाधि धारण कर दिल्ली के राजसिंहासन पर सुल्तान के रूप मे सिंहासनारूढ हुआ। दो ही वर्ष पश्चात् १२९२ ई० में हलाकू खाँ के पौत्र अब्दुल्ला ने १५०००० सैनिकों के साथ भारत पर आक्रमण कर दिया और सुनाम तक पहुँच गया। आक्रमण की सूचना मिलते ही फिरोज़ खिल्जी ३०००० सैनिकों की एक विशाल सेना लेकर सिन्ध नदी के पूर्वी तट की ओर बढ़ा। दोनों पक्षों में घमासान युद्ध हुआ और मगोल पराजित हुए। परन्तु विजयी सुल्तान ने मगोलों के साथ सन्धि कर ली। सुल्तान ने अपनी कन्या का विवाह चगेज़ खाँ के पौत्र उलगू खाँ से कर दिया। मंगोलों का सरदार अब्दुल्ला वापस लौट गया। परन्तु उलगू खाँ भारत में ही रहा। जलवायु अनुकूल न होने के कारण अधिकाश मगोल लौट गये। जो बचे थे उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और नये मुसलमान कहलाये जाने लगे। वैवाहिक सम्बन्ध के कारण मगोलों के आक्रमण रुक गये। भारत स्थित मुगलों ने मुगलपुरा नामक नगर का निर्माण किया। मुसलमान प्रजा और मगोलों में पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ते चले गये और दोनों ने एक दूसरे की रीति-रिवाजों का अनुसरण किया।

यह सन्धि राजनैतिक दृष्टिकोण से विवेकशून्य कही जा सकती है क्योंकि भारत के घोर शत्रु मगोलों को अपनी राज्य सीमा मे स्थान देने का अर्थ था उन्हें राजनैतिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का अवसर प्रदान करना। ये नये मुसलमान विश्वास-पात्र नहीं थे। वे षड्यन्त्र आदि मे भी भाग लेते थे और यही कारण था कि अलाउ-द्दीन ने सिंहासनारूढ होते ही मगोलों की ओर ध्यान दिया।

अलाउद्दीन के शासन काल में मगोलों के आक्रमण शुरू हो गए थे। सिंहास-नारोहण के एक ही वर्ष पश्चात् ट्राक्सियाना के शासक अमीर दाऊद ने एक लाख

गोरियों के साथ भारत पर आक्रमण कर दिया। उसका प्रदेश मुल्तान, पंजाब तथा सिंध पर अधिकार करना था। परन्तु नासिरुद्दीन [illegible] के प्रति [illegible] न था। [illegible] मुल्तान [illegible] किया। [illegible] आरम्भ [illegible] किया।

परन्तु मंगोल बार बार आक्रमण करते रहे। [illegible] १२८५ ई० में [illegible]

[illegible]

ही सामना किया हो ऐसी बात नहीं है। उसने उसके बाद होने वाले अनेक मुग़ल आक्रमणों का सामना किया और प्रत्येक बार मुगल वापस लौट गये। गाजी मलिक ने मगोलों को महान् क्षति पहुँचायी थी परन्तु १३०७ में इकबाल मन्दा ने पुनः आक्रमण कर दिया। सुल्तान ने एक विशाल सेना भेजी। मगोल परास्त हुए और उनके अनेक सेनानायकों को हाथी के पैरो के नीचे कुचल डाला गया। मगोल इतने भयभीत हो गये कि उन्होंने पुनः भारत की ओर आने का साहस नही किया। पश्चिमोत्तर सीमा सुरक्षित एव शान्तिमय थी। सुल्तान अलाउद्दीन के लिए यह स्थिति सन्तोषजनक थी क्योंकि वह भारत के अन्य भागो पर अधिकार करना चाहता था। मगोल आक्रमणों के शान्त हो जाने पर उसे अपनी साम्राज्यवादी नीति का अनुकरण करने का सुअवसर प्राप्त हो गया।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि खिल्जी वश की मगोल समस्या का कुछ भिन्न स्वरूप था। कारण कि भारत में मुस्लिम राज्य स्थापना एव सगठन का प्रथम भाग दास वश के पतन के साथ-साथ समाप्त हो गया था। दिल्ली सुल्तान की स्थिति प्रारम्भिक तुर्की सुल्तानो से अच्छी थी। उन्हें मगोल समस्या की विशेषताओं एव उसका सामना करने के उपाय का सकेत मिल चुका था। विशेषत बलबन की नीति खिल्जी शासकों के लिए लाभदायक सिद्ध हुई थी। अत खिल्जी शासक मगोल समस्या का समुचित सामना करने की स्थिति मे थे। खिल्जी व श मे दुर्बल शासकों का प्रश्न ही नहीं था क्योंकि फिरोज ने वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा मगालो को शान्त कर दिया था। अलाउद्दीन उनका सामना करने में समर्थ था। उसके मृत्योपरन्त दुर्बल एव विलासमय शासकों ने शासन किया जिनका शासन-काल क्षणिक था। अलाउद्दीन की सेनाओ से भयभीत एव क्षतिग्रस्त मगोल भारत की ओर आने से डरते थे। खिल्जी वश के समय मे पजाब के सामन्तो को विद्रोह करने का अवसर नहीं मिला क्योकि मगोल आक्रमणकारियो की निरन्तर उपस्थिति के कारण सुल्तान स्वय अथवा उसके स्वामिभक्त सेनानायक उपस्थित रहते थे। इस प्रकार पजाब के सामन्तो मे विद्रोही प्रवृत्तियो का उत्थान असम्भव बना दिया गया था। दास वश के समय में मगोलो ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर भारत को अपना घर बना लिया था। पहले बताया जा चुका है कि उन्हे नये मुसलमान कहा जाता था। अलाउद्दीन ने मगोल आक्रमणों का अन्त करने क साथ ही साथ इन नए मुसलमानो का भी अन्त कर दिया। यह मुसलमान जलालुद्दीन खिल्जी की उदारतापूर्ण नीति को पसन्द करते थे। अलाउद्दीन ने उनके साथ बड़ी कठोरता का व्यवहार किया। परिणामस्वरूप नए मुसलमानो में असन्तोष फल गया और प्रतिक्रियावादी एव षड्यन्त्रकारी प्रवृतिया का उदय हुआ। लूट के माल के विभाजन पर उन्होने विद्रोह कर दिया। नसरत खाँ के भाई और सुल्तान के एक भतीजे की हत्या कर दी। स्वय सुल्तान की हत्या करने की योजना बनाई गई परन्तु सुल्तान को इस षड्यन्त्र की सूचना मिल गई और उसने नव मुसलमानो को समूल नष्ट कर देने की आज्ञा द दी। सुल्तान ने यह आदेश दिया था कि नए मुसलमानों की हत्या करने वाले को उसकी सम्पत्ति पर अधिकार करने की आज्ञा है। इस प्रलोभन

के सैनिकों ने लगभग अनन्त मुसलमानों को मार डाला। और इस प्रकार मंगोलों एवं भारतीय मुसलमानों के धार्मिक सम्बन्ध टूट गये।

तुगलक वंश और मंगोल—तुगलक वंश के काल में मंगोल समस्या कोई विकट समस्या न थी। इस समस्या के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है जिसका यहाँ पर वर्णन किया जायेगा। गाजी मलिक जो बाद में गयासुद्दीन तुगलक के नाम से प्रसिद्ध हुआ मंगोलों का सामना कर चुका था। उसके शासन काल में मंगोलों ने एक आक्रमण किया था परन्तु [illegible] ने उन्हें [illegible] कर दिया था।

मुहम्मद तुगलक के शासन काल में मंगोलों का एक आक्रमण हुआ बताया जाता है। वस्तुतः यह केवल आकस्मिक [illegible] घटना मात्र थी। पर इस बात का प्रति[illegible] करती है कि भारत की पश्चिमी सीमा के [illegible] अभी तक भारत की ओर आकर्षित थे। [illegible] इस घटना के [illegible] बरनी ने इसका उल्लेख नहीं किया क्योंकि उसका [illegible] घटनाओं का वर्णन करना ही था। [illegible] इस घटना का उल्लेख किया है। इस घटना के सम्बन्ध में मतभेद है। फिरिश्ता ने इसका समय १३२६ ई० बतलाया है और [illegible] ने इसका समय १३२८ ई० घोषित किया है। जो कुछ भी हो हमें इससे विशेष प्रयोजन नहीं। हमें ध्यान रखना होगा कि यह आक्रमण [illegible] मंगोल [illegible] ने किया था। मंगोल शक्ति पूर्णतया नष्ट हो चुकी थी। तुर्क शक्ति का [illegible] था। [illegible] के आक्रमण की भूमिका तैयार कर रही थी।

मंगोल सरदार [illegible] का भारत की ओर आकर्षित होना [illegible] था। [illegible] भारत पर आक्रमण किया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

पहुँच गये। सुल्तान ने अपनी सेनाओं को एकत्रित किया और आक्रमणकारियों को पीछे खदेड़ दिया और कलानूर तक उसका पीछा किया। परन्तु एक अन्य इतिहासकार बदाउनी के कथनानुसार तीमाशिरीन दिल्ली को एक ओर छोड़ कर बदाऊँ की ओर बढ़ गया और सुल्तान की सेनाओं ने पीछे की ओर उस पर आक्रमण किया और फिर पीछा किया। फिरिश्ता का कथन है कि सुल्तान ने आक्रमणकारी को घूस देकर वापस जाने की प्रार्थना की।

अपने कथन के पक्ष में फिरिश्ता का कथन है कि मुहम्मद तुगलक आक्रमण-कारी का सामना करने की स्थिति में न था। राजधानी परिवर्त्तन अभी-अभी हुआ था। सुल्तान के पास अधिक सेना भी न थी, दूसरे सुल्तान एव तरिमाशिरीन के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध इस बात की ओर सकेत करत हैं कि सुल्तान ने उसे घूस दी थी।

बारीकी से विचार करने पर उपरोक्त कथन असत्य प्रतीत होता हे। मुहम्मद तुगलक एक कुशल सेना नायक था और उसमें विकटतम परिस्थितियों का सामना करने की योग्यता थी। सरग्द्वारी में दुर्भिक्ष से पीड़ित प्रजा की सहायता करते समय उसे अपने ही अफसरों के विद्रोह की सूचना मिली। मुहम्मद तुगलक ने एक चाल चली। उसने अपने स्वामिभक्त अफसरो को बुला भेजा और एक हजार सैनिकों के आने पर अपने ही कैम्प से कई हजार व्यक्ति उनके स्वागतार्थ भेज देता था। ऐसा करने पर वह इस बात की घोषणा किया करता था कि इस दिशा से दस हजार सैनिक आ गये हैं। सुल्तान की योजना सफल हुई और विद्रोहियों ने आत्मसमर्पण कर दिया।

ऐसे कुशल सेना-नायक के सम्मुख अलाउद्दीन एव अन्य शासको के अनुभव भी थे। सुल्तान को अपने सम्मान एव गौरव का ध्यान था। फिर यहिया के कथन को असत्य स्वीकार करना भी कठिन है क्योंकि सैयद शासन-काल मे लिखने के कारण उसे भयभीत होने का कोई कारण नजर नहीं आता। उसका कथन सत्य है कि सुल्तान ने आक्रमणकारियों को परास्त किया था। बदाउनी एव यहिया दोनो का अन्तिम निर्णय यही है कि आक्रमणकारी पराजित हुआ। यह स्वीकार करना कठिन हे कि सुल्तान के पास सेना कम थी। सामन्तवादी प्रथा अब भी प्रचलित थी और सुल्तान को उनसे सहायता मिल सकती थी।

दूसरा प्रश्न है मैत्र पूर्ण सम्बन्ध का। यह कोई नवीन अथवा आश्चर्यजनक घटना न थी। राजनैतिक मित्रता किन्हीं निश्चित सिद्धान्तो पर आधारित नहीं होती। द्वितीय महायुद्ध मे रूस एव अमेरिका मित्र दल में थे। मुहम्मद तुगलक और तरिमाशिरीन में भी इसी प्रकार की मित्रता थी। यह मित्रता थोड़े ही समय के लिए थी क्योंकि दोनों का उद्देश्य एक था और वह था खुरासान की विजय। अत घूस देने की बात असत्य है।

जहाँ तक इस आक्रमण के प्रभाव का प्रश्न है हम कह सकते हैं कि यह आक्र-मण आक्रमणकारी की यात्रा मात्र था और इसका प्रभाव नगण्य था।

इस प्रकार हमने देखा कि इल्तुतमिश के समय से ही मगोलों के आक्रमण शुरू हो गये थे। दिली सुल्तानों के सम्मुख यह आक्रमणकारी एक विकट समस्या

अध्याय ४३

तुर्की साम्राज्य–देश में शान्ति एवं सुव्यवस्था

दिल्ली सुल्तानों की शासन-व्यवस्था

सैनिक संगठन—भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना से न केवल राजनैतिक क्षेत्र में विभिन्न एव विरोधी समुदायों का उत्थान हुआ बल्कि इन विरोधी समुदायों में धार्मिक एव साहित्यिक विभिन्नता भी आ गई। एक ओर थे आक्रमणकारी मुसलमान धर्मावलम्बी और दूसरी ओर भारत की हिन्दू जनता। दोनों समुदायों में एक दूसरे के प्रति घृणा, अविश्वास एव भयकर शत्रुता थी। मुस्लिम धर्मावलम्बी विदेशी थे और उनका विरोध स्वाभाविक ही था। ऐसी स्थिति में एक शक्तिशाली सेना आवश्यक थी। वस्तुतः सेना ही मुस्लिम राज्य की मूल आधार थी। सेना पर ही राज्य की सुरक्षा निर्भर रहती है और मध्यकालीन भारत विशेषत· मुस्लिम राज्य में तो एक शक्तिशाली सेना की आवश्यकता थी। कारण स्पष्ट है। जैसा कि बताया गया है मुस्लिम विदेशी थे, उनका धर्म भारतीय जनता की धार्मिक भावनाओ के अनुकूल न था। साम्राज्यवादी मुस्लिम आक्रमणकारियों की भारत विजय का उद्देश्य केवल साम्राज्य स्थापना न था, वरन् वह अपने धर्म का विस्तार भी करना चाहते थे। इस समय तक आने वाले विदेशी आक्रमणकारी धीरे-धीरे भारत की सभ्यता एव संस्कृति में विलीन हो जाते थे परन्तु अरब आक्रमणकारी ऐसे न थे। उनका विभिन्न अस्तित्व था और वह अपने विभिन्न अस्तित्व को बनाये रखना चाहते थे। इसके विपरीत भारतीय जनता दासता से दूर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना चाहती थी। उसका परम धर्म था विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करना। इस प्रकार दोनों समुदाय एक दूसरे के विरोधी थे। ऐसी विकट परिस्थितियों में एक शक्तिशाली सेना का होना अत्यन्त आवश्यक था।

यह आवश्यकता भारत की हिन्दू प्रजा के विरोध स्वरूप उत्पन्न हुई थी। परन्तु इसके अन्य कारण भी थे। मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्ययन से इस बात का परिचय मिलता है कि दिल्ली सुल्तानों को अन्य धर्मावलम्बियों के विरोध के साथ-साथ स्वय मुस्लिम प्रजा एव सामन्तों की प्रतिक्रियावादी एव षड्यन्त्रकारी प्रवृत्तियों का सामना करना पड़ता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि दिल्ली सुल्तानों को सदैव आन्तरिक अशान्ति का भय बना रहता था। इसके अतिरिक्त उन्हें मगोल आक्रमणकारियों का भय था। जैसा कि पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं मगोल सैनिक बर्बर एव नृशस कार्यों में रुचि रखते थे और बार-बार पराजित होने पर भी वह पुनः नये जोश सहित भारत पर आक्रमण कर दिया करते थे। हम यह भी देख चुके हैं कि इन आक्रमणकारियों को रोकने के लिये दिल्ली सुल्तानों को कितना परिश्रम करना

पड़ता था। इस प्रकार आन्तरिक एवं वाह्य सुरक्षा के विचार से सेना की अत्यन्त आवश्यकता थी।

प्राय. प्रत्येक दिल्ली सुल्तान के सैनिक संगठन का मूल-स्वरूप एक जैसा ही था। यदि कोई विभिन्नता थी तो वह सुल्तानों के निजी निरीक्षण में। सामान्य रूप से सेना में सामन्तवादी प्रथा प्रचलित थी। सुल्तान की निजी सेना के अतिरिक्त प्रान्तीय सेनायें भी थीं जो सुल्तान के सम्बन्धियों अथवा स्वामिभक्त सेनानायकों के अधीन थी। वास्तविकता तो यह थी कि प्रत्येक सेना अध्यक्ष का प्रभाव क्षेत्र ही एक प्रान्त था। केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सेना की देख-रेख के लिये केन्द्र एवं प्रत्येक प्रान्त में एक सैनिक विभाग खोला गया था। इस विभाग का मुख्य अध्यक्ष आरिजे मुमालिक कहलाता था और इस विभाग को दीवाने अर्ज कहा जाता था। आरिजे मुमालिक सैनिकों की भर्ती और उनके वेतन की व्यवस्था करता था। इस विभाग में प्रत्येक सैनिक की हुलिया और उसका व्योरा रखा जाता था। यही नहीं प्रत्येक सैनिक को दिये गये घोड़े पर राजकीय चिह्न लगाया जाता था। घोड़ों को दागने की यह प्रथा अलाउद्दीन खिल्जी के शासनकाल में प्रचलित हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य युद्ध में प्रयोग में लाये जाने पर उन घोड़ों के स्थान पर दुर्बल घोड़ों का प्रवेश असम्भव था। इस प्रकार अलाउद्दीन खिल्जी ने अपनी सैनिक सगठन शक्ति का परिचय दिया और सेना की कार्यक्षमता बढ़ गई।

ऊपर बताया जा चुका है कि सैनिक संगठन सामन्तवादी प्रथा पर आधारित था। राज्य की सम्पूर्ण सेना को भिन्न-भिन्न राज्यों में रखा जाता था और आवश्यकता पड़ने पर यह सेना सुल्तान की सहायतार्थ बुला ली जाती थी। सैनिकों को वेतन के रूप में जागीरें दे दी जाती थीं। परन्तु यह प्रथा प्रत्येक सुल्तान के समय में प्रचलित न थी। दास वंश के प्रथम सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक एक नायब मात्र ही था और उसका सैनिक सगठन गजनी एवं गोर राज्यों के सैनिक सगठन पर आधारित था। इल्तुतमिश ने सामन्तवादी प्रथा को बनाये रखा और यह आवश्यक भी था। भारत में तुर्की राज्य को बनाये रखने के लिए राज्य के विभिन्न अंगों में सेना को रखना आवश्यक था और समयानुकूल परिस्थितियों की बाध्यता ने दिल्ली सुल्तानों को यह सुझाव दिया कि इन सैनिकों को राज्य के प्रति स्वामिभक्ति के पुरस्कारस्वरूप कुछ भूमि प्रदान की जाये। इसके दो लाभ थे। जागीर के शासन-प्रबन्ध का भारी उत्तरदायित्व सैनिक जागीरदारों को कार्य-कुशल एवं सतर्क बनाये रखता था। दूसरे सुल्तान से प्राप्त सहायता के बदले वह राज्य एवं सुल्तान के प्रति स्वामिभक्त बने रहते थे। यह एक प्रकार का आदान प्रदान था। यह परस्पर सहायता का उचित पुरस्कार था और सुल्तान एवं सैनिकों को एक दूसरे के प्रति विश्वास था। दोनों ही सन्तुष्ट थे। परन्तु इस सामन्तवादी प्रणाली में कुछ दोष भी थे। दिल्ली के प्रथम सुल्तान इस प्रथा को स्वीकार करने को बाध्य थे क्योंकि राज्य की सुरक्षा सामन्तों एवं सैनिक नेताओं की स्वामिभक्त पर आधारित थी। परन्तु उनकी स्वामिभक्ति एवं राज्यभक्ति सामान्यतः अपनी स्वेच्छा पर निर्भर थी अथवा सुल्तान की अपार शक्ति के सम्मुख ही वह स्वामिभक्त रह सकते

थे। यही कारण है कि दुर्बल एव अयोग्य शासकों के समय सैनिक नेता विद्रोह कर देते थे और अपनी जागीर को अथवा अन्तर्गत राज्य को स्वतन्त्र राज्य बनाने की चेष्टा किया करते थे। इल्तुमिश के बाद सर्वप्रथम बलबन ने इस समस्या की ओर ध्यान दिया। उसने समस्त जागीरें छीन ली और वृद्ध एव अयोग्य सैनिकों को निकाल दिया। तत्-पश्चात् बलबन के सैनिक सगठन में जागीर के स्थान पर नकद वेतन की प्रथा का आयोजन हुआ। परन्तु यह सुधार केवल केन्द्रीय सेना मे ही किया गया था। प्रान्तीय सैनिक सगठन में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। इस सुधार के फलस्वरूप कोई विशेप परिवर्त्तन नहीं हुआ था, फिर भी सेना की कार्यक्षमता मे सन्तोपजनक वृद्धि हुई।

बलबन के मृत्यापरान्त सैनिक सगठन ढीला पड़ गया। जलालुद्दीन खिल्जी सिंहासनारूढ होने तक बूढ़ा हो चुका था और वह शान्तिप्रिय था जबकि सेना को एक प्रबल एव सुयोग्य सेनानायक की आवश्यकता थी और वह व्यक्ति था अलाउद्दीन खिल्जी ।अलाउद्दीन ने दक्षिण पर आक्रमण किया था। रणथम्भौर के विरुद्ध सेना का नेतृत्व भी किया था। वह एक कुशल सेनानायक था और सैनिक सुधारों की ओर विशेप रुचि रखता था। इन सुधारों का गुप्त रहस्य यह था कि सुल्तान सेना के साथ अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। वह प्रचलित सामन्तवादी प्रणाली के स्थान पर एक साम्राज्यवादी सेना का निर्माण करना चाहता था। इस कार्य मे उसे अनेक सुधार करने पड़े।

अलाउद्दीन ने सैनिक सुधार की आवश्यकता का अनुभव किया था क्योंकि उसकी साम्राज्यवादी महत्वाकाक्षाओं की पूर्ति एक विशाल एव सुदृढ़ सेना द्वारा सम्भव थी। उसे सामन्तो एव सेनानायकों की विद्रोही प्रवृत्तियो का ज्ञान था। सेना ह सुल्तान के उत्थान एव पतन का आधार थी। इल्तुतमिश और बलबन सेना की ओर से सम्भावित भय को दूर करने अथवा सेना में विशेप सुधार करने मे सफल नहीं हुये। यह कार्य अलाउद्दीन पर छोड दिया गया था ।

उसका प्रथम सिद्धान्त था सैनिको की सीधी भर्ती। वह आवश्यकता के समय सैनिक नेताओं की स्वेच्छिक स्वामिभक्ति एव सैनिक सहायता प्रदान करने की रीति पर निर्भर रहने को तैयार न था। ध्यान रहे कि अलाउद्दीन के समय सैनिक आवश्यकता का समय एक सीमित काल न था। यह एक निरन्तर आवश्यकता थी और वह सीमा प्रान्तों की रक्षा एव राज्य में शान्ति एव सुरक्षा हेतु अपने निजी सिद्धात पर चलना चाहता था।

इस प्रकार एक आवश्यकता ने दूसरी आवश्यकता को जन्म दिया। उसने एक विशाल केन्द्रीय सेना को आयोजित करने का निश्चय किया जो किसी भी समय सुल्तान की सहायतार्थ रणक्षेत्र मे उपस्थित हो जाये। यही कारण था कि उसने सैनिकों की सीधी भर्ती पर जोर दिया। इस योजना से जातीय सेनाओं के नष्ट होने की सम्भावना थी। यह सेनानायक निजी रूप से सैनिको को भर्ती करते थे और सुल्तान की सहायतार्थ में दिया करते थे। यह सैनिक अनुभवहीन और अयोग्य थे। अलाउद्दीन अपने सुधार द्वारा सैनिक को सुल्तान के प्रति स्वामिभक्त बनाना चाहता

था। सामन्तवादी प्रथा में यह सैनिक अपने नेता के प्रति स्वामिभक्त रहते थे। उन्हें सुल्तान अथवा उसके साम्राज्य की चिन्ता न थी। अलाउद्दीन ने सैनिकों की भर्ती के लिए एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया और केवल कार्यकुशल व्यक्ति को भर्ती करने की आज्ञा दी। इस प्रकार ७५००० सैनिक की एक केन्द्रीय सेना का आयोजन हुआ। इसके मुख्य उद्देश्य थे मगोलों से भारत की रक्षा और सुल्तान की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति।

सैनिक सगठन में दूसरा सुधार था जागीरों के स्थान पर नकद वेतन प्रथा की पुनरावृत्ति। अलाउद्दीन ने समस्त जागीरों पर अधिकार कर लिया और सैनिकों से सीधा सम्बन्ध स्थापित किया था। सैनिकों का वेतन २३४ टका निश्चित कर दिया गया और एक से अधिक घोड़े रखने वाले सैनिकों को विशेष वेतन दिया जाता था।

तीसरा सुधार था घोड़ों को दागने की प्रथा का चालू करना। इन तीन सुधारों ने सेना को पूर्णरूपेण साम्राज्यवादी सेना में परिणत कर दिया। यह कहा जा सकता है कि अलाउद्दीन के सुधार नवीन सुधार न थे। फिर भी उनमें अपनी एक मुख्य विशेषता थी और वह यह थी कि यह सुधार एक नवीन आदर्श एव जोश सहित किये गये थे। परन्तु सेना की विशालता ने सुल्तान के सम्मुख एक अन्य समस्या उपस्थित कर दी थी। इस विशाल सेना को वेतन आदि देने के लिए अपार धन की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता के कारण ही वह आर्थिक सुधार की ओर आकर्षित हुआ था।

परन्तु सुल्तान की विशाल एव प्रबल सेना अपने प्रसिद्ध सेनानायकों सहित विलीन हो गई। सुल्तान के मृत्योपरान्त सैनिक सगठन ढीला पड़ गया और गयासुद्दीन तुगलक एव मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। मुहम्मद तुगलक अपनी रहस्यमय योजनाओं में व्यस्त रहा और सैनिक संगठन में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया। इसके विपरीत सैनिकों की कार्यक्षमता में ह्रास हुआ और सेना को वेतन के रूप में दी जाने वाले धन की मात्रा से राजकोष पर बुरा प्रभाव हुआ और सामन्तवादी प्रथा की पुनरावृत्ति के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे। फिरोज तुगलक सैनिक सगठन की अव्यवस्थता के लिये उत्तरदायी है। उसने सैनिकों में प्रचलित घूस के आदान-प्रदान को बन्द नहीं किया, वरन् कहा जाता है कि सुल्तान स्वय इस प्रकार के आदान-प्रदान में सहायता दिया करता था। एक सैनिक के मृत्योपरान्त उसके पुत्र, एव दास आदि को उसका स्थान दिया जाता था। इस प्रकार सेना अधोगति की ओर बढ़ती चली गई और उसमें विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करने की शक्ति न रही।

इस स्थान पर दिल्ली सुल्तानों के सामान्य सैनिक संगठन का वर्णन करना उचित होगा। सेना को कई भागों में विभाजित किया गया। इसमें पैदल सेना, घुड़सवार सेना आदि अनेक विभाग थे। घुड़सवार सेना का संगठन इस प्रकार था—

दस घुड़सवारों के ऊपर एक "सरेखैल" दस सरखैलों का अध्यक्ष 'सिपहसालार' होता था। यह सिपहसालार एक **'अमीर' की अधीनता** में होते थे। दस अमीरों

के ऊपर एक 'मालिक' होता था और दस 'मालिकों' के ऊपर एक 'खान'। 'अमीराने पजह' 'अमीराने सदह' और 'अमीराने हजारह' का भी उल्लेख मिलता है। इन सैनिकों का वेतन पद के अनुसार भिन्न-भिन्न शासकों के समय में भिन्न-भिन्न रहा।

युद्ध में घोड़े, हाथी तथा पैदल सेनाओं का प्रयोग किया जाता था। युद्ध के लिए अरब, तुर्किस्तान आदि विदेशों से अच्छे नस्ल के घोड़े मँगवाये जाते थे। मुहम्मद बिन तुगलक के समय में हाथियों की संख्या ३ हजार थी। पैदल सैनिकों को पायक कहा जाता था। पैदल सेना में निम्न वर्ग के लोग भरती किए जाते थे जो तलवार, बर्छी तथा धनुषबाण से सुसज्जित रहते थे। अग्न्यास्त्रों का प्रयोग भी मुसलमान सेनाओं को विदित था। अलाउद्दीन के समय में तोपखाना का प्रयोग किया जाने लगा था। मंगोलों के विरुद्ध सेना को शक्तिशाली बनाने के लिए अलाउद्दीन ने 'मञ्जनीक' तथा अरीदा यन्त्र बनाने की आज्ञा दी थी।

दिल्ली के सुल्तान अपनी सेनाओं में भिन्न फिर्कों तथा कबीलों को भरती करते थे। सेनाओं में हिन्दुओं को भी स्थान दिया जाता था। परन्तु सेनाओं के उच्च पदाधिकारी मुसलमान ही रखे जाते थे। युद्ध के समय तथा अन्य अवसरों पर प्रत्येक सेना के साथ एक 'साहिबे बरीदे लश्कर' रहता था। इसका काम सभी घटनाओं की सूचना राजधानी में भेजना। आहतों तथा घायलों के लिए अस्पताल का भी प्रबन्ध रहता था। 'तलैग्रह' तथा 'यज्की' स्काउटों का काम करते थे। यह लोग प्रतिपक्षी सेनाओं की खबरें लाने का काम करते थे। सैनिकों के रसद के लिए विशेष प्रबन्ध रहता था। रसद ढोने का काम बन्जारे करते थे। सैनिक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण तथा मोर्चाबन्दी के लिए कुशल कारीगर नियुक्त किये जाते थे।

दिल्ली सुल्तानों की नीति

राजत्व सिद्धान्त—यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि विषय विशेष सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन केवल वह ही व्यक्ति कर सकते हैं, जो विषय को समझते हैं और समझाने की तीक्ष्ण बुद्धि रखते हैं। यही बात दिल्ली के सुल्तानों के सम्बन्ध में भी लागू होती है। राजत्व सिद्धान्त का प्रतिपादन कार्य केवल योग्य एवं अनुभवी शासकों द्वारा ही किया जा सकता था। परिस्थितियों का ज्ञान राज्य की समस्याओं के समस्त पहलुओं को समझने की रीति के साथ साथ समस्या एवं परिस्थितियों का सफलता-पूर्वक सामना करने का विशेष ढंग ही विभिन्न सुल्तानों के राजत्व सिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराता है। यदि इल्तुतमिश ने पारस्परिक सहयोग एवं दमन नीति के सम्मिश्रण द्वारा अपने राजत्व सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तो बलबन और अलाउद्दीन ने रक्त एवं लौह की नीति को अपनाया। बलबन को राजत्व सिद्धान्तों में दैवी अधिकार सम्बन्धी सिद्धान्त को प्रचलित करने का श्रेय प्राप्त है। इसके विपरीत जलालुद्दीन खिल्जी, मुहम्मद तुगलक एवं फ़िरोज तुगलक ने प्रजा की भलाई एवं राजकार्य में प्रजा एवं अपने सामन्तों का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक समझा और उनके राजत्व सिद्धान्त में सहयोग एवं नम्रता के सिद्धान्त सम्मिलित थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न

सुल्तानों का राजत्व सिद्धान्त अपनी-अपनी विशेषता लिये है। आगे के पृष्ठों में इन्हीं सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है।

भारत में मुस्लिम राज्य के प्रथम शासक कुतुबुद्दीन के पास इतना समय न था कि वह किसी विशेष राजत्व सिद्धान्त का प्रतिपादन करता परन्तु दास के दास, एवं दास वंश के वास्तविक संस्थापक इल्तुतमिश को काफी अनुभव प्राप्त हो चुका था। उसके सिंहासनारोहण की समकालीन परिस्थितियों ने उसे राजत्व सिद्धान्त का एक आदर्श प्रस्तुत करने का प्रोत्साहन दिया। उसने केवल राजत्व सिद्धान्त एवं सर्वोच्च के सिद्धान्त बनाये हो, ऐसा नहीं है वरन् उसने इन सिद्धान्तों का अक्षरशः पालन किया और उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। वह अवसरवादी था और परिस्थितियों के अनुकूल ही काम किया करता था। यही कारण था कि उसने अपने अनुयायियो की धार्मिक भावनाओं का विरोध नहीं किया। भारत में तुर्की साम्राज्य को स्थापित हुए अभी कुछ ही समय हुआ था। राज्य का शासन प्रबन्ध एवं निर्देशन कार्य कुछ चुने हुए व्यक्तियों के अधिकार में था। उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर काम करने वाले तुर्कों की संख्या कम थी। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि विजित एवं विजयी के बीच की खाई बहुत बड़ी थी और उसे कम करना सम्भव नहीं हुआ था। इन परिस्थितियों में सेना पर आधारभूत रहना आवश्यक था। धर्म एक ऐसी शक्ति थी जिससे उसे प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार इल्तुतमिश के लिए धर्म का प्रयोग केवल नीति के अनुकूल ही न था वरन् यह एकमात्र राजनैतिक उपाय था।

अपने राजत्व सिद्धान्त ने इल्तुतमिश को नवीन एवं पूर्णरूपेण अरबी सिक्के बनवाने को प्रोत्साहित किया। इस सिक्के पर मुस्लिम जगत की सामान्य प्रणाली के अनुसार खलीफा का नाम अंकित किया जाता था। नया सिक्का बनवाने का मुख्य कारण राजत्व सिद्धान्त के अन्तर्गत यह भावना थी कि सिक्के ही जनता के सम्मुख सुल्तान विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस कार्य में किसी भी प्रकार का अनुचित धार्मिक तत्व न था। यदि किसी धार्मिक समुदाय को इस कार्य विशेष से सन्तोष हो तो वह एक राजनैतिक घटना थी, धार्मिक नहीं।

राजत्व सिद्धान्त के प्रति इल्तुतमिश की अन्य देन भी है। किसी भी मध्यकालीन शासक के लिए एक सहयोगी राज-दरबार का होना आवश्यक था। इल्तुतमिश ने इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया और अपने दरबार का निर्माण किया। इस दरबार में नये सामन्त थे जो इतिहास में तथा कथित चालीस दासों के नाम से प्रसिद्ध हैं। वास्तविकता तो यह है कि किसी भी समकालीन पुस्तक में इन अमीरों के लिए दास शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। इन्हें केवल "चरगान" कहा गया है जिसका अर्थ है "चालीस"। सामन्त ही राजा की विशेष समस्या थी और इल्तुतमिश ने इस प्रकार उन्हें अपना कृतज्ञ बना कर शान्त कर दिया। सामन्तों को रुक्न-ए-सल्तनत कहा जाता था। उन्हें ऊँचे पदों पर नियुक्त किया जाता था और विशेष सुविधायें दी जाती थीं। नये अमीरों के इस दल का उत्थान तीन कारणों से आवश्यक था :

(१) विरोधियों के सम्मुख एकता बनाये रखने के लिए।

(२) मगोलों से उत्पीड़ित विदेशी सामन्तों को जो भारत में आ गये थे सात्वना देने के लिये और

(३) धार्मिक भावनाओं की सन्तुष्टि के लिए। ध्यान रहे कि समयानुसार सहधर्मियों के प्रति उदारता एव सहानुभूति स्वभाविक था।

इतना ही नहीं, इल्तुतमिश ने समस्त उत्तरी भारत पर अपनी सर्वोच्च प्रभुता स्थापित की और इस प्रकार शासक के रूप में गौरवमय स्थान प्राप्त कर लिया। और यही कारण था कि बगदाद के खलीफा ने उसे सम्मानसूचक वस्त्र प्रदान किये थे।

इल्तुतमिश और बलबन के बीच दिल्ली सुल्तानों में केवल रजिया ही राजत्व सिद्धान्तों के प्रति अपने स्वाधीन विचार रखती थी। उसने परिस्थितियों को समझने का प्रयत्न किया और अपनी स्थिति की ओर ध्यान देते हुए अपने सहायक अमीरों को पुरस्कार दिये। वह निजी रूप से शासन कार्य में रुचि रखती थी। वह स्वय दरबार करती, घाड़े पर सवार होकर युद्ध का सचालन करती थी। परन्तु उसका स्त्री होना ही उसके मार्ग की सबसे बड़ी बाधा थी। धार्मिक नेता और यहाँ तक की सामान्य प्रजा उसकी स्वतन्त्रता को हीन भाव से देखते थे। सामन्त गण सुल्तान से अधिकार छीनने को उत्सुक रहते थे। फलत: सामन्तों, अमीरों एव धार्मिक नेताओ के असहयोग के कारण उसे सफलता न मिली और स्त्री के समानाधिकार भावनाओं को कुचल दिया गया। सुल्तान रजिया गद्दी से उतार दी गई।

परन्तु सिंहासनारूढ़ होने तक बलबन परिस्थितियों का अध्ययन कर चुका था। वह अपने पूर्ववर्ती शासका की सफलता असफलता से लाभ उठाना जानता था। वस्तुत: बलबन ने ही सुल्तान की सर्वोच्च सत्ता की ह्रास गति को रोकने का सफल प्रयत्न किया। यही नहीं, उसन अपने नवीन राजत्व सिद्धान्तो को जन्म दिया। आन्तरिक घटनाओ से यह स्पष्ट हो चुका था कि केन्द्रीय सरकार की सर्वोच्च सत्ता शक्तिहीन और नाम मात्र है। प्रान्तीय राज्यपालों की विद्रोही एव प्रतिक्रियावादी भावनाओ के दमन के साथ-साथ एक निरकुश एव कठोर शासक की आवश्यकता थी। शासन प्रणाली अच्छी तरह से काम करने के अनुकूल न थी। नवीन राज्यो की विजय तो एक ओर रही सुल्तान के निजी अधिकार क्षेत्र में भी शान्ति एव सुरक्षा के वातावरण का अभाव था। मगोल आक्रमणों से दिल्ली साम्राज्य की सुरक्षा पक्ति व्यास नदी की सीमा के पीछे तक आ गई थी। बलबन की सुरक्षा समस्यायें इल्तुतमिश की समस्या के समान थीं। परन्तु तुर्कों के आगमन में बाधा पड़ जाने के कारण उसे राज्य की जातीय नीति का त्याग करना पड़ा।

इस प्रकार परिस्थितियों की माँग और अनुभवी मस्तिष्क ने बलबन को निरकुशता की ओर आकर्षित किया। बर्नी ने ठीक ही कहा है कि सन् १२६५ ई० में बलबन का सिंहासनारोहण एक घटना मात्र था। वस्तुत वह पहले ही शासक बन चुका था। सुल्तान की सर्वोच्च सत्ता की स्थापना ही उसका महान् उद्देश्य था। बलबन ने एक चाल

चली। उसने सुल्तानों की एक सभा से अपना सम्बन्ध स्थापित किया और स्वय को एक तुर्की वीर अफरेसियाब से सम्बन्धित बतलाया। दास वश के शासक सदैव ही दासता के कलक को धोने का प्रयत्न करते रहे और उपरोक्त सम्बन्ध के कारण बलबन इस कलक को धोने में सफल हुआ। वह दैवी अधिकारों के सिद्धान्त में विश्वास करता था और सुल्तान के हृदय को ईश्वर का विशेष भण्डार घर समझता था। उसके विचार में पृथ्वी का कोई भी मानव सुल्तान के समान न था। केवल सुल्तान की दैवी शक्ति ही प्रजा को विद्रोही भावना रहित एवं आज्ञाकारी बना सकती थी। इन सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने के विचार से उसने अपने आसपास अगरक्षकों के एक विशाल समूह का आयोजन किया। वह इतना कठोर था कि साधारण जनता से बात करना अस्वीकार करता था, यहाँ तक कि निजी सेवकों के सम्मुख भी वह शासक की सम्पूर्ण कठोरता सहित व्यवहार करता था। शासक के रूप में उसने अपने भीतर की मानवी भावनाओं को नृशतापूर्ण ढग से दबा दिया। उसके पुत्र की मृत्यु असह्य थी परन्तु सुल्तान ने राजदरबार में अपनी शोक भावनाओं अथवा मलीन मुख की झलक नहीं पड़ने दी।

निरकुशता के साथ-साथ वह चारित्रिक दृढ़ता एवं शुद्धता में विश्वास करता था। उसका विचार था कि शुद्ध एव सुदृढ़ चरित्र के बिना वह निरंकुश सुल्तान नहीं बन सकता। यदि सम्राट मद्यपान आदि में ही अपना बहुमूल्य समय व्यतीत कर दे तो वह अवश्य ही अपने अमीरों के हाथ की कठपुतली बन जायेगा। यद्यपि बलबन की मुद्राओं में खलीफा का नाम अकित रहता था परन्तु वह खलीफा का अपना प्रधान नहीं मानता था। उसके विचार में सुल्तान के अधिकार असीमित थे। केवल धार्मिक नियमों का नियन्त्रण होना चाहिए। बलबन के उस राजत्व आदर्श के साथ हम उन प्राचीन राजाओं के राजत्व आदर्शों की तुलना कर सकते हैं जो केवल धर्म को सम्राट से ऊँचा समझते थे।

अपनी निरकुशता हेतु उसने न्याय कार्य में अत्यधिक निष्पक्षता से काम लिया। अन्यायी को वह दण्ड दिया करता था और अपनी प्रजा के प्रति अन्याय करने के लिए उसने अवध और बदाऊँ के राज्यपालों को कठोर दण्ड दिया था। आज्ञा उलबन उसे असह्य था और आज्ञा उलबन के लिए वह कठोर दण्ड दिया करता था। उसने गुप्तचर प्रणाली में सुधार किया और प्रत्येक स्थान पर गुप्तचर नियुक्त किए।

निरकुश शासन की अभिवृद्धि में बलबन का काफी सहयोग था परन्तु एक अन्य महत्वपूर्ण कारण था। चालीस अमीरों के समूह का लगभग प्रत्येक व्यक्ति मर चुका था। बलबन के विरोधियों की सख्या नगण्य मात्र थी। परन्तु यह सत्य है कि उसके निरकुश शासन में सैनिक नेताओं को हस्तक्षेप करने का साहस न था।

बलबन के मृत्योपरान्त सुल्तान की सर्वोच्च सत्ता का पुन ह्रास हुआ। जलालुद्दीन खिलजी ने राजत्व आदर्श में नवीन सिद्धान्तों को जन्म दिया। भारत में तुर्की साम्राज्य की स्थापना का एक अग समाप्त हो चुका था और अब शासन कार्य में तुर्की जाति का एकाधिकार न था। बलबन की कठोर नीति के कारण और उसके मृत्योपरान्त प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के उत्थान के कारण सामन्तों एव प्रजा में असन्तोष

हुआ था। अतः जलालुद्दीन ने दया की नीति का अनुसरण किया परन्तु प्रजा इसे स्वीकार करने को तैयार न थी। सामन्तों में असन्तोष था और सुल्तान के भतीजे जलालुद्दीन ने अपने चाचा की हत्या कर दी।

अलाउद्दीन में हम उच्चकोटि की महत्वाकाक्षाओं और साहसपूर्ण कार्यों का चित्र देखते हैं। बर्नी का कथन है कि सुल्तान सदैव कल्पना संसार में निवास करता था। उसकी कल्पनायें वास्तविकता की सीमा का उलंघन कर जाया करता था। परन्तु इलामुल-मुल्क की उदार सम्मति ने उसे वास्तविकता के समीप खड़ा किया और उसकी मानसिक शक्ति को उचित मार्ग पर सीमित रखा। वह निरकुश था और अपने कार्यों मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप सहन नहीं करता था। वह किसी भी महत्वपूर्ण योजना को कार्यान्वित करने के पूर्व अपने परामर्शदाताओं से विचार विमर्श कर लिया करता था। उसमें एक गुण यह था कि वह अन्य व्यक्तियों के परामर्श को धीरतापूर्वक सुना करता था। उसे स्वीकार करना या न करना उसकी स्वेच्छा पर निर्भर था, फिर भी एक निरकुश शासक के लिए अन्य व्यक्तियों को अपने विचार प्रगट करने की सुविधायें प्रदान करना एक महान गुण थ। सुल्तान के अधिकार क्षेत्र और कर्त्तव्यों के सम्बन्ध मे काज़ी गयासुद्दीन से तर्क करते समय उसने निम्नलिखित घोषणा की.

"विद्रोहों को रोकने के लिए, जिनमें सहस्रश. व्यक्तियों का विनाश हो जाता है, मैं ऐसे आदेश देता हूँ जिनको मैं राज्य के लिए लाभकारी तथा जनता के लिए हितकर समझता हूँ। लोग विचारहीन एव दुर्विनीत हैं और मेरी आज्ञाओं का तिरस्कार कर देते हैं, तब उनको आज्ञाकारी बनाने के लिए मुझे कठोर बनने को बाध्य होना पड़ता है। मै नहीं जानता कि यह वैध है अथवा अवैध। मै जो कुछ राज्य के लिए हितकर अथवा आसन्न परिस्थिति के अनुकूल समझता हूँ उसी के लिए आदेश देता हूँ और मुझे इस बात का ज्ञान नहीं है कि कयामत के आनेवाले दिन मेरा क्या होगा।"

अपने परामर्शदाताओं के साथ विचार विमर्श के फलस्वरूप उसे उचित निर्णय करने में सफलता प्राप्त हुई। बर्नी के कथनानुसार सुल्तान ने आन्तरिक विद्रोह एवं अशान्ति के निम्नलिखित कारण बताये.

(१) राज्य कार्यों के प्रति सुल्तान की उदासीनता
(२) सुरापान
(३) अमीरों तथा राज्य के उच्च पदाधिकारियों के साथ घनिष्ठता
(४) और अत्यधिक धन का होना।

इस निष्कर्ष के साथ ही सुल्तान ने इन बुराइयों को दूर करने के उपायों पर विचार किया और अन्तत. इस परिणाम पर पहुँचा कि इन सब बुराइयों को दूर करने का एक मात्र उपाय है दमन नीति का अनुसरण और यही कारण था कि उसने बलबन की रक्त एवं लौह नीति का अनुसरण किया और सुल्तान को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। सुल्तान ने सुधार हेतु अनेक नियम बनाये और कठोरतापूर्वक उनका पालन किया। उसके सुधारों का विस्तृत वर्णन उचित स्थान पर किया जायेगा। यहाँ पर इतना कहना

ही उचित होगा कि अलाउद्दीन के शासन काल में सुल्तान की सर्वोच्च प्रभुता का पुनरुत्थान हुआ और शासन प्रणाली के प्रत्येक अंग में उसके हस्तक्षेप का चिह्न स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता था।

परन्तु सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के राजत्व सिद्धान्त अथवा उनके कारण प्रेरित नियमों का तात्कालिक प्रभाव कुछ भी हो इतना स्पष्ट है कि उस हस्तक्षेप की प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी क्योंकि सुल्तान का हस्तक्षेप न तो सामन्तों को सह्य था और न प्रजा के लिए ही सन्तोषजनक था। अतः हम कह सकते है कि अलाउद्दीन का राजत्व सिद्धान्त महत्त्वाकांक्षी भावनाओं से प्रेरित और परिपूर्ण था और इसका स्थायी रहना सम्भव न था।

विधि का विधान है, क्रिया के बाद प्रतिक्रिया होती है और कभी-कभी तो यह प्रतिक्रिया इतना उग्र रूप धारण कर लेती है कि ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व क्रिया का समस्त प्रभाव नगण्य था। यही दशा अलाउद्दीन के बाद हुई। मुबारक खिल्जी और खुसरो के भ्रष्ट एवं विलासमय शासन-काल में सामन्तों एवं सुल्तान की शक्ति का सन्तुलन अमीरों की ओर बढ़ गया। सुल्तान का प्रभाव नाममात्र के लिए था। जैसी सरकार वैसी प्रजा, सुल्तान की विलासता का प्रभाव अमीरों पर और अन्ततः समस्त प्रजा पर हुआ। चरित्र सम्बन्धी समस्त आदर्श हवा में विलीन हो गये और सुल्तान एवं राजसत्ता के सम्पूर्ण आदर्श एक साधारण मनुष्य के जीवन के आदर्शों से ऊँचे न थे।

गयासुद्दीन ने अपनी स्थिति दृढ़ करने के पश्चात् उसने उदारता एवं सान्त्वना की नीति अपनाई। वह पहला दिल्ली का शासक था जिसने इस बात का प्रतिपादन किया कि राज्य का हित कृषकों के हित में निहित है। उसकी इस नीति के कारण सुधारों एवं प्रयोगों का जन्म हुआ। और इस प्रकार गयासुद्दीन ने रक्तपात किये बिना उस स्थिति को प्राप्त कर लिया जिसकी प्राप्ति हेतु अलाउद्दीन खिल्जी को रक्तमय नीति का अनुसरण करना पड़ा था। मुहम्मद तुगलक की सफलताओं आदि का विस्तृत वर्णन पीछे किया जा चुका है। उसके शासन-काल के अन्तिम भाग को छोड़कर शेष सम्पूर्ण काल में केन्द्रीय सत्ता की सर्वोच्च प्रभुता बनी रही परन्तु उसकी विचित्र एवं समय के प्रतिकूल योजनाओं के कारण केन्द्रीय शक्ति का ह्रास हुआ और तुगलक वंश का पतन आरम्भ हो गया। मुहम्मद तुगलक एक आदर्शवादी शासक था और उसके महत्वाकांक्षी सुधार अपने समय से आगे थे। वह प्रजा की भावनाओं को समझने में असफल रहा। शासन कार्य में धर्म के प्रति उदासीनता अथवा तटस्थता की नीति अपना कर उसने राजनीति एवं धर्म के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। वह प्रत्येक कार्य को करने के पूर्व ध्यानपूर्वक सोचता था। परन्तु उसे या तो गलत सूचनायें दी जाती थीं अथवा वह स्वयं समझने में गलती करता था। कुछ भी हो केन्द्रीय शक्ति का ह्रास हुआ। भारत में अनेक स्वतन्त्र राज्यों की नींव पड़ी और विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमण की पृष्ठभूमि तैयार होने लगी। मुहम्मद उत्तराधिकारी फिरोज तुगलक धार्मिक व्यक्ति था और उसका [illegible]।

मुहम्मद तुगलक के समय से ही उदित प्रतिक्रियावादी शक्तियों का सामना करने में असमर्थ था। जहाँ तक राज्य को सर्वोच्च सत्ता का सम्बन्ध है उसकी देन नगण्य है। वह राज्य को नहीं वरन् धर्म को सर्वोच्च स्थान देता था। गयासुद्दीन तुगलक की भाँति वह भी कृषकों का हितचिन्तक था और प्रजा की भलाई करना चाहता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि केन्द्रीय प्रभुता को सर्वोच्च स्थान प्रदान करने में केवल कुछ ही शासकों ने प्रयत्न किया जब कि अधिकांश सुल्तान भोग-विलासी एवं भ्रष्टाचारी जीवन व्यतीत करते थे। फलस्वरूप इल्तुतमिश, बलबन, अलाउद्दीन, खिलजी, और मुहम्मद तुगलक के सुधार स्थायी न रह सके। उनके मृत्योपरान्त शासकों की दुर्बलता के कारण प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ अपना सिर उठा लेती थी।

दिल्ली सुल्तान और सामन्त

मध्य कालीन भारत में अन्य देशों की भाँति सामन्तवादी प्रथा प्रचलित थी। दिल्ली सल्तनत में अमीरों का प्रभाव काफी था। अन्य देशों की भाँति यहाँ भी सुल्तान एवं अमीरों के बीच शक्ति सन्तुलन की समस्या एक गम्भीर समस्या थी। सुल्तान के लिए अमीरों की अपेक्षा करना सम्भव न था। पिछले अध्यायों में हम देख चुके हैं कि केवल कुछ सुल्तान ही निरकुश शासन स्थापित करने में सफल हुए थे जब कि शेष सुल्तान अपने अमीरों के हाथ की कठपुतली बने हुए थे। सुल्तान एवं अमीरों की शक्ति सन्तुलन की यह समस्या परिस्थितियों की उपज थी। मुस्लिम धर्मावलम्बियों ने एक नवीन वातावरण में राज्य स्थापित किया था। चारों ओर उनके शत्रुओं का प्रकोप था। ऐसी दशा में अकेले सुल्तान के लिए यह सम्भव न था कि वह शासन कार्य को सुचारु रूप से चला सके। साम्राज्य को छोटे छोटे भागों में विभाजित करना और प्रत्येक राज्य में योग्य अधिकारियों की नियुक्ति आवश्यक थी। अपने अधीन अधिकारियों को शासन प्रबन्ध में कुछ विशेष सुविधायें दी जाती थी जिससे वह अपने कर्त्तव्यों का समुचित पालन कर सकें। सुल्तान और सामन्तों का पारस्परिक सम्बन्ध लगभग स्वेच्छाचारी सम्बन्ध था। यदि सुल्तान के पास निजी सेना थी तो अमीरों को भी विशाल सेनायें रखने का अधिकार था और यह सेना आवश्यकतानुसार सुल्तान के सहायतार्थ भेजी जाती थी। अतः दोनों ही सर्वशक्तिमान थे और दोनों की शक्ति लगभग बराबर थी। आरम्भ में दोनों ही एक दूसरे के प्रति मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते थे क्योंकि दोनों के सम्मुख निजी सुरक्षा और साम्राज्य विस्तार के सामान्य उद्देश्य थे परन्तु स्थिति ज्यों ज्यों बदलती गई और भारत में मुस्लिम राज्य की नींव पड़ गई तो सामन्तों एवं अमीरों ने सुल्तान की सर्वोच्च सत्ता का अपहरण करने की चेष्टा की। अपने महत्व के कारण उन्हें "सतून-ए सल्तनत" अथवा राज्य के स्तम्भ कहा जाता था। सुल्तान के लिए वह शक्ति का स्रोत थे और साथ ही साथ वह उसके निरन्तर भय का कारण भी थे। शक्ति सन्तुलन की समस्या की दो मुख्य विशेषतायें थी। प्रथम यह कि सुल्तान अथवा अमीरों की शक्ति उन के निजी व्यक्तित्व पर आधारित थी और दूसरे यह कि एक की शक्ति बढ़ने पर दूसरे की शक्ति कम हो जाती थी। अर्थात् दोनों की शक्ति का प्रवाह विपरीत दिशाओं में था।

इल्तुतमिश ने जिस प्रकार सुल्तान की गद्दी को एक संस्था का रूप दिया था, उसी प्रकार अमीरों की एक संस्था को भी जन्म दिया। अमीर कैसे ही क्यों न हों यह सम्भव न था कि उन का नाम ही न रहे। प्रारम्भ में अमीरों को अधिक सुविधायें देना आवश्यक था और राज्य के हित में था। साहित्यिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से भी उनको सन्तुष्ट करना उचित था। जैसा कि बताया जा चुका है मंगोलों से उत्पीड़ित विदेशी सहधर्मियों को इल्तुतमिश ने विशेष सुविधायें दीं। एक बार विशेष सुविधायें एवं अधिकार प्राप्त कर लेने पर सामन्त एवं अमीर अपने अधिकारों के प्रति सतर्क रहने लगे। इल्तुतमिश ने उनकी महत्वाकांक्षाओं को नियन्त्रण में रखा परन्तु उसके उत्तराधिकारियों के लिए यह सम्भव न हो सका। केन्द्रीय शक्ति क्षीण हो गई। तत्पश्चात् अमीरों एवं सामन्तों ने राजसत्ता में भाग बँटाने की योजना बनाई। इल्तुतमिश के मृत्योपरान्त समय में राजसत्ता पूर्णरूपेण सामन्तों पर आधारित थी और उनकी शक्ति के कारण इस प्रकार थे :

(१) उनकी योग्यता, जिसे स्वयं इल्तुतमिश ने स्वीकार किया था।

(२) आवश्यकता के समय सुल्तान की सहायता वह अपने आप को राज्य का आधार मानते थे और इसी आधार पर विशेष सुविधाओं की माँग करते थे। समस्त साम्राज्य सामन्तों में विभाजित था और इस प्रकार उनका प्रभाव स्थानीय रूप से काफी था और यह स्थानीय प्रभाव सुल्तान की निरंकुश सत्ता के विरुद्ध था।

(३) इल्तुतमिश के उत्तराधिकारी सुल्तानों की व्यक्तिगत दुर्बलता से सामन्तों एवं अमीरों की शक्ति में अभिवृद्धि हुई। ध्यान रहे कि इल्तुतमिश ने एक वजीर की नियुक्ति की थी। सर्व प्रथम जुनैदी ने इस पदवी को ग्रहण किया था। वह योग्य एवं अनुभवी व्यक्ति था। रुकुनुद्दीन फिरोज़ को गद्दी से उतारने में उसका प्रमुख हाथ था। उसने रज़िया को सुल्तान स्वीकार करने से इनकार कर दिया। फलतः रज़िया ने उसके स्थान पर मुहज़्ज़ुद्दीन को अपना वजीर नियुक्त किया। इन दोनों व्यक्तियों के प्रयत्नों से वजीर की शक्ति बहुत बढ़ गई। वह सामन्तों एवं अमीरों का नेता था और सुल्तान का मुख्य अफसर। इस प्रकार उसकी शक्ति का बढ़ना स्वाभाविक था और सन् १२४२ ई० में उसकी शक्ति अपनी चरम सीमा पर थी। सुल्तान बनना अथवा पदच्युत होना वजीर की दया पर निर्भर था।

बलबन इनके समस्त षड्यन्त्रों का अनुभव प्राप्त कर चुका था और यही कारण था कि उसने सुल्तान की सर्वोच्च सत्ता को ऊँचा उठाने के लिए दैवी अधिकारों की शरण ली। उसने रक्त एवं लौह की नीति का अनुसरण किया और सामन्तों की शक्ति को अपने नियन्त्रण में रखने के विचार से परस्पर विरोधी सामन्तों को नियुक्त किया। एक ओर उसके अपने व्यक्ति रहते थे और दूसरी ओर अन्य जातियों के लोग। इस प्रकार उसने निरंकुश शासन की स्थापना की। अलाउद्दीन ने बलबन की नीति का अनुसरण किया और सामन्तों की विद्रोही प्रवृत्तियों को कठोर नियन्त्रण में रखा परन्तु अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद सामन्तों की व्यक्तिगत शक्ति में वृद्धि होती गई। मुहम्मद तुगलक के शासन काल के अन्तिम वर्षों में इन्होंने अपने

स्थापना कर ली। बंगाल स्वतन्त्र हो गया। दक्षिण में बहमनी राज्य की नींव पड़ी। गुजरात, सिन्ध आदि में भी यही दशा थी। केन्द्रीय सत्ता लगभग विलीन हो गयी और देश की एकता छिन्न भिन्न हो गई।

सुल्तान एवं अमीरों के पारस्परिक सम्बन्धों को जान लेने के बाद सामन्तों की संस्था सम्बन्धी जानकारी रखना उचित हो। भारतीय मुस्लिम राज्य में सर्व प्रथम तुर्क जाति को ही विशेषाधिकार प्राप्त थे और अन्य जातियों को इन से वंचित रखा गया था। तुर्कों का निरन्तर आगमन इस दिशा में उनका सहायक था, परन्तु मंगोल आक्रमण के कारण भारत में तुर्कों का आगमन बन्द हो गया और राज्य के सम्मुख एक नवीन समस्या आ खड़ी हुई। तुर्क जाति के साथ-साथ अफगान जाति को भी सुविधायें दी जाने लगीं और जाति भेद की नीति का त्याग कर दिया गया। यह सामन्त योग्य एवं अनुभवी व्यक्ति थे। इनमें मध्य एशिया के अन्य मुस्लिम राज्यों से भाग कर आये हुये साहित्यकार आदि भी थे। परन्तु समय की गति के साथ-साथ धन की अधिकता और वंशानुगत उत्तराधिकारी प्रणाली के कारण योग्य सामन्तों की कमी हो गई। तुर्कों एवं अफगान अमीरों में निरन्तर वैमनस्य रहता था। धीरे धीरे भारतीय मुसलमानों को सामन्तीय क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर मिला। इस प्रकार सामन्तो के तीन वर्ग हो गये, तुर्की, अफगान और भारतीय सामन्त। तीनो में शक्ति हथियाने की होड़ रहती थी। यह सत्य है कि व्यक्तिगत रूप से सामन्तो की शक्ति क्रमश बढ़ती चली गई परन्तु उनमें सामूहिक एकता का अभाव था।

सुल्तानों का शासन प्रबन्ध

केन्द्रीय शासन—भारत मे मुस्लिम शासन की मुख्य विशेषता है राजतन्त्र जो बहुत कुछ धर्म सापेक्ष था यद्यपि बहुत पहले के पेगम्बर तथा खलीफाओं द्वारा स्थापित सापेक्ष शासन व्यवस्था का स्थान राजतन्त्र ने ले लिया था। फिर भी सनातनी मुसलमान शासक कानून की व्याख्या के सम्बन्ध मे उलेमा का निर्णय मानते थे, ऐसे शासक खलीफा के प्रति अपनी भक्ति की घोषणा करने म गौरव का अनुभव करते थे। परन्तु भारत की परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थीं जिनके कारण भारतीय सुलतानों को पूर्ण रूपेण धर्मसापेक्ष शासनतन्त्र का स्थापित कर सकना असम्भव प्रतीत हुआ। उनके लिये उलेमाओं के प्रभाव से मुक्त होकर धर्म निरपेक्ष समझदारी से काम लेना आवश्यक हो गया। यही कारण था कि अलाउद्दीन तथा मुहम्मद तुगलक ने उलेमा के प्रभुत्व के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और अलाउद्दीन ने अपने राजत्व सिद्धान्त की घोषणा इन शब्दों में कि जो भावी सुलतानों के लिए आदर्श बन गई

"मुझे यह नहीं मालूम है कि यह नियमानुमोदित है अथवा नियम विरुद्ध, मैं जो राज्य के लिए हितकर और अवसर विशेष के लिए उपयुक्त समझता हूँ, उसी के करने की आज्ञा देता हूँ।"

इस प्रकार सुल्तान शासनतन्त्र का सर्वोच्च अधिकारी था। साम्राज्य की सम्पूर्ण शक्ति का स्रोत वही था। वह साम्राज्य की सम्पूर्ण सेना का अध्यक्ष था। न्याय के लिए अन्तिम अपील वही सुनता था। कानून की दृष्टि उसकी इच्छा थी। उसके आदेशों

का पालन सबका कर्त्तव्य था। मुस्लिम राज संस्था में सुल्तान के बिना सामाजिक जीवन सम्भव नहीं समझा जाता था। कुछ मुसलमान नैयायिकों ने सुल्तान को ईश्वर का प्रतिनिधि और पृथ्वी पर उसकी छाप स्वरूप माना है। यद्यपि उसको सलाह देने के लिए मन्त्री होते थे परन्तु उनकी सलाहों को मानना या न मानना उसकी इच्छा पर निर्भर था। स्वयं सुल्तान से लेकर निम्नतम पद के लिए योग्यता ही कसौटी थी। अयोग्य सुल्तानों के सम्बन्ध में हमें पहले ही ज्ञात हो चुका है कि वे किस प्रकार पदच्युत कर दिये जाते थे। कभी-कभी फिरोज तुगलक जैसे उदार तथा कोमल हृदय सुल्तानों द्वारा वंशानुगत उपाधियाँ स्वीकार कर ली गईं परन्तु यह अपवाद था नियम नहीं। राज्य के उच्च पदों पर केवल मुसलमान ही नियुक्त किये जाते थे हिन्दू नहीं। परन्तु हिन्दुओं द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने पर उन्हें भी राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था। उदाहरणस्वरूप खुसरो पहले एक निम्न जाति का हिन्दू था जिसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। वह कुछ महीनों के लिए सुल्तान भी बना यद्यपि सुल्तान बनने पर मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं का अधिक पक्ष लेता था।

सुल्तानों के शासनतन्त्र का संगठन इस प्रकार था :—

(१) सम्पूर्ण साम्राज्य प्रान्तों में विभक्त थे, प्रान्त सिकों में, छोटे-छोटे प्रान्त तथा शिक सरकारों में, सरकार परगनों में तथा परगना गाँवों में विभाजित थे। सभी प्रान्त केन्द्र की अधीनता में काम करते थे। दिल्ली सम्पूर्ण साम्राज्य का केन्द्र था जहाँ पर सुल्तान और उसके केन्द्रीय कर्मचारी निवास करते थे। जैसा हम पहले ही बता चुके हैं शासनतन्त्र का सर्वोच्च अधिकारी स्वयं सुल्तान होता था। उसके नीचे नायब होता था जो राजधानी में उसके न होने पर राजकार्य की देखरेख करता था। इस पद को मलिक काफूर तथा राजकुमार जूना खाँ जैसे कुछ सुयोग्य एवं सुविख्यात व्यक्तियों ने सुशोभित किया था। प्रान्तीय सूबेदारों को भी सुल्तान के प्रतिनिधि होने के कारण नायब सुल्तान कहा जाता था।

(२) न्याय विभाग का अध्यक्ष काजी-अल कुजूत या प्रधान न्यायाधीश होता था जो सद्रे-जहाँ भी कहा जाता था।

(३) वित्त विभाग का अध्यक्ष वस्तुतः वजीर ही होता था। इस विभाग के प्रमुख पदाधिकारी निम्नलिखित थे :

(क) दीवाने आसक अथवा महालेखाकार

(ख) मुस्तौफी अथवा महालेखा परीक्षक

(ग) बख्शी-इ-फौज

सुल्तान ने अपनी योग्यता के कारण साम्राज्य को विस्तृत किया और उसमें शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित कर सकने में सफल हो सके। शायद वंशागत उत्तराधिकार का नियम निश्चित रहता तो भारत में मुस्लिम साम्राज्य की कल्पना मात्र ही रह जाती। दासवंश में बलबन तथा इल्तुतमिश जैसे शासक इसके अभाव में ही सिंहासनारूढ़ हो सके थे। परन्तु उत्तराधिकार के निश्चित नियम न होने के कारण गृहयुद्ध तथा

का बहुत भय बना रहता था। हर एक सुल्तान को इसका सामना भी करना पड़ता था।

दिल्ली के सुल्तानों को पूर्णतया स्वेच्छाचारी एव निरंकुश बताया गया है परन्तु व्यावहारिक रूप वे ऐसा नहीं थे। वे सदा अपनी मनमानी नहीं कर सकते थे। उन्हें परिस्थितियों का ध्यान रखना पड़ता था। वे कई प्रकार के नियन्त्रणों को मानने के लिए बाध्य होते थे। डा० कुरेशी ने सुल्तान की शक्ति पर कई नियन्त्रण बतलाये हैं। उनमें से कुछ मुख्य निम्नलिखित है :—

(१) **व्यक्तिगत नियमों का नियन्त्रण**—हिन्दू और मुसलमान दोनों के अपने-अपने नियम होते थे। इन नियमों में वे किसी का भी हस्तक्षेप सहन करने के लिए तैयार नहीं थे। अतः सुल्तान इन नियमों में अपनी मनमानी करने का दुःसाहस नहीं कर सकते थे।

(२) प्रभावशाली एव योग्य मन्त्रियों का नियन्त्रण।

(३) सेना का नियन्त्रण

(४) उलमाओं का नियन्त्रण

(५) धर्म का नियन्त्रण—अधिकाश सुल्तान धार्मिक प्रवृत्ति के होते थे। धर्म पर चलना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। अत वे धर्म के विरुद्ध जाने का साहस नहीं करते थे। ऐसा दु साहस करने पर उनके मुसलमान अनुयायियों द्वारा भी विद्रोह कर दिये जाने की सम्भावना थी।

इन सब नियन्त्रणों के बावजूद भी शक्तिशाली सुल्तान परिस्थितियो का फायदा उठा कर मनमानी कर ही बैठने थे।

प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकार—जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं सम्पूर्ण साम्राज्य प्रान्ता में बँटा हुआ था। जिस समय साम्राज्य का सबसे अधिक विस्तार था उस समय उसका वर्गीकरण निम्नलिखित प्रान्तो में किया गया था :

(१) बदायूँ	(१३) लाहौर
(२) बिहार	(१४) लखनौती
(३) दिल्ली	(१५) मालवा
(४) देवगिरि	(१६) माबर
(५) गुजरात	(१७) मुल्तान
(६) द्वारसमुद्र	(१८) अवध
(७) हाँसी	(१९) समन
(८) कलानौर	(२०) सैहवान
(९) जाजनगर	(२१) सिरसुती
(१०) कन्नौज	(२२) हैलॉग
(११) कड़ा	(२३) उच
(१२) कुहरम	

यो तो मुस्लिम आदर्शों के अनुसार प्रान्तों की दो कोटियाँ थी . (१) इमारते

आम (२) इमारते खास। परन्तु दिल्ली साम्राज्य के प्रान्त अधिकांशतः इमारते आम्मह की कोटि में ही थे। इन प्रान्तों के प्रशासक सुल्तान की ओर से नियुक्त किये जाते थे जिनके अधिकार सीमित होते थे। ये प्रशासक सुल्तान के प्रतिनिधि होने के कारण नायब सुल्तान कहे जाते थे। प्रान्तों का शासन संगठन भी बहुत कुछ केन्द्रीय शासन संगठन से मिलता जुलता था। इन प्रान्तों में कुछ तो काफी बड़े थे और शेष छोटे-छोटे थे जो सामान्यतः शिकों के बराबर या उनसे बड़े होते थे। सम्पूर्ण प्रान्त शिकों में विभक्त किये गये थे जो एक 'शिकदार' की देख-रेख में रहते थे। छोटे-छोटे प्रान्तों तथा शिकों को सरकार में विभक्त किया गया था। सरकार परगनों में और परगने गाँवों में बँटे हुए थे।

परगनों के प्रमुख कर्मचारी मुनसरिफ, मुशरिफ, मुहस्सिल, गुमश्ता, सरहंग इत्यादि थे। इनकी सहायता से चौधरी परगनों का प्रबन्ध करता था। सरकार के प्रमुख पदाधिकारी शिक़दारे शिक़दारान तथा मुन्सिफे मुन्सिफान होते थे। गाँवों के प्रबन्ध के लिए मुकद्दम अथवा मुखिया होते थे। पटवारी मालगुजारी का ब्यौरा रखता था। लेखक का काम करने वाला कारकून कहा जाता था जिनके हाथ में हिसाब-किताब रहता था।

प्रान्तों के प्रशासक नायब सुल्तान बड़े-बड़े सामन्त हुआ करते थे। यद्यपि केन्द्र की ओर से इनके अधिकारों को सीमित रखने के लिए भरसक प्रयत्न किये जाते थे तथापि व्यावहारिक रूप में वे निरंकुश शासन करते थे और केन्द्र का नियन्त्रण नाम मात्र के लिए था। इनका पद प्रायः वंशगत हुआ करता था। इनका कर्त्तव्य सरहद की रक्षा करना तथा अपना भीतरी शासन ठीक रखना था। आवश्यकतानुसार वे केन्द्र के लिये सेना की सेवाएँ भी प्रस्तुत करते थे।

पुलिस तथा नगर का शासन—शान्ति एवं सुरक्षा कायम रखने के लिए प्रत्येक नगर में कोतवाल हुआ करते थे। वह सभी नागरिकों का एक रजिस्टर रखता था। नगर में आने वाले तथा नगर के बाहर जाने वालों के सम्बन्ध में भी कोतवाल जानकारी रखता था। नगर सम्बन्धी प्रत्येक सूचना कोतवाल के पास रहती थी। मुसलमानों और हिन्दुओं दोनों ही के जान-माल की रक्षा के लिए समान रूप से प्रबन्ध किया जाता था। इसके लिए कोतवाल के सैनिक रात में गश्त लगाया करते थे।

डाक विभाग—राजधानी तथा प्रान्तों में निकट सम्पर्क कायम रखने के लिए डाक विभाग था जो पर्याप्त सफलता के साथ कार्य करता था। प्रत्येक एक कोस या दो कोस पर १ से ३ घुड़सवार या पैदल नियुक्त कर दिये जाते थे। इस व्यवस्था का वर्णन करते हुए डा० ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं, "प्रत्येक चौकी पर दस तेज दौड़ने वाले हरकारे नियुक्त किये जाते थे। वे यात्रा के लिए सुसज्जित रहते थे और अपने साथ लाठियाँ रखते थे। उनके सिरों पर घंटियाँ बँधी रहती थीं। पत्रों तथा सन्देशों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना ही उनका काम था। हरकारा एक हाथ में पत्र लेता था और दूसरे में लाठी जिसकी लम्बाई दो गज होती थी। वह [illegible] से

दौड़ कर दूसरे हरकारे को जो पहले से तैयार रहता था पत्र दे देता था। इस प्रकार काफी दूर दूर तक एक स्थान से दूसरे स्थान पर पत्र बड़ी सरलता तथा तेजी से पहुँचा दिये जाते थे। कभी-कभी इस डाक द्वारा सुल्तानों के लिये फल तथा खाद्य पदार्थ भी लाये जाते थे। प्रत्येक डाक चौकी पर राज्य की ओर से यात्रियों की सुविधा के लिए मस्जिदें, पीने के पानी की बावड़ियाँ और बाजार बनवा दिये गये थे जहाँ लोग आवश्यकता की वस्तुएँ खरीद सकते थे। कभी-कभी इस डाक द्वारा घोर अपराधियों को तुरन्त दण्ड देने के लिए केन्द्रीय सरकार अथवा प्रान्तो की राजधानियों में पहुँचाया जाता था। दिल्ली तथा दौलताबाद के बीच प्रत्येक चौकी पर ढोल रख दिये गये थे। जब कभी उनमें से किसी नगर में कोई असाधारण घटना घटती तो उन्हें बजा दिया जाता था और इस प्रकार सुल्तान को अपनी अनुपस्थिति में होने वाली दूसरे नगर की घटनाओं का ज्ञान हो जाता था।

न्याय—राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश स्वय सुल्तान हुआ करते थे। उनमे न्याय के प्रति पवित्र भावनाएँ होती थीं। निकट से भी निकट अथवा उच्च से भी उच्च पदाधिकारी को अपराधी प्रमाणित हो जाने पर दण्ड दिया जाता था। कुतुबुद्दीन ऐबक की न्यायप्रियता के विषय में तो यहाँ तक कहा जाता है कि उसके समय में शेर और बकरी एक ही घाट पानी पीते थे। बलबन अपने सगे-सम्बन्धियों के साथ भी पक्षपात का व्यवहार नहीं करता था। उसके समय में कोई अपने अनुचरों के साथ भी अनुचित व्यवहार नहीं कर सकता था। ४००० घोड़ों की जागीर रखने वाले मलिक बख्बक ने उसके समय में अपने एक अनुचर को कोड़े लगा कर मरवा डाला था। उसकी विधवा के शिकायत करने पर उसने उस व्यक्ति को भी उसी प्रकार कोड़े लगाने की आज्ञा दे दी थी। मुहम्मद बिन तुगलक की न्यायप्रियता तथा निष्पक्षता के सम्बन्ध मे स्वय इब्नबतूता ने साक्ष्य प्रस्तुत किया है।

सुल्तान के बाद सुल्तान का प्रधान न्यायाधीश काजिये मुमालिक होता था। न्याय करने के लिये दो प्रकार के न्यायालय होते थे (१) दीवाने कजा और (२) दीवाने मजालिम मुहम्मद बिन तुगलक के समय मे विद्रोहियों को सजा देने के लिए एक नवीन न्यायालय का सृजन किया गया था जो 'दीवाने सियासत' कहा जाता था। इन न्यायालयों म दो प्रकार के कर्मचारी होते थे . (१) मुफ्ती (२) मुफतही मुफ्ती का कर्त्तव्य कानूनी सलाह देना था और मुफतही का तथ्यों की खोज करना। दीवाने मजालिम का प्रधान न्यायाधीश 'अमीरे दाद' कहा जाता था। आधुनिक काल के पेशकार की तरह हजीब हुआ करते थे। इन्हीं के पास सर्वप्रथम मुकदमा पेश होता था। उनके द्वारा सतोषप्रद फैसला नहीं किये जाने पर मुकदमा काजी ए मुमालिक के सामने पेश किया जाता था। ऐसा मालूम पड़ता है कि सामान्यतः कानूनी कार्यवाही नियमित रूप स नहीं होता था। मुफ्ती कुरान के अनुसार कानून की व्याख्या करते थे जिसके आधार पर मुकदमा के फैसले किये जाते थे। उस वे कानून बहुत सख्त थ। महाजन अक्सर अपने कर्ज का वसूली के लिए राजकीय सहायता प्राप्त करते थे।

दण्ड विधान—अपराधियों के लिए अत्यन्त कठोर दण्ड दिया जाता था।

सामान्यतः अंग भंग या प्राण-दण्ड दिया जाता था। अपराध स्वीकार कराने के लिए जबर्दस्ती की जाती थी और पीड़ा भी पहुँचाई जाती थी। अलाउद्दीन खिल्जी के समय में दूकानदारों को कम तौलने या ठगने पर सख्त सजाएँ दी जाती थी। कम तौलने पर उतना ही गोश्त दूकानदार के शरीर से काट लिया जाता। राजविद्रोहियों को किसी हालत में क्षमा नहीं किया जाता था और इन्हें प्राण-दण्ड ही दिया जाता था। इस्लाम का विरोध करने के अपराध में एक ब्राह्मण को जिन्दा ही राजमहल के सामने जलवा दिया गया था। पुराने किले तथा दुर्गों को कारागार के रूप में काम लाया जाता था। केवल दो ही ऐसे सुल्तान हुए जिनके समय में दण्ड की कठोरता में कमी आ गई थी। पहला जलालुद्दीन खिल्जी था और दूसरा फिरोज तुगलक। जलालुद्दीन अपनी कोमलता एवं उदारता के कारण ठगों तक को भी बिना दण्ड दिये मुक्त कर देता था। कहा जाता है कि उसके पास अपराधी दण्ड की आशा से आते थे और इनाम के साथ लौटते थे। विद्रोही मलिक छज्जू को पकड़ कर उपस्थित किये जाने पर सुल्तान बिलख-बिलख कर रोने लगा था। उसने उसका प्राण-दण्ड देने के स्थान पर अतिथि की तरह उसका सत्कार किया। फिरोज तुगलक ने अपराधियों को यातना देना तथा निर्मम दण्डों को समाप्त कर दिया। वह इतना दयावान था कि कभी-कभी घोर अपराधी भी बिना दण्ड पाये ही मुक्त कर दिये जाते थे।

गुप्तचर प्रणाली—निरंकुश राजतन्त्र में एक सुव्यवस्थित गुप्तचर प्रणाली का होना अत्यन्त आवश्यक है। दिल्ली के सुल्तानों द्वारा सम्पूर्ण साम्राज्य में गुप्तचर नियुक्त किये जाते थे। गुप्तचरों द्वारा सुल्तान को हर एक तरह की जानकारी रहती थी। राज्य के प्रभावशाली व्यक्तियों की गतिविधि पर सुल्तान अपने गुप्तचरों द्वारा दृष्टि रखता था यहाँ तक कि बुगरा खाँ जैसे व्यक्ति पर भी गुप्तचर लगाये जाते थे। इन गुप्तचरों के कारण निरपराध निम्न श्रेणी के मनुष्यों की रक्षा शक्तिशाली एवं प्रभावशाली व्यक्ति से होती थी।

आय के साधन—दिल्ली के सुल्तानों के आय के प्रमुख साधन निम्नलिखित थे :—

(१) भूमिकर
(२) खम
(३) जकात
(४) चुंगी
(५) जजिया
(६) अन्य कर

खराज भूमि कर होता था जो हिन्दू सामन्तों तथा भूमि मालिकों से वसूल किया जाता था। यह सामान्यतः उपज का १/५ भाग हुआ करता था। अलाउद्दीन के समय में हिन्दुओं से सम्पूर्ण उपज का १/२ भाग बिना किसी छूट के वसूल किया जाता था। गयासुद्दीन तुगलक के समय में भी सम्भवतः कर के दर में कमी नहीं की गई थी। मुहम्मद तुगलक के समय में यदि वृद्धि नहीं हुई थी तो कमी भी नहीं की गई इतना निश्चित है।

उसने दोआब में भूमि कर बढ़ा दिया था जिसके कारण वहाँ के कृषकों को बहुत कष्ट सहने पड़े और कितनों ही ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिये थे। बाद में वहाँ की हालत जानने के बाद उसने कृषि की हालत सुधारने के उपाय किये थे। जो भूमि मुसलमानों के पास होती थी वह उश्री कही जाती थी। इस पर उपज का १/१० भाग कर के रूप में वसूल किया जाता था। इसके अतिरिक्त राजकीय भूमि से भी आय होता था। वे भूमियाँ जो कर्मचारियों तथा फौजी अफसरों को प्रदान की गई थी 'इक्तास' कहलाती थी। यह कुछ निश्चित अवधि या जीवन भर के लिए प्रदान की जाती थी और इनके प्राप्त कर्ता 'मुक्त' कहे जाते थे। इससे भी राज्य को आमदनी होती थीं।

युद्ध में प्राप्त लूट का माल खम कहा जाता था। इसका १/५ हिस्सा राज्य को मिलता था और शेष सैनिकों में बाँट दिया जाता था। परन्तु आगे चलकर ४/५ भाग राज्य-कोष मे जमा होने लगा और १/५ भाग ही सैनिकों में बँटने लगा। फिरोज शाह जब सुल्तान बना तो उसने पुनः पुरानी व्यवस्था को स्थापित किया।

जकात केवल मुसलमानों से लिया जाता था। यह कर जायदाद का १/४० वाँ भाग हुआ करता था।

बाहर से जो माल बेचने के लिए आता था उस पर चुङ्गी वसूल की जाती थी। चुङ्गी की दर २% होती थी। परन्तु हिन्दू व्यापारियों को इसका दूना देना पड़ता था। यह चुङ्गी घोड़ों पर उसके मूल्य के ५% के हिसाब से थी।

जजिया मूलत. केवल उन्ही व्यक्तियो पर लगाया जाता था जो मुसलमान नहीं होते थे। इस कर के बदले में उन्हें जान-माल की सुरक्षा और सैनिक सेवा से मुक्ति मिलता थी। परन्तु बाद मे चलकर इस कर के साथ एक धार्मिक भावना जुट गई और यह कर मुसलमानों को छोड़कर गैर कौमों पर केवल इसलिए लगाया जाने लगा जिसमे वे इस कर से छुटकारा पाने के लिए इस्लाम धर्म स्वीकार कर लें। ब्राह्मण इस कर से मुक्त थे परन्तु फिरोज शाह के समय से ब्राह्मणों पर भी यह कर लगाया जाने लगा जो उनकी योग्यता के अनुसार क्रमश ४०, २०, १० टका नियत किया गया था। बाद में ब्राह्मणों की प्रार्थना पर १० टकों के स्थान पर ५० कनियाँ नियत की गई थीं।

खनिज पदार्थ पर भी १/५ भाग के हिसाब से राज्य द्वारा कर वसूल किया जाता और शेष उस व्यक्ति का हो जाता था जिसकी भूमि में यह पाया जाता था। लावारिस सम्पत्ति भी राज्य द्वारा ले ली जाती थी। गृह कर चरागाहों की भूमि से प्राप्त कर, तथा सिंचाई कर भी राज्य की आय के साधन थे।

राज्य परिवार—राज्य परिवार के लिए अनेक कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे जिनका अध्यक्ष 'वकीलेदर' कहा जाता था। वकीलेदर सुल्तान के अस्तबल, शराबखाना रसोईदर, राज परिवार के बच्चों की देखभाल और नौकरों के वेतन वितरण की व्यवस्था करता था। इसकी अधीनता मे अमीर हाजिब, बारबक, नकीब, 'जानदार' या अंग रक्षक, चश्नीगीर, खास हदार, किताबदार, अगाची, दबीरे सरा, खजीन हदार,

मलीकुल हुकुम, साकी खास, फरास, मशालदार इत्यादि कई अन्य कर्मचारी होते थे। इसके अतिरिक्त राज परिवार के साथ एक बहुत बड़ी संख्या में दास भी सम्बन्धित रहते थे। मुहम्मद तुगलक के समय में इनकी संख्या लाखों तक में पहुँच गई थी।

सुल्तान की सबसे बड़ी स्त्री 'मलिक-ए-जहाँ' और उसकी 'खुदावन्दे जहाँ, तथा मखदूम-ए-जहाँ, के नाम से पुकारी जाती थी। राजकुटुम्ब में मामा का पर्याप्त आदर किया जाता था परन्तु उनका प्रभाव राजनीति में नहीं के बराबर ही था।

सुल्तान के परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक विशाल 'रसद' विभाग था जिनके उपविभाग कारखाना कहे जाते थे। इन कारखानों में से जो मनुष्यों तथा पशुओं के भोजनादि का प्रबन्ध करते थे वे 'रातिबी' कहे जाते थे और जो कपड़े इत्यादि का प्रबन्ध करते थे वे 'गैर रातिबी' कहलाते थे। इन कारखानों का प्रबन्ध अलग-अलग एक मलिक अथवा खाँ के जिम्मे सौंपा जाता था।

मन्त्रिगण—सुल्तानों को मशविरा देने के लिए योग्यतम, बुद्धिमान एवं अनुभवी व्यक्ति दरबार में मौजूद रहा करते थे। परन्तु प्राचीन हिन्दू राजाओं की मन्त्रि-परिषद् की तरह मन्त्रियों की कोई प्रतिनिधि संस्था न थी। सुल्तान के मन्त्री उसके सेवक के रूप में होते थे और उसी के प्रति पूर्ण रूपेण उत्तरदायी थे। उसका प्रधान मन्त्री 'वजीर' कहा जाता था। बाद में वजीर को ख्वाजा जहाँ कहा जाता था। वजीर काफी प्रभावशाली हुआ करते थे। रुकनुद्दीन फिरोज शाह तथा नासिरुद्दीन महमूद जैसे निर्बल सुल्तानों के समय में वास्तविक ही था। वजीर का स्थायी निवास राजधानी में था और केन्द्र का सम्पूर्ण शासन अधिकार उसी के हाथों में होता था। वह सुल्तान का प्रतिनिधि समझा जाता था। सुल्तान की अनुपस्थिति में प्रायः वह सम्पूर्ण राजकार्य की देखरेख का भार अपने ऊपर ले लेता था। केन्द्रीय राजस्व विभाग पूर्ण रूपेण उसकी अधीनता में अपना करता था। इसके अतिरिक्त अन्य विभागों के लिए भी वह उत्तरदायी था। उसे राज्य के प्रत्येक मामले में सुल्तान को परामर्श देना पड़ता था, अतएव वजीर का बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न होना आवश्यक होता था। यह नितान्त आवश्यक था कि वजीर और सुल्तान पूर्ण सहयोग के साथ राज के कामों में कदम उठावें। यदि मतभेद हो जाय या वजीर की स्वामिभक्ति में शंका उत्पन्न हो जाय तो उस अवस्था में उसे पदच्युत् कर देना ही श्रेयस्कर था। पदच्युत न होने पर विश्वासघाती वजीर सुल्तान की जड़ आसानी से खोद सकने में समर्थ था।

वजीर का एक अपना अलग विभाग होता था। यह विभाग 'दीवाने विजारत' के नाम से पुकारा जाता था। वजीर के नीचे उसकी सहायता करने के लिए नायब वजीर की नियुक्ति होती थी। नायब वजीर के मातहती में मुशरिफे मुमालिक होता था।

वजीर के अलावा तीन और मन्त्री होते थे। ये चार मन्त्री ही सुल्तनत के चार स्तम्भ होते थे। प्रत्येक की अधीनता में एक एक विभाग होते थे :

(१) दीवाने विजारत

(२) दीवाने रिसालत

(३) दीवाने अर्ज

(४) दीवाने इन्शा

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं दीवाने विजारत का अध्यक्ष वजीर अथवा ख्वाजा जहाँ होता था। दीवाने रिसालत का प्रधान 'सुदूर-उस सुदूर' होता था। यह विभाग धार्मिक मामलों, साहित्यकारों, एव साधु महात्माओं की व्यवस्था करता था। 'दीवाने अर्ज' आरिजे ममालिक की अध्यक्षता मे कार्य करता था। इसका प्रमुख कर्त्तव्य सैन्य सगठन की देख-रेख तथा उसकी समुचित व्यवस्था करनी थी। दीवाने इन्शा 'दबीरे खास' की देखरेख में अपना कार्य करता था। इस विभाग का कर्त्तव्य था पत्र व्यवहार की समुचित व्यवस्था करना। इन विभागों के अतिरिक्त भी कई विभाग होते थे जिनकी अध्यक्षता अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा की जाती थी। परन्तु इन सब पर वजीर का नियन्त्रण सदैव लगा रहा था। सूचना विभाग का अध्यक्ष रीदे मुमालिक भी काफी महत्व का अधिकारी होता था। इन मन्त्रियो का उत्तरदायित्व प्रजा के प्रति नहीं वरन् केवल सुल्तान के प्रति होता था। अतएव इनका महत्व विभागाध्यक्ष के रूप में ही था।

सुल्तान का पद—इस्लाम के अनुसार सुल्तान बनने के लिए व्यक्ति में निम्नलिखित गुण होना आवश्यक समझा जाता था —

(१) वह वयस्क हो

(२) उसका कोई प्रधान अग-भग न हो

(३) धर्म में उसकी आस्था हो

(४) नेतृत्व की उसमें क्षमता हो

(५) न्यायशील हो

(६) वह स्वतन्त्र हो

(७) वह पुरुष हो स्त्री नहीं

यद्यपि उपर्युक्त शर्तें इस्लाम द्वारा निश्चित की गई थीं। परन्तु हम व्यावहारिक रूप में देखते है कि दिल्ली के सुल्तानो ने इन नियमों को आदर्श नहीं माना। कुतुबुद्दीन दास की अवस्था ही में सुल्तान पद पर सुशोभित हुआ था। हाँ उसके बाद के दास जो सुल्तान हुए अपने स्वामियो द्वारा स्वतन्त्र कर दिये गये थे। कैकुबाद लकवा का शिकार हो जाने पर भी सुल्तान बना रहा। महमूद तुगलक आदि वयस्क न होने पर भी सिंहासन पर आसीन हुए थे। नेतृत्व एव योग्यता का अभाव तो कई सुल्तानों में था। रजिया स्त्री थी परन्तु उसने भी सुल्तान पद को सुशोभित किया था यद्यपि कट्टर मुसलमानो ने इसका घोर विरोध किया था।

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं दिल्ली के सुल्तानो में उत्तराधिकार सम्बन्धी कोई निश्चित नियम नहीं था। साधारणत सुल्तान का चुनाव होता था। परन्तु इस चुनाव का जनता की इच्छा के अनुसार नहीं किया जाता था वरन् अमीर उमराव जिसे चाहते थे उसे ही सुल्तान घोषित करते थे। यद्यपि सुल्तान मरने के पहले अपने उत्तराधिकारी नियुक्त कर देते थे परन्तु ऐसे बहुत कम उदाहरण मिलते हैं जिसमें सुल्तान द्वारा मनोनीत व्यक्ति उसकी मृत्यु के बाद सुल्तान बना हो। कभी कभी तो

योग्य व्यक्ति ही अपनी तलवार द्वारा इस चुनाव का फैसला कर देता था। बाद में अमीर उसके आज्ञा पालन का शपथ ले लेते थे। सुल्तान पद के लिए कोई निश्चित वशानुगत अधिकार नहीं था।

इस्लाम के आदर्श के अनुसार अत्याचारी एव कर्त्तव्यच्युत् सुल्तान को सिंहासन से हटा देना चाहिए। दिल्ली के कई सुल्तान अपनी अयोग्यता के कारण योग्यतर व्यक्ति के लिए अपना पद छोड़ने के लिए विवश किये गये। परन्तु हमें ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि अमीरों ने अपना प्रभाव जमाये रखने के लिए निकम्मे व्यक्तियों को सुल्तान निर्वाचित किया और अपने मनमानी करते रहे। परन्तु यह अधिक समय तक नहीं चल पाता था। जो भी हो विचाराधीन युग की परिस्थितियाँ ही कुछ इस प्रकार की थीं कि अयोग्य तथा विलासी सुल्तान अधिक दिनों तक सिंहासन पर नहीं टिक सकता था। परम्परागत उत्तराधिकार के निश्चित नियम न होने के कारण राजनीतिक दृष्टिकोण से कुछ तो लाभ भी होता था और कुछ हानि भी। उत्तराधिकार के निश्चित नियमों के अभाव के कारण ही कुछ अद्भुत प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति दिल्ली के सुलतान बन सके जिन्होंने मुस्लिम साम्राज्य की नींव को दृढ़ ही भर नहीं किया वरन उसमें शान्ति एव सुव्यवस्था स्थापित की।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. दिल्ली सुल्तानों के शासन-सिद्धान्तों का संक्षेप मे परिचय दीजिए?

२. दिल्ली सुल्तानों के समय मे सामन्तों यथा दरबारियों की क्या स्थिति थी?

३. शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से दिल्ली सल्तनत के शासकों मे आप क्या विशेषता पाते हैं?

४. दिल्ली सुल्तानो की शासन सम्बन्धी नीति पर प्रकाश डालिए।

अध्याय १४

दिल्ली सुलतानों की धार्मिक नीति

भारत में मुस्लिम राज्य धर्म प्रधान राज्य था। धर्म का प्रभाव काफी था। ध्यान रहे कि इस्लाम धर्म में राजनीति का अभाव है। पेगम्बर के समय इसमें राजनैतिक विचार नहीं थे। यह सामाजिक एव धार्मिक आदर्शों का प्रतिपादन करता था। यह सत्य है कि अपने विचारों का प्रचार करते समय मुहम्मद साहब को कुछ एक लड़ाइयों में भाग लेना पड़ा था और हिंसात्मक नीति का भी अनुसरण किया गया था। परन्तु पेगम्बर के विचार हिंसात्मक नीति के पक्ष में न थे और उन्होंने उन्हें अपने धार्मिक उपदेशो मे स्थान नहीं दिया। उसकी शिक्षाओं का उद्देश्य चारित्रिक एव मानसिक शुद्धता तथा शान्ति स्थापना था। इस्लाम का अर्थ होता है "शान्ति" और शान्ति स्थापना द्वारा वह अरबो को एक सामाजिक एव धार्मिक ईकाई के रूप में देखना चाहते थे। धार्मिक एव सामाजिक एकता के परिणामस्वरूप राजनैतिक विचारों का जन्म हुआ।

इन परिस्थितियो में साम्राज्य स्थापना का कार्यारम्भ हुआ। अरबों के लिये एक नया मार्ग खुल गया। जिसके फलस्वरूप सैनिकों और धार्मिक व्यक्तियो के बीच खाई बन गई। इस समय मौर्य वंश राज सत्ता पर अधिकार किये हुये था। उनके शासन काल मे एक समूह विशेष ने पेगम्बर की शिक्षाओ का प्रचार करने और उन का अर्थ बताने के अधिकारों को एकाधिकृत कर लिया। इस धार्मिक समूह ने राजनेतिक कार्यों को उचित बतलाया। इस समूह मे अनेक विद्वान व्यक्ति सम्मिलित थे और इसे "अलसूनत वल जमायत" कहा जाता था। बाद मे इन्हें उलमाओ का नाम दे दिया गया था। इस्लाम को न्याय एव राजनेतिक विचारो मे इन की महान् देन है परन्तु ध्यान रहे कि उनके कार्यो ने कई बार अराजकता को जन्म दिया। उलमाओ एव सुल्तानो का सम्बन्ध योरपीय शासको एव पोप के सम्बन्ध की भाँति न था। इसाई धर्म मे पोप का अधिकार राजनैतिक एव धार्मिक क्षेत्रो मे सर्वोच्च था। परन्तु मुल्लाओ का अधिकार इतना अधिक न था उनका कार्य था धार्मिक नियमो का प्रतिपादन राज दरबार में उनको काफी सम्मान प्राप्त था। भारत मे तुर्की राज्य स्थापना हो जाने पर सुल्तानो ने खलीफा के राज दरबार की नीति का अनुसरण किया। उलमाओं को वही अधिकार दिये गये जो उन्हे बगदाद के राजदरबार मे अथवा अन्य किसी मुस्लिम राज्य मे प्राप्त थे। उदाहरणार्थ किसी भी दिल्ली सुल्तान के लिये यह आवश्यक है कि उसके नाम पर खुतबा पढ़ा जावे। एक प्रकार से यह एक धार्मिक कार्य था और राजनैतिक दृष्टिकोण से उसका काफी महत्व था। यह कार्य मुख्य काजी किया करता था। उलमाओ को धार्मिक एव

सामाजिक कार्यों में न्याय करने का अधिकार था। मिनहाज सिराज ने उनके अस्तित्व को महत्वपूर्ण बतलाया। उसका कथन है कि उलमाओं द्वारा किसी सुल्तान की सहायता अथवा उसका विरोध उस सुल्तान विशेष का भाग्य निर्धारित करता था। अन्य शब्दों में उलमाओं की सद्भावना आवश्यक थी। उलमाओं का महत्व इस बात से भी जाना जा सकता है कि युद्ध से वापस लौटते हुये सुल्तान के स्वागतार्थ आगे आने वाले व्यक्तियों में उलमाओं को प्रमुख स्थान दिया जाता था।

इल्तुतमिश ने धार्मिक आदर्शों एव विचारों को अपनाने का प्रयत्न किया और उनका अनुसरण करते हुये उलमाओं को काफी सुविधायें दीं और उनका सम्मान किया। अतः हम कह सकते हैं कि इल्तुतमिश के शासन काल मे धार्मिक नेताओं की शक्ति बढ़ गई। इल्तुतमिश एव ऐबक दोनों ही उलमाओं तथा शेखों को दान दिया करते थे। इस प्रकार इस समुदाय को राजनैतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया। जिस समय बलबन गद्दी पर बैठा तो उसे उलमाओं द्वारा राजनीति में हस्तक्षेप एव उनकी पतनोन्मुख स्थिति को देख कर दुःख हुआ। फलस्वरूप उसने मध्यस्थ नीति का अनुसरण किया। उसने कुछ योग्य उलमाओं को विशेष सुविधायें दीं और उनका सम्मान किया। परन्तु यह सम्मान सीमित था। उन्हें राजनीति में हस्तक्षेप करने की अनुमति प्राप्त न थी, फिर भी जन-साधारण में उन्हे काफी सम्मान प्राप्त था और वह लोकप्रिय थे। बलबन के मरते ही उलमाओं ने अपना पूर्व स्थान प्राप्त कर लिया। दुर्भाग्यवश बलबन के मृत्योपरान्त फैल जाने वाली अराजकता में उनका क्या प्रभाव था यह जानना कठिन है। जलालुद्दीन सिंहासनारूढ़ हुआ और उलमाओं कि शक्ति बढ़ गई। एक उदाहरण से उनके प्रभाव को जाना जा सकता है। सीदी मौला नामक एक प्रसिद्ध धार्मिक व्यक्ति को षड्यन्त्र एव देश द्रोह के अभियोग पर कैद किया गया था। उलमाओं ने ही उसे दण्ड दिया और वह हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा दिया गया। पुनः सुल्तान जलालुद्दीन अल-मुजहिद-फी सबी अल्ला की उपाधि धारण करना चाहता था परन्तु उलमाओं की अनुमति बिना वह ऐसा नहीं कर सकता था। कुछ भी हो वास्तविकता तो यह थी कि बलबन के मृत्योपरान्त लोग अपने आदर्श स्तर से नीचे गिर चुके थे। साहित्य एव धार्मिक दृष्टिकोण से उनके आदर्श निम्न कोटि के आदर्श थे। बर्नी ने बार बार उनकी कटु आलोचना की है। उनमें भ्रष्टाचार फैला हुआ था और यही कारण था कि स्वय बलबन उन से खिन्न था और उन्हे अपना विश्वासपात्र बनाने में डरता था। उलमा लोग अवसरवादी बन गये थे। वह सुस्त, एव भ्रष्ट थे और उनका ज्ञान, ज्ञान उपार्जन हेतु न था वरन् इस ज्ञान से वह अनुचित लाभ उठाना चाहते थे।

सचेत में राजकीय सत्ता भवन का एक स्तम्भ निकम्मा हो चुका था और अलाउद्दीन ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिया। यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना उचित होगा कि अलाउद्दीन उलमाओं से घृणा नहीं करता था। उसका व्यवहार बलबन के व्यवहार की तरह था। वह समकालीन शेख निजामुद्दीन औलिया को बहुत मानता था और उसका सम्मान करता था। उसका अपना पुत्र निजामुद्दीन का अनुयायी था। इसी प्रकार वह एक अन्य शेख हमीदा दीन कलन्दर का सम्मान करता था। ध्यान रहे

कि अलाउद्दीन ने अपनी समकालीन समस्याओं को सुलझाने में काजी मुगिसुद्दीन की सहायता ली थी। वह किसी भी कार्य को करने के पूर्व उसका विचार सुना करता था. उसकी स्वीकृति एव अस्वीकृति उसकी स्वेच्छा पर निर्भर थी। राजत्व सिद्धान्त के प्रति उसकी निजी देन थी। वह कार्य के सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक पक्षो के अन्तर को जानता था। वास्तविकता तो यह है कि जहाँ कहीं भी धार्मिक मतभेदों ने राजनीतिक कार्यों में हाथ डालने का प्रयत्न किया अलाउद्दीन ने धार्मिक सिद्धान्तो का त्याग कर दिया और अपनी योजना को कार्यान्वित किया। राजनैतिक दृष्टिकोण से वह धर्म को अधिक महत्व नहीं देता था। इस क्षेत्र में उलमाओ का प्रभाव कम हो गया जिसके अनेक कारण थे। इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि इस समय तक विजयी एव विजित लोगों के बीच की खाई सकीर्ण हो चुकी थी और केवल धर्म-प्रधान राज्य की कामना करना सम्भव न था। इस समय विभिन्न वर्गों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ गया था। तुर्क एव भारतीय मुसलमान शासक कार्य के केवल एक अग —सेना पर एकाधिकार स्थापित करने में सफल हुए थे। व्यापार आदि अब भी हिन्दुओं के हाथ मे थे। आर्थिक एव सामाजिक दृष्टिकोण से भारतीयो को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। राज्य लगान आदि वसूल कर सकता था परन्तु केवल लगान वसूल करना ही उसका कार्य न था। अपनी जीवन नौका को सुचारु रूप से चलाने के लिये यह आवश्यक था कि राज्य धर्म को राजनीति से अलग रखे। इस तथ्य का महत्व इस बात से जाना जा सकता है कि फिरोज तुगलक के समय यद्यपि उलमाओं का महत्व काफी बढ़ गया था तथापि सुल्तान के स्वागतार्थ जाने वाले व्यक्तियो मे हिन्दू व्यापारी सम्मिलित होते थे।

जब हम खिलजी वश से तुगलक वश की ओर बढ़ते है तो हमे उलमाओ के उत्थान एव पतन का रोचक वर्णन मिलता है। अलाउद्दीन के उत्तराधिकारियो ने अपनी सत्ता बनाये रखने के कारण उलमाओ को अपनी ओर मिला लिया और उन्हे काफी धन दिया गया था। राज्य कोष रिक्त था। गयासुद्दीन तुगलक के सम्मुख खाली खजाने की समस्या एक गम्भीर समस्या थी। उसने उलमाओ को दिया गया धन वापस करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। उनमें निजामुद्दीन औलिया भी सम्मिलित थे। औलिया को उलमाओ के न्यायालय मे आने की आज्ञा दी गई। जो कुछ भी हो यह स्पष्ट था कि सुल्तान एव उलमाओ के पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे न थे। उलमाओं का प्रभाव अधिक था परन्तु मुहम्मद तुगलक के शासन काल मे उलमाओ का प्रभाव पुन कम हो गया। उन्हें दण्ड देने मे उसे सकोच न था। इब्नबतूता का कथन है कि मुहम्मद तुगलक ने १५ उलमाओ का भयानक दण्ड दिया था। परन्तु यह एक राजनैतिक आवश्यकता थी। मुहम्मद तुगलक धार्मिक व्यक्ति था और धार्मिक नियमो का पालन किया करता था तथा धार्मिक व्यक्तियो का सम्मान किया करता था। जैसा कि पिछले एक अध्याय मे बताया जा चुका है खलीफा के दूत का स्वागत करते हुये मुहम्मद तुगलक ने धर्मान्धता का परिचय दिया। उसने अपने वस्त्रो पर खलीफा का नाम छपवा रखा था। इतना होते हुये भी उसने धर्म को राजनीति से अलग रखा और इस प्रकार बलबन एव अलाउद्दीन की नीति का अनुसरण किया।

मुहम्मद तुगलक के बाद फिरोज तुगलक सिंहासनारूढ़ हुआ। वह धर्मपरायण

व्यक्ति था और उलमाओं के साथ काफी समय तक रहा था। उसके मस्तिष्क में यह बात बैठा दी गई थी कि धर्म एवं धार्मिक नेताओं की अवहेलना के कारण ही मुहम्मद तुगलक को असफलता मिली थी। ध्यान रहे कि व्यक्तिगत रूप में पतनोन्मुख होने पर भी उलमाओं का सामूहिक प्रभाव काफी था। बर्नी एवं अफीफ का कथन है कि सिन्ध में मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के बाद फिरोज को सिंहासन पर बैठाने में उलमाओं का हाथ था। अनेक कारणों से फिरोज तुगलक उलमाओं के हाथ की कठपुतली बन गया था और राजनीतिक समस्याओं में उनका सुझाव लिया करता था। उलमाओं की बातों को मानते हुए नवीन नियमों की रचना की गई। इसी प्रकार दान एवं कृषि विभाग के खोलने में भी उलमाओं का हाथ था। संक्षेप में फिरोज तुगलक का शासन काल प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है और यह धार्मिक प्रतिक्रिया किसी न किसी रूप में अकबर महान् के समय तक चलती रही।

जनता पर प्रभाव—धर्म-प्रधान इस्लामी राज्य ने उस समय के मुसलमानों को आरामपरस्त बना दिया। बड़े बड़े पदों को मुसलमान व्यक्ति ही सुशोभित करते थे। धन की अधिकता एवं प्रतिदिन के जश्नों से मुसलमान विलासमय जीवन की लालसा करने लगे। पूर्व मुसलमानों की तरह उनमें न तो जोश ही था और न उनकी योग्यता ही थी। साथ ही साथ राज्य का मुसलमानों के प्रति पक्षपात उनकी स्वतन्त्र प्रकृति के प्रति घातक सिद्ध हुआ। भूमि पर उनका अधिकार था और पैदावार का $\frac{1}{10}$ भाग कर के रूप में देना पड़ता था। आत्म-सम्मान एवं स्वतन्त्र विचारों का अभाव होने लगा। अ-मुसलमानों पर सुल्तान का प्रभाव अन्य प्रकृति का था। उनको अनेक कठिन कार्यों के लिए बाध्य किया जाता था। बर्नी का कथन है कि हिन्दुओं से ही राज्य को अधिक आमदनी होती थी। दुआब के हिन्दुओं से उत्पत्ति का $\frac{1}{2}$ भाग और आय का $\frac{1}{2}$ भाग लिया जाता था। लोगों के रहन-सहन का स्तर निम्न कोटि का था। निर्धनता का जीवन व्यतीत करने वालों की संख्या अधिक थी। ऊँचे पदों से उन्हें हटा दिया गया था। अपमान एवं अमानुषिक व्यवहार द्वारा हिन्दुओं को इतना पतित बना दिया गया था कि वे उठने के योग्य न थे।

मुसलमानी राज्य में अ-मुसलमानों की शोचनीय दशा थी। उन को इस्लाम धर्म स्वीकार करने पर बाध्य किया जाता था। उन्हें जजिया नामक एक विशेष कर देना पड़ता था। उन पर अत्याचार के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। वे फौज में भर्ती नहीं हो सकते थे। नवीन मन्दिरों की स्थापना करना पाप समझा जाता था यहाँ तक कि उन्हें पुराने मन्दिरों की मरम्मत कराने की भी अनुमति न थी। किसी प्रकार की धार्मिक रीति रिवाज का पालन करना बहुत बड़ा अपराध था और ऐसा करने वाले व्यक्तियों को कठोर दण्ड दिये जाते थे। मुहम्मद तुगलक समान उदार एवं सहिष्णु सुल्तानों को विश्वासघाती बतलाया जाता था।

समाज में मुसलमानों को काफी सम्मान प्राप्त था। हिन्दुओं को उनका सम्मान करना पड़ता था। न्याय कार्य में ऐसे नियम बनाये जाते थे जो धार्मिक नियमों के अनुकूल हों और उलमाओं को मान्य हों। इस प्रकार मुस्लिम राज्य में उलमाओं एवं

वाणी एवं शुद्ध विचारों ने उदार मुसलमानों एवं हिन्दुओं को अपनी ओर आकर्षित किया और उन्हें पारस्परिक मेल-जोल से रहने का आदेश दिया। इस प्रकार सूफी सन्तों ने दो धर्मों के समन्वय में महत्वपूर्ण योग दिया।

ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती—१२४१-१२३६ ई० में भारत में आने वाले सूफी सन्तों में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। आप का जन्म मध्य एशिया में हुआ था। कहा जाता है कि बचपन से आप ईश्वर भक्त हो गये थे। वह सूफी मत के चिश्ती सम्प्रदाय के प्रधान थे और उन्होंने घर-द्वार छोड़ कर इस्लाम के पवित्र स्थानों का भ्रमण किया था। आप ने सूफी मत के प्रमुख केन्द्रों समरकन्द, बगदाद, जिल्लनमक्का आदि का भ्रमण किया। भारत में भी आये और अजमेर को अपने मत का प्रचार केन्द्र बनाया। आप का प्रभाव हिन्दू और मुसलमान दोनों पर ही था। कहा जाता है कि हिन्दू साधू भी उनके प्रभाव के कारण इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया करते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि दिल्ली सुल्तानों एवं उनके धार्मिक परामर्शदाताओं उलमाओं की कट्टर एवं कठोर नीति ने जो कार्य कठोर एवं नृशंस शक्ति द्वारा किया था वही कार्य इन सूफी सन्तों ने प्रेम एवं निजी पवित्रता के बल पर कर लिया।

चिश्ती सम्प्रदाय के दूसरे प्रसिद्ध सन्त बाबा फरीदउद्दीन हुये जिनका जन्म ११७३ ई० में काबुल में एक राजवंश में हुआ था। आप भी भारत आये और सतलज के किनारे कुटी बना कर रहने लगे। ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की तरह बाबा फरीदउद्दीन को हिन्दू एवं मुसलमान प्रजा में काफी सम्मान प्राप्त था।

दिल्ली और दक्षिण भारत में बहुत दिनों तक अपना प्रभाव जमा रखने वाले तीसरे सूफी सन्त ख्वाजा बन्देनवाज उर्फ गेसूदराज थे। उपरोक्त दोनों सूफी सन्त विदेशी थे परन्तु आप पूर्णरूपेण भारतीय थे। आप का जन्म १३३१ ई० में दिल्ली में हुआ था। आप को दो तीन बार दिल्ली से दक्षिण भारत और दक्षिण भारत से दिल्ली आना-जाना पड़ा था। आप का कार्य सर्व प्रथम दिल्ली में आरम्भ हुआ और कुछ ही समय में आप की ख्याति चारों ओर फैल गई। आप की रुचि केवल धार्मिक प्रचार की ओर ही न थी। आप समाज सेवा के कार्यों में अत्यन्त रुचि रखते थे। कहा जाता है कि दिल्ली में महामारी फैल जाने पर आपने घूम घूम कर पीड़ित जनता को शान्ति प्रदान की। आपकी ख्याति से प्रभावित होकर दक्षिण में बहमनी राज्य के शासक ने आप को दक्षिण बुला लिया और वहीं आप का देहान्त हो गया।

इन तीनों सन्तों ने अपने असंख्य शिष्यों (जिनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्मिलित थे) द्वारा धार्मिक कट्टरता को दूर करके मनुष्यों में प्रेम का भाव जाग्रत किया। इन सूफी सन्तों के मत को मानने वाले अनेक कवि हुए जिनमें मनुष्यों के प्रति अगाध प्रेम था और जो समस्त सृष्टि को एक ही ईश्वर की बनाई हुई मानते थे। वे इन सूफी सन्तों के मत को प्रचारित करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। अमीर खुसरो ऐसे ही कवियों में से एक थे।

पश्चात् ही यह जानना कठिन था कि भारतीय जनता में विदेशी रक्त एवं विशुद्ध रक्त का समानुपातिक भाग क्या था। राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पढ़ते हुये तुमने यह देखा था कि अनेक विद्वान इस विचारधारा से सहमत हैं कि राजपूतों की उत्पत्ति विदेशी रक्त से हुई थी। तात्पर्य यह कि तुर्कों के आने के पहले हमारे देश में जितनी भी वाह्य जातियों ने प्रवेश किया वह सब हमसे बिल्कुल घुल मिल गईं परन्तु जैसा कि बताया गया है तुर्क एक ऐसी जाति थी जिसका अपना पृथक् सामाजिक संगठन था, कठोर धार्मिक विश्वास थे और साथ-साथ सशक्त राजनीतिक संगठन। इन तुर्क-अफगान आक्रमणकारियों से सामाजिक एवं धार्मिक आदर्शों का मेल किसी प्रकार भी सम्भव न था। यही कारण था कि विशाल वर्तुलाकार हिन्दू समाज में यह गोलाकार तुर्क-अफगान समाज न समा सका। दुर्भाग्यवश दिल्ली सल्तनत के कुछ ही शासक धार्मिक सहिष्णुता की रीति अपना सके थे। ऐसी दशा में हिन्दू समाज में तुर्क-अफगान समाज (मुसलमान समाज) का रूप खप जाना नितान्त कठिन था। पृथक्ता का सबसे बड़ा कारण तो यह था कि मुसलमान समाज के हृदय में "शासक वर्ग का" होने की भावना बनी रहती थी और हिन्दू समाज शासित होने के हीन भाव से दबा हुआ था, ऐसी दशा में दोनों का निकट सम्बन्ध स्थापित होना बहुत कठिन था। किन्तु धीरे धीरे परिस्थितियों ने पलटा खाया, सहवास ने परिचय का रूप धारण किया और फिर परिचय से प्रेम बढ़ा।

यहां यह बता देना आवश्यक है कि तुर्कों के भारत प्रवेश के पहले से ही हिन्दू एवं मुसलमान एक दूसरे की सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति बहुत उच्च भावना रखते थे। जिस समय तुर्कों का भारत पर अधिकार हुआ था उसके पूर्व ही मुसलमान और हिन्दू समाज में कुछ ऐसे विचारशील व्यक्तियों का उदय हो रहा था जो धर्म के आडम्बरों से दूर स्वच्छ एवं निर्मल रूप बनाना चाहते थे। इसी प्रकार के विचारों ने दोनों समाजों को धर्मान्धता और कट्टरता से मुक्त करा कर परस्पर मिलने-जुलने का अवसर दिया। इस कार्य में सूफीमत के अनुयायियों एवं भक्ति आन्दोलन के मुख्य कार्य-कर्त्ताओं ने महत्वपूर्ण योग दिया।

सूफीमत

सूफीमत इस्लाम धर्म का ही एक सम्प्रदाय है। यह शान्तिप्रिय व्यक्ति थे और धर्म के वाह्य आडम्बरों से मुक्त रहकर साधारण एवं नियमित जीवन व्यतीत करना चाहते थे। मानव सेवा और प्रेम द्वारा ईश्वर प्राप्ति के अपूर्व उपायों में इनका दृढ़ विश्वास था। फारस में इस सम्प्रदाय का अधिक जोर रहा है। ये कम्बल ओढ़े रहते थे और घूम घूम कर अपने मत का प्रचार किया करते थे। इन्हें रहस्यवादी भी कहा गया है। जिस प्रकार हमारे यहां के कुछ सन्तों ने ईश्वर और भक्त का सम्बन्ध प्रेमी-प्रेमिका के रूप में माना है इसी प्रकार सूफीमत में भी ईश्वर को प्रेममय माना गया है। सारांश में इस्लाम धर्म की यही एक शाखा थी जो तलवार के स्थान पर प्रेम द्वारा अपने मत का प्रचार करना चाहती थी। इस मत में भी [illegible] सम्प्रदाय अथवा वर्ग थे परन्तु सभी वर्गों के मूल सिद्धान्त एक जैसे [illegible] मानवी

विरोध किया। रामानन्द, कबीर, नामदेव, चैतन्य और नानक ने हिन्दू और मुसलमान, दोनों को एक ही पथ का यात्री बतलाया और अपने पदों, दोहों से जनता पर प्रभाव डाला। उन्होंने जातीय बन्धनों की घोर निन्दा की और अनेकेश्वरवादिता को समूल विनष्ट कर ईश्वर से सीधा सम्बन्ध रखने का उपदेश दिया। उन्होंने यह बताया कि धर्म का सत्य स्वरूप पाखण्डों और जाल-फरेबों में नहीं है। अपितु परम ब्रह्म से विशुद्ध प्रेम स्थापित करने में है। यह लोग निर्गुण पंथी थे और इनका कथन था कि आत्मा और ईश्वर एक नहीं वरन् भिन्न भिन्न हैं। मनुष्य को आत्मशुद्धि और प्रेम भाव के उच्च आदर्शों का पालन करना चाहिये। यह प्रेम भाव एक ओर तो सगुण ब्रह्म के प्रति होना चाहिये और दूसरी ओर साधारण प्रजा एवं अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति।

इस भावना के फलस्वरूप जो सुधार आन्दोलन उठा उसे भक्ति आन्दोलन कहते हैं।

भक्ति आन्दोलन के कारण—कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि भक्ति आन्दोलन या सुधार आन्दोलन कोई बहुत दिनों से चली आने वाली और दिल्ली सल्तनत के काल में पूर्ण विकास पाने वाली घटना न थी, बल्कि यह एक आकस्मिक घटना थी जो हिन्दू-मुसलमान सम्पर्क के कारण कुछ विशेष परिस्थितिवश सहसा घटित हुई थी। ऐसी दशा में भिन्न भिन्न प्रकार के लोग भिन्न भिन्न बातें करते हैं और इस प्रकार भक्ति आन्दोलन के अनेक कारण बतलाते हैं। यहाँ हम इन्हीं कारणों पर विचार करेंगे।

(१) पहला कारण तो यह बतलाया जाता है कि हिन्दू जनता बिलकुल ही निराश हो चुकी थी। ऐसी दशा में हिन्दुओं का भगवत भजन की ओर झुकना स्वाभाविक था। पर सब लोग इससे सहमत नहीं हैं।

(२) सूफी सन्तों के प्रेममय पूजा ने भारतवासियों को काफी प्रभावित किया और वे मुसलमानों के सम्पर्क में आने लगे। सूफी संत धर्मान्धता से दूर रहना चाहते थे और धर्मान्धता दूर कर देने के बाद तो किसी भी धर्म में मौलिक भेद नहीं रह जाता है। हिन्दू सन्तों में पहले से ही धर्म के आडम्बर और धर्मान्धता के प्रति घृणा उत्पन्न हो चुकी थी। वे चाहते थे कि धर्म अपने विशुद्ध रूप में ही हो और इस पर किसी प्रकार का बाहरी पर्दा न डाला जाय। सन्तों की इन बातों का प्रभाव काफी हुआ क्योंकि समाज भी धर्म-कट्टरवाद से कुछ कुछ ऊब रहा था।

उपर्युक्त कारणों ने भक्ति सुधार आन्दोलन को जन्म देने में योग दिया। अब हम उन सन्तों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे जिन्होंने भक्ति सुधार आन्दोलन को आगे बढ़ाने में अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया था।

(३) प्रमुख सन्त

इन सन्तों में स्वामी रामानुजाचार्य, स्वामी निम्बार्काचार्य, माधवाचार्य, रामानन्द, सन्त कबीर, गुरु नानक, वल्लभाचार्य, नामदेव, चैतन्य महाप्रभु के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

भक्ति आन्दोलन अथवा धर्म सुधार आन्दोलन

पिछले पृष्ठों में यह स्पष्ट है कि बौद्धिक क्रान्ति (छठी शताब्दी ई० पू०) जिस समय भारत में हुई ठीक उसी शताब्दी में विश्व भर में बौद्धिक क्रान्ति हुई। चीन, यूनान और ईरान में यह क्रान्ति फैल गई। १५वीं शताब्दी में विश्व में भक्ति आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, उसी काल में भारत में भी भक्ति आन्दोलन आरम्भ हुआ। वस्तुतः यह भक्ति आन्दोलन की पुनरावृत्ति थी। कहा जाता है कि यह भक्ति आन्दोलन प्राचीन-काल से ही चला आता है और उपनिषद, महाभारत आदि प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में इसका वर्णन मिलता है। परन्तु इसका कार्य सीमित था और समस्त भारत में एक ही धर्म होने के कारण इसे अपने प्रचार का अवसर नहीं मिला। बुद्ध तथा जैन धर्मों की उत्पत्ति ने हिन्दू धर्म को कुछ समय के लिए अप्रभावित बना दिया। क्रिया के बाद प्रतिक्रिया का होना आवश्यक है। ब्राह्मण धर्म ने पुनः अपने मत का प्रचार किया और इस कार्य में उसे जगतगुरु शंकराचार्य का महत्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। श्री शंकराचार्य अद्वैतवाद में विश्वास करते थे। वह सगुण की अपेक्षा निर्गुण को मानते थे। उनका प्रचार ज्ञान पर आधारित था और वह इस संसार से विरक्त रहने का आदेश देते थे। आपके विचार में आत्मा एवं ईश्वर में भेद नहीं था। डा० ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में शंकराचार्य ने जिस निर्गुण सच्चिदानन्द ब्रह्म का प्रतिपादन किया, वह भक्ति का आन्दोलन न बन सकता था और शंकराचार्य के अद्वैतवाद ने इस वास्तविक संसार में प्रेम एवं दया के लिए कोई स्थान न रहने दिया। अतः शंकर के अद्वैतवाद ने वैष्णव सम्प्रदाय के मूल में ही कुठाराघात किया। शंकराचार्य के अथक प्रयास से भारत में बुद्ध एवं जैन धर्म लगभग विलीन हो गये। उनका प्रभाव क्षेत्र सीमित रह गया। परन्तु जैसा कि ऊपर बताया गया है वह आन्दोलन भक्ति आन्दोलन का सहायक न था। वास्तविकता तो यह थी कि भक्ति आन्दोलन शंकर के मायावाद एवं ज्ञान पर आधारित आत्म-ज्ञान के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था। इस समय भक्ति आंदोलन का स्वरूप कुछ दूसरा ही था। हिन्दू धर्म ने अपनी विशेषताओं के कारण समय-समय पर भारत में आने वाली विदेशी जातियों को ग्रहण कर लिया करता था। परन्तु मुस्लिम धर्मावलम्बी अपने धर्म पर दृढ़ थे और वह अपने धर्म को ऊँचा समझते थे। परन्तु दोनों धर्मों में कुछ एक विचारों की समानता भी थी। भक्ति आन्दोलन के प्रवर्त्तकों ने धर्मान्धता का निराकरण किया, बहुदेववाद का विनाश कर एकेश्वरवाद का उपदेश दिया। इनका यह एकेश्वरवाद नवीन नहीं था, यह पौराणिक और वैदिक धर्मों से ही लिया गया था। साथ ही इस्लाम धर्म में भी एकेश्वरवाद प्रचलित था पर हिन्दू धर्म का एकेश्वरवाद इस्लाम धर्म की देन नहीं थी। इतना तो हम अवश्य कह सकते हैं कि इस्लाम धर्म का प्रभाव भारतीयों के सामाजिक तथा धार्मिक जीवन पर गहरा पड़ा। दोनों सम्प्रदायों के विचारशील लोगों ने पारस्परिक मतभेदों को मिटा कर प्रेम भाव बढ़ाया और सामंजस्य प्रस्तुत किया। जैसा कि हम ऊपर पढ़ चुके हैं इस्लाम धर्म ने कई फकीरों फरीदुद्दीन, शकरगञ्ज, शेख निजामुद्दीन औलिया और गेसूदराज ने धार्मिक आडम्बर और अन्ध-विश्वास का

स्थान बनाया। वहाँ कबीर इनके शिष्य हुये जो इनके शिष्यों मे सर्वश्रेष्ठ रहे। रामानन्दाचार्य की सर्वश्रेष्ठ विशेषता यह थी कि इन्होने साधारण बोलचाल की भाषा में ही अपने विचारों का प्रचार किया।

वल्लभाचार्य—इनका उदय १४७१ ई० में हुआ। इन्होने रामानन्द की राम भक्ति के स्थान पर कृष्ण भक्ति का उपदेश दिया। इनका कृष्ण से अटूट प्रेम था। वस्तुत. आपका स्थान वैष्णव धर्म की एक अन्य शाखा कृष्ण पन्थि शाखा के प्रधान पोषकों में बताया जाता है। आप तैलगू ब्राह्मण बाल्यकाल से ही अपनी योग्यता एव कृष्ण भक्ति के लिये प्रसिद्ध हो गये थे। आप की योग्यता के कारण अनेक व्यक्तियों ने इनका अनुयायी बनना स्वीकार किया। शिक्षा समाप्त करने के बाद आपने तीर्थ स्थानों की यात्रा की और अन्त मे बनारस को अपना प्रचार केन्द्र बनाया। मार्ग मे आप ने विजयनगर के राजा कृष्णदेव राय की राज सभा मे अपने विरोधी.शैव धर्मावलम्बी प्रधानाचार्यों को शास्त्रार्थ मे परास्त किया। बनारस मे आप ने १७ पुस्तको का निर्माण किया। आपने शुद्धाद्वैतवाद की स्थापना की। आप भक्तिमार्गी थे और भक्ति मार्ग को सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलाया है। आपने माया को ब्रह्म द्वारा उत्पादित और जीव एव जगत की सम्बन्धकारिणी बतलाया हे। परन्तु आप के भक्ति मार्ग को गलत समझ कर आप के अनुयायियो ने भोग-विलास और मायायुक्त जीवन आरम्भ कर दिया। फलस्वरूप यह समुदाय पतन के गड्ढे में गिर गया। बाद मे कुछ व्यक्तियों ने इस समुदाय को ऊँचा उठाने की चेष्टा की थी परन्तु उन्हे विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई।

चैतन्य महाप्रभु—चैतन्य महाप्रभु का जन्म सन् १४८५ ई० मे ब्राह्मण वश में हुआ। इन्होंने वैष्णव धर्म का प्रचार २५ वर्ष की ही अवस्था से करना प्रारम्भ किया। यह शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान थे। जातीय बन्धन और छूआछात का इन्होने खण्डन किया और सोहार्द्र, दया तथा भ्रातृभाव का उपदेश दिया। "वसुधैव कुटुम्बकम्" का पाठ तथा कृष्ण भक्ति की शिक्षा इन्होने धूम धाम कर दी। इन्होने कृष्ण की प्रेममयी भक्ति और सकीर्तन का उपदेश दिया। प्रेम ही उनके जीवन का आधार था और प्रेम एव लीला उनके मत की विशेषतायें। उनके विचार मे श्री कृष्ण ही त्रिभुवनपति है। जीवात्मा का सर्वोच्च लक्ष्य कृष्ण की भक्ति मे तल्लीन रहना है। राधा मा ही कृष्ण की राधा है। प्राणी मात्र का कर्तव्य है कि वह अपनी प्रत्येक वस्तु श्री कृष्ण को समर्पित कर दे। चैतन्य का प्रेम इतना प्रगाढ़ था कि श्री कृष्ण की लीला, वशी बजाना आदि कार्यो की स्मृति मात्र ही उन्हे आनन्द विभोर कर देती थी। डा० ईश्वरी प्रसाद के शब्दो मे उनके प्रेम की व्याख्या इस प्रकार की गई है

'प्रत्येक जीव शरीर एव आत्मा को उसको समर्पित कर दे और व्यक्तिगत सुख के भोगो से विरक्त हो जाये। उसको अपने प्रभु की इच्छा का पालन करने के लिये प्रस्तुत रहना चाहिये और ऐसा करने मे किसी का भय से विमुख न होना चाहिये। उसको कृष्ण की प्रतिमा की पूजा करनी चाहिये, उसकी चर्चा करनी चाहिये, उसके लिये माला गूँथना चाहिये, उसके लिये धूप जलाना चाहिये और मन्दिर मे चँवर डुलाना चाहिये तथा सासारिक प्रभु तथा जगत की सेवा मे तत्पर रहना चाहिये। वह पुन कह देना

स्वामी रामानुज—दक्षिण भारत के महान उपदेशक और भक्ति आन्दोलन के संस्थापक स्वामी रामानुज का आविर्भाव १२ वीं शताब्दी में हुआ था। इन्होंने शंकराचार्य के मायावाद का खण्डन किया। उनके अद्वैतवाद के स्थान पर विशिष्टा-द्वैतवाद का प्रचार किया। सगुण ब्रह्म ही इनका एक मात्र देवता था और मिल के देवता एटन की भाँति रामानुज का सगुण ब्रह्म भी कल्याणकारी था। यही नहीं उसे प्राप्त करने का एक मात्र उपाय भी भक्तिमार्ग द्वारा कल्याणकारी गुणों को प्राप्त करना था। आप ने लोगों को कर्मयोगी बनने का उपदेश दिया। मनुष्य को चाहिये कि वह सन्यास भावना से कार्य में तत्पर रहे और फल की इच्छा न करे। सर्व प्रथम स्वामी रामानुजाचार्य ने ही ब्रह्म एवं आत्मा को भिन्न-भिन्न बतलाया था। उनका कथन था कि प्रेममयी पूजा एवं निष्काम साधना द्वारा ही आत्मा एवं ब्रह्म का परस्पर मिलन होता है। अपने जीवन काल में ही इन्होंने ७०० वैष्णव मठों का निर्माण किया था। इनके अनुयायियों में सभी जातियों के लोग थे।

स्वामी निम्बकाचार्य—ये रामानुजाचार्य के समकालीन थे और वैष्णव धर्म की कृष्ण पन्थी शाखा के जन्मदाता थे। आप का जन्म ब्राह्मण घराने में ही हुआ था और आप की प्रारम्भिक शिक्षा वैदिक धर्म के आधार पर हुई थी। रामानुज की भाँति, आपने भी शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन किया परन्तु दोनों में कुछ अन्तर भी था। जहाँ रामानुजाचार्य ने द्वैतवाद के स्थान पर अद्वैतवाद अथवा विशिष्टाद्वैतवाद का प्रचार किया था वहाँ स्वामी निम्बकाचार्य ने दोनों के पारस्परिक मेल-जोल के लिए प्रयत्न किया। स्वामी रामानुज राम को भगवान विष्णु का अवतार मानते थे। निम्बकाचार्य के मत में कृष्ण ही समस्त जगत के अन्नदाता एवं आश्रय-दाता हैं। भगवान कृष्ण के चरणों में तल्लीन रहने से ही वास्तविक आनन्द प्राप्त हो सकता है। मोक्ष प्राप्ति का वही एक मात्र उपाय है। आपके मत का प्रचार मथुरा एवं आस-पास के भू भाग पर अधिक हुआ और यह स्वाभाविक भी था। निम्बकाचार्य के अनुयायी आज भी काफी संख्या में मिलते हैं।

माधवाचार्य—शृंगेरी से थोड़ी दूर पर इस महात्मा का उदय हुआ था। आप भी भगवान विष्णु के उपासक थे और भक्ति द्वारा भगवान की प्राप्ति को महत्व देते थे। आपको बाल्यावस्था से ही सन्यास की ओर रुचि थी। कई वर्षों के अध्ययन और अथक प्रयास के बाद आपने अपने चारों ओर फैले हुये धार्मिक विरोधियों को पछाड़ने का निश्चय किया और अपने कार्य में उन्हें सफलता प्राप्त हुई। आप का मुख्य प्रचार केन्द्र हरिद्वार था और यहीं पर ही वेदान्त सूत्रों पर अपना भाष्य प्रकाशित किया। आप भी मोक्ष प्राप्ति को जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मानते थे। आपके विचार में भक्ति मार्ग ही मोक्ष प्राप्ति का एक मात्र उपाय था।

रामानन्दाचार्य—रामानन्द का उदय १४ वीं शताब्दी में उत्तरी भारत में हुआ था। इन्होंने वैष्णव धर्म का खूब प्रचार किया और राम तथा सीता की आराधना का उपदेश दिया। रामानन्द के सिद्धान्तों में जाति बन्धन नहीं था। इन्होंने सभी प्रकार के लोगों को अपना शिष्य बनाया। सम्पूर्ण देश का भ्रमण कर इन्होंने काशी में प्रमुख

ईश्वर प्राप्ति का अधिकार नहीं है, सभी लोग जिनके हृदय मे भक्ति और सच्चाई है उसे प्राप्त कर सकते हैं।

गुरु नानक—सिख-धर्म के प्रवर्त्तक गुरु नानक देव का जन्म १४६९ में तालबन्दी नामक गाँव मे हुआ था। शैशव काल से ही इनकी प्रकृति सन्यास की ओर थी। कहा जाता है कि एक बार पिता ने इन्हे व्यापार हेतु कुछ रुपया दिया परन्तु इन्होने वह रुपया निर्धनो मे विभाजित कर दिया। पारिवारिक बन्धनो के जाल से निकल कर इन्होने देश-विदेश का भ्रमण किया। यह कबीर के अनन्य भक्त थे। गुरु नानक ने ईश्वर की भक्ति का उपदेश दिया और सच्चरित्रता पर जोर दिया। वह अल्लाह और राम को एक ही शक्ति के दो नाम बताते थे। मुल्लाओ और ब्राह्मणो के आडम्बरो और अभिमान से इन्हें चिढ़ थी। ईश्वर की प्राप्ति के लिए ससार का परित्याग करना इनकी दृष्टि मे अनुचित था।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं हिन्दू और मुस्लिम सभ्यताओ के समन्वय के पीछे अनेक साधु-सन्तो का हाथ रहा। कुछ सुल्तानो की सहिष्णुता ने भी इस समन्वय में सहयोग दिया। यहाँ हम उन्हा प्रवृत्तियो पर प्रकाश डालेंगे जिनके फलस्वरूप सास्कृतिक समन्वय उपस्थित हुआ। मुसलमानो का भारत मे स्थायी निवास इस समन्वय के मूल में दिखलाई पड़ता है। वे भारत मे केवल आक्रमणकारी के रूप मे नहीं आये थे वरन् भारतीय भूमि मे जीने-मरने का निश्चय लेकर ही उनका पदार्पण हुआ। प्रारम्भ में तो हिन्दुओ को मुसलमान रीति-रिवाज और धर्म बिलकुल अजीब सा लगा, किन्तु जैसे-जैसे वह अभ्यस्त होते गये, परिचय बढ़ता गया वैसे-वैसे उन्हे उनकी अच्छाइयाँ भी मालूम पडने लगीं। इसी प्रकार मुसलमानो को भी हिन्दू रीति-रिवाज और धर्म पाखण्डमय प्रतीत हुआ परन्तु कालान्तर मे उन्हे उसकी विशेषता ज्ञात हुई। इस क्षेत्र मे सुप्रसिद्ध इतिहासकार अलबरूनी और प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो के नाम से उल्लेखनीय हैं, जिन्होने मुसलमान समाज मे हिन्दू धर्म, या यूँ कहा जाये कि भारतीय सभ्यता और सस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न किया। भारतीय सभ्यता और सस्कृति को पूर्णतया समझने के अभिप्राय से काश्मीर नरेश जनुल आबदीन और बगाल के शासक हुसेन शाह ने हिन्दू धर्म ग्रन्थों का फारसी मे अनुवाद कराया। इस प्रकार धीरे धीरे देश मे दो विभिन्न जातियो ने एक दूसरे को पूरी तरह समझना प्रारम्भ किया और इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप दो विपरीत सभ्यताओ का भी मिलाप हुआ।

समन्वय का रूप

हिन्दू और मुसलमान संस्कृतियों का जो समन्वय हुआ उसका रूप हमें भाषा, कला, धर्म आदि मे स्पष्टतया देखने को मिलता है।

भाषा—उर्दू का विकास हिन्दू-मुसलमान संस्कृतियों के समन्वय का सबसे पुष्ट उदाहरण है। सैनिक छावनियों से प्रारम्भ होने वाली यह भाषा बहुत शीघ्र हिन्दू-मुसलमान जनता के मध्य वर्ग में प्रचलित हो गई। उर्दू का शब्द कोष अरबी, फारसी,

आवश्यक है कि वैष्णव धर्म एकान्तवासी का धर्म नहीं है और न ही पूर्णतया आत्म-समर्पण करने वालों का ही।"

चैतन्य महाप्रभु प्रत्येक व्यक्ति को कृष्ण भक्ति में तल्लीन देखना चाहते थे। मानव मात्र के प्रति भी उनका प्रेम कम न था और वह मानव दुखों को दूर करने के लिए निरन्तर अपने आराध्यदेव श्री कृष्ण से प्रार्थना किया करते थे।

भक्तिमार्ग के प्रसिद्ध सन्तों के बाद हम उन महान विभूतियों का उल्लेख करेंगे जिन्होंने हिन्दू मुसलमानों को एक बताया और दोनों धर्मों के पारस्परिक मेल-जोल के लिए प्रयत्न किये। इनमें नामदेव, कबीर तथा नानक के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सन्तों ने मूर्ति पूजा की घोर निन्दा की और जीवन की शुद्धता पर जोर दिया। उनके विचारानुसार किसी भी धर्म में भिन्नता नहीं है। समस्त मानव जाति का ईश्वर एक ही है चाहे उसे राम कहें या करीम इसमें विशेष अन्तर नहीं।

नामदेव—दक्षिण भारत में ही महाराष्ट्र मे १३वीं शताब्दी के अन्त में नामदेव का जन्म हुआ था। भक्ति द्वारा ये भी भगवत प्राप्ति बतलाते थे। जाति-पाँति पर इन्होंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया, यही कारण था कि हिन्दू-मुसलमान दोनों ही इन्हें अपना गुरु मानते थे। नामदेव ने ईश्वर की एकता का उपदेश दिया और बतलाया कि ईश्वर के प्रति शुद्ध प्रेम रखने से ही मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

सन्त कबीर—कबीर के सामने हिन्दू-मुसलमान में कोई अन्तर नहीं था। इन्होंने धर्म प्रचार के साथ साथ अन्य धर्मों की आलोचना भी की है। कबीर ने दोनों हिन्दू और इस्लाम धर्मों के आडम्बरों और पाखण्डों का जोरदार खण्डन किया। हृदय की पवित्रता और भजन से ईश्वर प्राप्ति हो सकती है, ऐसा उनका विश्वास था। उन्होंने बताया कि मूर्ति-पूजा और गंगा स्नान कपटी हृदय से करने पर कोई लाभ नहीं और मक्का और काबा की यात्रा अपवित्र हृदय से करना मूर्खता है। कट्टर हिन्दुओं की आलोचना के साथ-साथ उन्होंने मुसलमानों की धर्मान्धता को भी न छोड़ा। 'ककड़ पत्थर जोरि के मस्जिद लई चुनाय, ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय' और 'घर की चकिया क्यों नहीं पूजे जिसका पीसा खाय', आदि उक्तियों की रचना कर इन्होंने अपना उपदेश जनता तक पहुँचाया।

जाति भेद का खण्डन करते हुए कबीर लिखते हैं :

"यदि खुदा मस्जिद मे रहता है तो यह संसार किसका है? यदि राम मूर्ति में निवास करते हैं तो बाहर जो कुछ हो रहा है उसे जानने वाला कौन है? हरि पूर्व में हैं, अल्ला पश्चिम में। अपने हृदय में ढूँढो, वहां तुम्हें राम और करीम दोनों मिल जायँगे। संसार के सभी स्त्री-पुरुष उसी के जीवित रूप हैं। कबीर अल्ला और राम का पुत्र है। वही मेरा गुरु है और वही मेरा पीर। जाति-पाँति के भेद भी निरर्थक हैं। जितने भी रंग हैं वह सब एक ही प्रकार से उत्पन्न होते हैं। मानव स्वभाव के जितने रूप हैं वह सब एक ही मानवता के अंग हैं। केवल आदमी को [illegible] तक

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. दिल्ली सुल्तानों की धार्मिक नीति पर प्रकाश डालिए।

२ सूफी मत के विषय में आप क्या जानते हैं ?

३. धार्मिक समन्वय के लिए धर्म-सुधार आन्दोलन ने क्या योग दिया ?

४ मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन पर प्रकाश डालिए।

तुर्की और हिन्दी शब्दों से मिलकर बना है परन्तु इसकी व्याकरण पर हिन्दी की छाप है।

भाषा के साथ-साथ साहित्य का उल्लेख कर देना भी आवश्यक है। दिल्ली के सुल्तानों ने मराठी, बङ्गाली आदि भाषाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। मुसलमान और हिन्दू लेखकों ने एक दूसरे के विषयों पर लेखनी चलाई।

संगीत—संगीत के क्षेत्र में तो बहुत गहरा समन्वय हुआ। हिन्दू और मुसलमान संगीतज्ञों ने एक दूसरे की शैली अपना कर संगीत की जिस पद्धति का निर्माण किया वह पूर्णतया भारतीय बन गई

वास्तुकला—वास्तुकला के क्षेत्र में भी हमें हिन्दू-मुसलमान कला के समन्वय देखने को मिलते हैं। भवन निर्माताओं ने एक दूसरे की अच्छाइयों को ग्रहण किया और उन्होंने दोनों शैलियों से मिश्रित एक नई शैली को जन्म दिया।

धर्म—धर्म के क्षेत्र में भी पर्याप्त समन्वय हुआ। हिन्दू और मुसलमानों ने एक दूसरे के सन्तों को आदर से देखना प्रारम्भ किया। धार्मिक सहिष्णुता इतनी अधिक बढ़ गई कि बङ्गाल में हमें सत्यपीर की सामूहिक पूजा देखने को मिलती है। जुलाहा कबीर के भक्त हिन्दू और मुसलमान दोनों हुए।

धर्म सुधार का प्रतिफल

इन महात्माओं के उपदेशों से सामाजिक जीवन पर अधिक प्रभाव पड़ा। यद्यपि हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए ही यह प्रयत्न किया गया पर सफल न हो सका। फिर भी पारस्परिक वैमनस्य एवं ईर्ष्या में सन्तोषजनक कमी हुई। धर्माडम्बरों और अन्धविश्वासों को एक झटका लगा। जन साधारण में धार्मिक सहिष्णुता का उदय हुआ। दर्शन और साहित्य में भी परिवर्तन हुआ। कबीर आदि के पदों ने साहित्य को सुन्दर बनाया। आगे चल कर इसी भक्ति सुधार आन्दोलन के फलस्वरूप अन्य सन्तों का उदय हुआ जिन्होंने न केवल समाज में सदाचार और नैतिकता का प्रचार किया वरन् हिन्दी साहित्य के कोष को ऐसे रत्नों से भरा जो युगों तक चमकते रहेंगे। हमारा आशय सूर एवं तुलसी से है। इस आन्दोलन का गहरा प्रभाव मुगल बादशाह अकबर पर पड़ा जिससे प्रेरित होकर उसने सुलहकुल (सर्व शान्ति) का प्रचार किया और हिन्दू-मुस्लिम संघर्षों के अन्त के लिए वातावरण उपस्थित किया। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि भक्ति आन्दोलन से हमें निम्नलिखित लाभ हुये :

(१) देश की प्रादेशिक भाषाओं को प्रोत्साहन मिला क्योंकि वहाँ के सन्तों ने अपनी भाषा में ही पद रचना शुरू कर दी थी। (२) हमारे समाज में बहुत दिनों से हेय समझा जाने वाला वर्ग जो शताब्दियों से निराश पड़ा हुआ था भक्ति आन्दोलन के पश्चात् कुछ उत्साहित हुआ क्योंकि उसने देखा कि अब जुलाहा, चमार, नाई जैसे सन्तों की भी ब्राह्मण-ठाकुर पूजा करने लगे हैं। (३) भक्ति आन्दोलन ने स्त्रियों की दशा में भी कुछ सुधार ला दिया था क्योंकि भक्तों ने स्त्रियों को बुरी दृष्टि से नहीं देखा और वह धर्म में स्त्रियों का समानाधिकार मानते थे। भक्ति आन्दोलन से एक सब से बड़ा लाभ तो यह हुआ कि हिन्दू-समाज में आये हुये अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियां आदि दूर हो गईं।

मिश के राज दरबार में आने के पूर्व वह मुल्तान में कुबैचा के पास था। इल्तुतमिश द्वारा कुबैचा की पराजय के बाद मिनहाज इल्तुतमिश के साथ हो लिया। यद्यपि उसकी गद्य शैली प्रभावपूर्ण नहीं थी फिर भी उसकी पुस्तक में स्पष्टता का आभास मिलता है। इन इतिहासकारों की एक मुख्य विशेषता यह थी कि वह अपने आश्रयदाता के शासन-काल की घटनाओं का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया करते थे। ज़ियाउद्दीन बर्नी मध्यकालीन भारत का एक प्रसिद्ध इतिहासकार था। यह उलमाओं के कट्टर वर्ग से सम्बन्धित था और यही कारण है कि उसने स्थान-स्थान पर सहिष्णुता की नीति अपनाने वाले उदार सुल्तानों की निन्दा की है। जियाउद्दीन बर्नी खिल्जी वंश का समकालीन था और उसे मुहम्मद तुग़लक और फिरोज तुग़लक का आश्रय प्राप्त था। उसने अपनी पुस्तक का नाम अपने अन्तिम आश्रय दाता फिरोज तुग़लक के नाम पर तारीख-ए फिरोज़शाही रखा। इस पुस्तक में मिनहाज सिराज के कार्य को आगे बढ़ाया गया है। फिरोज़ के शासन-काल के प्रारम्भिक वर्षों में ही बर्नी की मृत्यु हो गई। बर्नी ने समकालीन घटनाओं का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। वह अपने कार्य को पूरा करने में कठिन परिश्रम किया करता था। किसी-किसी स्थान पर उसने ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जिसका अर्थ भिन्न भिन्न लगाया गया है। उदाहरणार्थ सुल्तान गयासुद्दीन तुग़लक की मृत्यु का वर्णन करते हुए वह लिखता है कि आसमान से बिजली गिरी और सुल्तान अपने छोटे पुत्र के साथ दब कर मर गया। बर्नी ने स्वयं ही लिखा है कि उसने केवल महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है और अमहत्वपूर्ण अथवा साधारण घटनाओं को छोड़ दिया। अन्य लेखकों की तरह बर्नी ने भी अपने आश्रयदाता की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा की है। इस कार्य के लिए उसकी आलोचना की गई है परन्तु वास्तविकता तो यह है कि मध्यकालीन साहित्यकारों की शैली ही प्रशंसात्मक एवं अतिशयोक्तिपूर्ण थी। अन्य इतिहासकारों की अपेक्षा बर्नी में एक विशेषता थी कि किसी भी सुल्तान की आलोचना करने के साथ साथ वह उसकी अच्छाइयों की प्रशंसा भी किया करता था। तारीख-ए मुबारकशाही का लेखक अफीफ और अमीर खुसरो अपने समय के प्रसिद्ध इतिहासकार थे। अफीफ की शैली सरल और उसमें वाक्‌पटुता का आभास मिलता है। उसका इतिहास मिनहाज उस सिराज, जियाउद्दीन बर्नी तथा अफीफ की रचनाओं का पूरक है।

अमीर खुसरो अपने समय का प्रसिद्ध कवि था और उसकी रचनाओं में हमें तत्कालीन घटनाओं का अच्छा वर्णन मिलता है। उसकी प्रमुख पुस्तकें पांच थीं। अमीर खुसरो केवल कवि ही न था वह कुशल योद्धा भी था। उसने अनेक युद्धों में भाग लिया था और उनका सुन्दर वर्णन किया है। एक बार मंगोलों द्वारा बन्दी बना लिया गया था। उस समय मंगोलों की बर्बरता और उनके बर्बर एवं नृशंस भावनामय आकृतियों का वर्णन करते हुये वह लिखता है कि मंगोलों की आकृति एवं नृशंस कार्यों को देखकर उसने जीवन की आशा त्याग दी थी परन्तु भाग्य ने उसकी रक्षा की और मंगोलों ने उसकी वाक्पटुता चातुर्य से प्रभावित होकर उसे बन्धन मुक्त कर दिया। अमीर खुसरो को महाकवि की उपाधि दी गई है। कवि के साथ साथ वह गद्य लेखक और महान गायक भी था। यद्यपि उसके गद्य लेखों में स्पष्टता एवं सरल प्रभाव का अभाव था।

अध्याय ४५

१२वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक का सांस्कृतिक इतिहास

साहित्य

यह समझना उचित न होगा कि मुस्लिम आक्रमणकारी बर्बर योद्धा मात्र थे। जिनका कार्य लूटमार करना और स्वधर्मा राज्य की स्थापना करना था। मुस्लिम आक्रमणकारियों को बर्बर बतलाने के विरोध में हम यह प्रमाण देते हैं कि लूटमार के बीच उनकी लूट की सर्वश्रेष्ठ वस्तु भारतीय साहित्यिक एवं कलात्मक निधि थी। वस्तुत. मुसलमान शासक और यहाँ तक कि उनके बड़े-बड़े अमीर स्वयं ही साहित्य के विकास मे रुचि रखते थे। साहित्य के दृष्टिकोण से उनका योगदान महत्वपूर्ण रहा है। दिल्ली सुल्तानों के दरबार में देश-विदेश के साहित्यकार आश्रय पाते थे। इनमें महान् इतिहासकार, कवि एव गद्यलेखक भी होते थे। मङ्गोल आक्रमण के प्रभावों का वर्णन करते हुये हम इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि मगोल सैनिकों की बर्बरता एवं नृशसता ने समस्त मध्य एव पश्चिमी एशिया के मुस्लिम राज्यों में त्राहि-त्राहि मचा दी थी। पश्चिमी एशिया में बगदाद मुस्लिम सभ्यता का केन्द्र था परन्तु इस सभ्यता के प्रसिद्ध विद्वान समस्त पश्चिमी एव मध्य एशिया में फैले हुये थे परन्तु मगोलों के आक्रमण ने उन्हें अपना जन्म-स्थान छोड़ कर भागने के लिए बाध्य किया और इस समय मुस्लिम जगत में भारत का मुस्लिम राज्य ही एक ऐसा स्थान था जहाँ सुरक्षा की आशा की जा सकती थी। अत मध्य एशियाई मुस्लिम राज्यों के साहित्यकारों, कवियों एव ऐतिहासिकों ने जीविका एवं सुरक्षा की खोज में भारत की सीमा में प्रवेश किया। भारत में इस समय दास वंश का शासन चल रहा था। दिल्ली सुल्तानों एव उनके अमीरों ने इन साहित्यकारों का स्वागत किया, उन्हें विशेष सुविधायें प्रदान कीं और इस प्रकार साहित्य विकास में अपना सहयोग प्रदान किया। इस युग के साहित्यकार प्राचीन युग के साहित्यकारों की तरह राजनीति से सर्वदा उदासीन नहीं थे। फलस्वरूप मध्य युग में ऐतिहासिक रचनाओं की प्रचुरता देखने को मिलती है। दिल्ली के सुल्तान अपनी राजसभा में दरबारी इतिहासकार को रखते थे। यह इतिहासकार अपने आश्रयदाता के शासन-काल की घटनाओं को क्रमानुसार लिपिबद्ध किया करते थे। इस प्रकार के लेखकों में प्रथम लेखक अलबरूनी था। अलबरूनी संस्कृत का विद्वान था और महमूद के साथ भारत आया था। उसने भारत में संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन किया। उसकी पुस्तक 'तहकीके हिन्द' में तत्कालीन भारत की सामाजिक एव सांस्कृतिक दशा का सजीव चित्रण मिलता है। मिनहाज सिराज नामक प्रसिद्ध इतिहासकार ने दासवंश के काल में तबकात-ए-नासिरी की रचना की थी। मिनहाज सिराज भी मध्य एशिया का रहने वाला था और दिल्ली सुल्तान इ-

कहा जाता था। मुसलमानों के पूजाघरों अथवा मस्जिदों में भी प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती थी। समकालीन इतिहासकारों के वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय व्यक्तिगत एवं राजकीय पाठशालाओं का अभाव न था। इल्तुतमिश ने दिल्ली में एक उच्च विद्यालय की स्थापना की थी और अपने ज्येष्ठ पुत्र नासिरुद्दीन के नाम पर इसका नामकरण किया था। इसी प्रकार मुल्तान में फिरोजी मदरसा के नाम पर एक पाठशाला का निर्माण किया गया था। एक अन्य इतिहासकार के कथनानुसार तुगलक वंश के समय में केवल दिल्ली में ही एक हजार मदरसे थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा एवं साहित्यिक दृष्टिकोण से दिल्ली सल्तनत ने काफी प्रगति कर ली थी।

संस्कृत साहित्य—मुसलमान आक्रमणकारी संस्कृत के प्रति रुचि रखते थे। पहले बताया जा चुका है कि फारसी का प्रसिद्ध विद्वान अल्बरूनी को संस्कृत का अच्छा ज्ञान था और उसने अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद किया था परन्तु संस्कृत अथवा भारतीय भाषा में लिखे गये ग्रन्थों का अनुवाद कार्य अलबरूनी तक ही सीमित था। उसके बाद फिरोज तुगलक के शासन-काल तक हमें किसी भी ग्रन्थ का अनुवादित होने का वर्णन नहीं मिलता। फिरोज तुगलक को नगरकोट के आक्रमण में एक संस्कृत पुस्तकालय प्राप्त हुआ था। सुल्तान ने मौलाना इजुद्दीन खलीद खानी को दर्शन शास्त्र के ग्रन्थों का अनुवाद करने की आज्ञा दी थी। अनुवादित ग्रन्थ का नाम दलायल-ए-फिरोजशाही रक्खा गया था। इसी प्रकार सिकन्दर लोदी के शासन काल में एक आयुर्वेदिक ग्रन्थ का अनुवाद किया गया था।

इस युग में धार्मिक एवं दार्शनिक साहित्य पर कई सुप्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की गई थी जिनके लेखक भारतवासी थे। मुस्लिम आक्रमणकारियों की साहित्यिक रुचि को देख कर यह समझ लेना अनुचित होगा कि भारतीय जनता में अथवा शासकों में सांस्कृतिक विकास के प्रति उदासीनता की भावना आ गई थी। मुस्लिम आक्रमणों ने कुछ समय के लिए भारतीय साहित्याकाश को मलिन कर दिया था परन्तु भारत में अनेक ऐसे प्रदेश थे जहाँ इस्लाम धर्म एवं सभ्यता का प्रवेश नहीं हुआ था अथवा उनका प्रभाव कम था। ऐसे ही स्थानों में संस्कृत एवं अन्य भाषा साहित्य का विकास हुआ। सम्पूर्ण दक्षिण प्रदेश में मुसलमानी प्रभाव कम था। इसके अतिरिक्त मिथिला का प्रदेश मुसलमानों के आक्रमण के फलस्वरूप होने वाले विनाश से बच गया था। अतः इन प्रदेशों में भारतीय साहित्य का विकास सम्भव था। पहले बताया जा चुका है कि स्वामी रामानुजाचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर एक भाष्य की रचना की थी। लगभग १३६० ई० में पार्थ सारथि मिश्र ने कर्म मीमांसा पर अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें शास्त्रदीपिका सब से लोकप्रिय थी। योग वैशेषिक तथा न्याय दर्शन का प्रतिपादन करने वाले कई ग्रन्थ इसी युग की देन हैं। १४वीं शताब्दी में ही धर्मशास्त्र के महान विद्वान् देवण्ण ने अपनी रचनायें प्रस्तुत की थीं। दार्शनिक एवं भक्ति भावना साहित्य का प्रचार भक्ति सम्प्रदाय के आचार्यों ने किया था। गीत काव्य का उत्कृष्टतम उदाहरण गीतगोविन्द इसी युग की रचना है। इसके रचयिता जयदेव को भारतीय साहित्यकारों

तथापि उसकी शैली अनोखे ढग की थी और यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गद्य काव्य लिखने में भी वह दक्ष था। उस समय के अन्य कवियों में मीरहसन देहलवी तथा बदरुद्दीन के नाम उल्लेखनीय हैं। मीर हसन देहलवी अमीर खुसरो का समकालीन था। उसकी कविताओं में सगीत का पुट अधिक था। मुहम्मद तुग़लक के शासन-काल में उसने एक प्रसिद्ध पुस्तक 'दीवान' लिखी थी जिसमे उस समय के प्रसिद्ध शेख निज़ामुद्दीन औलिया की प्रशसा की गई थी। बदरुद्दीन बदर-ए-चच के नाम से भी प्रसिद्ध था। उसे भी मुहम्मद तुग़लक के राजदरबार मे आश्रय मिला था।

पत्र लेखकों में ऐनुलमुल्क मुल्तानी का नाम उल्लेखनीय है। उसने अलाउद्दीन, मुहम्मद तुग़लक तथा फिरोज तुग़लक के शासन-काल में उच्च एव उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर काम किया था। वस्तुत. वह अलाउद्दीन के परामर्शदाताओं में था और कहा जाता है कि उसी के प्रभाव के कारण सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की स्वप्नमयी महत्वाकांक्षा शान्त हो सकी थी। वह उच्च कोटि का विद्वान् एव साहित्यकार था। शम्स-ए-सिराज अफीफ उसके सम्बन्ध में लिखता है कि वह बहुत चतुर एव योग्यतासम्पन्न व्यक्ति था। उसने मुहम्मद तुगलक तथा फिरोज तुगलक के शासन-काल मे उच्च कोटि के ग्रन्थों की रचना की थी, जिनमें एक ग्रन्थ ऐन-उल-मुल्की विख्यात एवं सर्वमान्य पुस्तक थी। यह पत्रों के रूप में लिखी गई थी और इसमें उस समय की राजनीतिक, सामाजिक एव साहित्यिक दशा का बहुत सुन्दर वर्णन मिलता है।

बर्नी ने कई सुल्तानों के राजदरबार में आश्रय पाने वाले कवियों, धार्मिक विशेषज्ञों, वकीलो एव इतिहासकारों के नाम की एक लम्बी सूची दी है। इसमें नूरुद्दीन मुहम्मद आनोशाह, हसन निजामी, फरीदउद्दीन मुबारक शाह आदि अनेक साहित्यकारों के नाम दिये गये हैं। इन व्यक्तियो ने राजनीति एव धर्म के प्रत्येक अगों पर पुस्तकें लिखी था। उस समय के कवि एवं लेखक में विशेष अन्तर न था। इतिहासकारों के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। इतिहासकार प्राय धार्मिक समुदाय से सम्बन्धित होता था और इस प्रकार धार्मिक समस्याओं के विशेषज्ञों में उसकी गणना भी होती थी। बलबन के राजदरबार में वैद्य एव ज्योतिषी भी थे। औषधि विशेषज्ञों में बदरुद्दीन दमशकी और हुसमुद्दीन मारिक के नाम उल्लेखनीय हैं। हमीदुद्दीन मुतरिज कलाकार होने के साथ-साथ गणित एव ज्योतिष विद्या का पण्डित था। कवियों में अमीर खुसरो के बाद अमीर हसन सजरी का नाम उल्लेखनीय है। इसी प्रकार मुहम्मद तुगलक के राजदरबार में हुसैनी, तलरखीस आदि अनेक साहित्यकार थे। मुहम्मद तुगलक अपने दरबारी साहित्यकारों के साथ विचारविमर्श किया करता था। फिरोज तुगलक के शासन-काल में भी राज्य की ओर से साहित्यकारों को आश्रय प्रदान किया जाता था। इनमें मौलाना ख्वाजगी, एहमद थानेसरी तथा काजी अब्दुल मुक्तदिर शनीही के नाम उल्लेखनीय हैं। काजी मुक्तदिर फारसी के साथ-साथ अरबी का भी बहुत बड़ा विद्वान् था। उसकी अरबी की रचनाओं को फारसी रचनाओं की अपेक्षा उत्कृष्ट बताया जाता है। उसकी रचनाओं में सर्वोत्कृष्ट 'असरार-उल-अखयाह' बताया जाता है।

साहित्य की दृष्टि से पाठशालाओं का काफी महत्व होता था। इन्हें 'मदरसा'

नुसरत शाह ने महाभारत का अनुवाद बंगला में कराया। विद्यापति ने इस सुल्तान तथा गयासुद्दीन की बहुत प्रशंसा की है। कृत्तिवास द्वारा किया गया रामायण का बँगला अनुवाद बहुत ही लोकप्रिय सिद्ध हुआ था। इस विद्वान को गौड़ के शासक के यहाँ आश्रय मिला था। गजाधर वसु ने भागवत का अनुवाद बँगला में किया था। विजय-नगर की राजसभा द्वारा तेलगू साहित्य के विकास के लिए काफी प्रोत्साहन दिया गया था। इस युग में मराठी, तामिल तथा कन्नड़ी भाषाओं में भी रचनाएँ की गईं। नामदेव की अधिकांश रचनाएँ मराठी में हैं जो उनके 'ग्रन्थ' में सुरक्षित हैं।

विजयनगर तथा बहमनी राज्य भी साहित्यिक विकास के केन्द्र थे जिनका वर्णन उचित स्थान पर किया जायगा।

कला

यद्यपि मुस्लिम विजेताओं ने बर्बरतापूर्ण कार्य किये थे फिर भी यह कहना उचित न होगा कि वे नितांत बर्बर थे। साहित्य एवं कला के प्रति उनका अगाध प्रेम था। यह सत्य है कि अरबवासी भवन निर्माण कला में बहुत पिछड़े हुए थे और उन्होंने विदेशी कलाओं के आधार पर अपनी कला का विकास किया था परन्तु भारत में आने वाले मुस्लिम आक्रमणकारियों में अरब ही एक मात्र विदेशी न थे। उनमें तुर्क आदि अन्य जातियाँ भी सम्मिलित थीं। भवन निर्माण कला में तुर्कों का दृष्टिकोण सर्वोच्च कलात्मक आदर्शों के अनुकूल था। स्थापत्य की दृष्टि से वह प्रतिभाशाली थे। कला एवं संस्कृति में उनके अपने आदर्श थे, उनमें नवीनता थी और समय एवं स्थानानुकूल शैली में परिवर्तन करने की क्षमता भी थी। फर्ग्यूसन आदि अनेक योरपीय इतिहासकारों ने भारतीय एवं मुस्लिम शैलियों के समन्वय पर विचार करते हुए यह मत प्रगट किया है कि भारतीय मुस्लिम राज्य के भवन एवं अन्य कलात्मक कार्यों में मुस्लिम कला की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। इस बात का निर्णय आगे किया जायगा। यहाँ इतना बता देना आवश्यक है कि तुर्क जाति की कलात्मक अभिरुचि का वर्णन करते हुये फर्ग्यूसन का कथन है कि भारत में इन लोगों के प्रारम्भिक कार्यों में स्थापत्य कला सम्बन्धित कार्य ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे। वास्तविकता तो यह थी कि उन्होंने सैनिक जाति के रूप में ही भारतवर्ष में प्रवेश किया था और उनका मुख्य उद्देश्य भारत की अपार सम्पत्ति प अधिकार करना और साम्राज्य की स्थापना करना था। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक ही था कि उनकी सेना में कलाकारों का अभाव हो। परन्तु अपने उच्च कलात्मक आदर्शों एवं प्रवृत्तियों के कारण उन्होंने भारतीय कलाकारों को तुर्क शैली पर आधारित कला का सृजन करने के लिए विवश किया।

दूसरी ओर भारतीय शासक एवं प्रजा कला विकास के प्रति उदासीन थी। इसके विपरीत मुसलमानों की विजय के पूर्व भारतीय कला का विकास हो चुका था। उन्होंने अपने मन्दिरों एवं विशाल मठों की स्थापना की थी। इस कलात्मक विकास में भारतवासियों की अपने धर्म के प्रति निष्ठा एवं दानशीलता की प्रवृत्तियों ने महत्व-पूर्ण सहयोग दिया था। मन्दिरों में ही उनकी विशाल सम्पत्ति थी और मुस्लिम आक्रमणकारियों ने सर्वप्रथम इसी ओर ध्यान दिया था। इन मन्दिरों में हिन्दू मन्दिर

में बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। यह पुस्तक काफी लोकप्रिय थी। इस पुस्तक में श्री कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का अति सुन्दर वर्णन किया गया है। शब्दचयन, पद-ध्वनि तथा माधुर्य की दृष्टि से यह पुस्तक अद्वितीय है। जयसिंह सूरी कृत हमीर मद मर्दन, केरल नरेश रविवर्मन द्वारा रचित प्रद्युम्नाभ्युदय, विद्यानाथ कृत प्रद्युम्नाभ्युदयवामन भट्ट बाण कृत पार्वती परिणय तथा गङ्गाधर कृत गङ्गादास प्रताप विलास इस काल के कुछ सुप्रसिद्ध नाटक थे। स्मृति तथा व्याकरण साहित्य की अभिवृद्धि मिथिला तथा बङ्गाल प्रदेशों मे हुई थी। बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में 'दाय भाग' के सुप्रसिद्ध रचयिता जीमूतवाहन वर्तमान थे। सुप्रसिद्ध खगोल शास्त्रवेत्ता भास्कराचार्य का जन्म १११४ ई० में हुआ था। बारहवीं शताब्दी के मध्य में कल्हण द्वारा राजतरंगिणी की रचना की गई थी। राजतरंगिणी ऐतिहासिक ग्रन्थ है और इसमें काश्मीर के राजवंश का वर्णन किया गया है। इस युग में जैनधर्मावलम्बियों ने धार्मिक एवं लौकिक साहित्य का सृजन किया। इन लेखकों में कुछ प्रसिद्ध नाम ये हैं—पम्पा रामायण का रचयिता नागचन्द्र, नाट्य लेखक हस्तिमल्ल, आचार शास्त्र के अनेक ग्रन्थों एवं टीकाओं के रचयिता असधर इत्यादि।

भाषा साहित्य—हिन्दू तथा मुसलमान धर्मों के समन्वय पर विचार करते समय यह बताया जा चुका है कि दो विभिन्न भाषा-भाषियों के पारस्परिक मिलन के फलस्वरूप एक नवीन भाषा का जन्म हुआ था। यह थी उर्दू भाषा। इसी प्रकार भारत की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं को प्रोत्साहन मिला था। सूफी सम्प्रदाय ने बोल-चाल की उर्दू भाषा में अपने मत का प्रचार किया और भक्ति आन्दोलन के विभिन्न कार्यकर्ताओं ने हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं का सहारा लिया। इस प्रकार देशी भाषा एवं साहित्य को प्रगति का अवसर मिला। स्वामी रामानुज एवं रामानन्द ने हिन्दी भाषा में प्रचार किया था। हिन्दी के प्रारम्भिक काल के कवियों में चन्द बरदाई तथा जगनायक की रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। चन्द बरदाई को हिन्दी का सर्वप्रथम कवि बताया जाता है। उसने पृथ्वीराज रासो नामक ग्रन्थ की रचना की थी, जिसमें दिल्ली के चौहान सम्राट पृथ्वीराज के युद्धों एवं प्रणय लीलाओं का वर्णन किया गया है। जगनायक भी चन्द बरदाई का समकालीन था। उसने आल्हा खण्ड नामक काव्य ग्रन्थ में आल्हा और ऊदल के प्रेम एवं युद्ध की घटनाओं का वर्णन ओजपूर्ण भाषा में किया है। शारंगधर ने 'हम्मीर-रासो' और 'हम्मीर काव्य' नामक ग्रन्थों की रचना की। फारसी का प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि था। उसने खालिक बारी नामक एक फारसी हिन्दी कोष की रचना की थी। इस युग के अन्य कवि नामदेव, रामानन्द तथा कबीर थे। इन्होंने अपनी रचनाएँ ब्रजभाषा में कीं जो बड़ी ही लोकप्रिय सिद्ध हुई। विद्यापति तथा मीराबाई हिन्दी साहित्य के अमर रत्न माने जाते हैं। विद्यापति को मैथिल कोकिल कहा जाता है। वे शिवसिंह नामक एक हिन्दू सामन्त के दरबारी कवि थे। बंगाल के मुस्लिम शासकों ने रामायण तथा महाभारत का संस्कृत से बङ्गाली में अनुवाद करने के लिए विद्वानों की नियुक्ति की।

ये शासक बँगला अच्छी तरह से समझ और बोल सकते थे। गौड़ के सुल्तान

शक्ति थी जिसके आधार पर वह मुस्लिम कला को आत्मसात कर सकती थी। सर जान मार्शल ने यह मत प्रकट किया है कि हिन्दू कला ने मुसलमान आक्रमणकारियों को अत्यधिक प्रभावित किया था। उन्होंने अपनी कला को ऐसा रूप देने का सफल प्रयत्न किया था जो हिन्दू कला के अन्तर्गत निर्मित मन्दिरों को मस्जिद के रूप में परिणत कर सकते थे। उनके मतानुसार दोनों कलाओं में कुछ समानता भी थी। हिंदू मन्दिरों में और मुस्लिम मस्जिदों में एक खुला आँगन होता था और सम्भवतः ऐसे ही भवनों को मस्जिद के रूप में परिणत कर दिया गया था। इसी प्रकार दोनों कलाओं में अलंकारिक प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं। यह सत्य है कि इस्लाम धर्म अपने मूल तत्व में सादगी एवं पवित्रता का प्रतिपादन करता है परन्तु कला के क्षेत्र में और विशेषतया बाह्य देशों के संसर्ग में आने पर मुस्लिम कला में अलंकारिक प्रवृत्तियों का समावेश हो गया था। इनका कलात्मक अलंकार भारतीय कला के अलंकृत रूप से अपेक्षाकृत निम्न श्रेणी का था और यही कारण था कि भारतीय कला के सम्मुख उन्होंने स्वेच्छापूर्वक अपना सिर झुका लिया। कला प्रेमी के रूप में यह एक महान आदर्श था। कट्टर धार्मिक विचारों के होते हुए भी उन्होंने अन्य धर्मों के उच्च कलात्मक आदर्शों को अपना लिया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू कला का प्रभाव काफी था और हिन्दू एवं मुस्लिम कलाओं के पारस्परिक समन्वय से उत्पन्न तथा-कथित सारसानी शैली में हिन्दू शैली के प्रभाव की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। यहाँ पर दोनों कलाओं के समन्वय के कुछ उदाहरण देना अनुचित न होगा। एक अन्य लेखक के शब्दों में 'इस्लाम का एकेश्वरवादी कट्टरता की अभिव्यंजना सपाट गुम्बजों की सरलता, नुकीली मेहराबों की सरलता, पताका मकता और मीनारों के पतलेपन में हुई इसके विपरीत हिन्दुओं की बहुदेववादी भावनाओं ने रूप की विभिन्नता तथा जटिलता, उभरे हुए काम द्वारा प्रत्येक भाग की सजावट और मानव प्रतिमाओं द्वारा अपने को अभिव्यक्त किया। • विजेता उन कला परम्पराओं के प्रभाव से न बच सके जो उनके चारों ओर प्रचलित थीं। सरल इस्लामी पूर्व हिन्दू अलंकरण से प्रभावित होने लगा। गुम्बज की सरल कर्कशता का स्थान कलश ने ले लिया और उनके सिरे पर धातु के जो फल-पत्तियों के गुच्छे बने रहते थे उनकी जगह पत्थर में खुदे चित्रों का प्रयोग होने लगा। इसके अतिरिक्त मुसलमानों ने हिन्दुओं से भवनों तथा उनके भागों का उचित अनुपात से बनाने की कला सीख ली। मुस्लिम शैली में सुडौलपन ([illegible]) का जो अभाव था वह भी दूर हो गया और ईसा खाँ तथा हुमायूँ के मकबरे में हमें मुस्लिम कला आदर्श तथा हिन्दू प्रतिपादन पद्धति का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है।"

कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का प्रथम सुल्तान था। उसका राज्य चारों ओर से शत्रु द्वारा घिरा हुआ था। स्वयं सुल्तान का शासनकाल भी थोड़ा ही था। कुछ ही वर्षों में उसे मृत्यु ने आ घेरा था। फिर भी हम देखते हैं कि कुतुबुद्दीन ऐबक कला प्रेमी था और राजनीतिक उलझनों के रहते पर भी वह कलात्मक विकास के

ही नहीं वरन् जैन एवं बौद्ध मन्दिर और मठ भी सम्मिलित थे। इन मन्दिरों का सौन्दर्य इतना आकर्षक था कि महमूद गजनवी जैसे बर्बर एवं ध्वंसकारी कट्टर मुसलमान ने भी इनके सौन्दर्य की सराहना की थी। उसने इन विशाल मन्दिरों को भूमिसात कर दिया तो वह धार्मिक अन्ध विश्वास एवं राजनैतिक विचारों पर किया गया था। वास्तविकता तो यह थी कि महमूद गजनवी से लेकर तैमूर तक जितने भी आक्रमणकारियों ने भारत में प्रवेश किया और राज्य स्थापित किया था उन्होंने बड़ी सावधानी से सुविख्यात हिंदू शिल्पियों की रक्षा की थी। महमूद गजनवी अनेक भारतीय शिल्पियों को गज़नी ले गया जिन्होंने गज़नी में एक भव्य मस्जिद का निर्माण किया। यह मस्जिद हिन्दू कलाकारों की कला का उज्ज्वल उदाहरण है। मुस्लिम आक्रमणकारियों के नृशंस कार्यों से भयभीत भारतीय कलाकारों ने अपने आपको अपने नये स्वामियों की धार्मिक रुचि के अनुकूल बनाने का सफल प्रयत्न किया और यही कारण है कि दिल्ली सुल्तानों द्वारा बनवाये गये भवनों में "कठोर अनुशासनपूर्ण धार्मिक विचारों के सादृश्य रखने वाली सरलता के दर्शन होते हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुस्लिम आक्रमणकारियों के पास स्थापत्य कला सम्बन्धित स्वतन्त्र विचार थे। परन्तु उन्हें कार्यान्वित करने के लिए उनके निजी कलाकारों का अभाव था। दूसरी ओर भारतीय शिल्पियों में भी स्वतन्त्र विचार एवं उच्च कलात्मक प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं। परन्तु उन्हें कार्यान्वित करने के लिये वह स्वतन्त्र न थे। फलस्वरूप दोनों ही एक दूसरे के प्रति आकर्षित हुये और दोनों कलाओं का सुन्दर समन्वय हुआ।

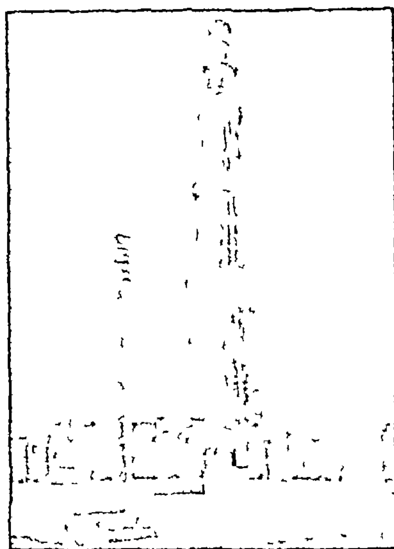
अब प्रश्न यह उठता है कि इस नवीन शैली में जिसका जन्म परिस्थितियों की देन स्वरूप हुआ था हिन्दू कला की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है अथवा मुस्लिम कला की अथवा यह दोनों ही एक दूसरे से प्रभावित हुईं और एक नवीन शैली का जन्म हुआ। इस विषय पर योरपीय इतिहासकारों में मतभेद है। फर्गूसन का कथन है कि भारतीय मुस्लिम राज्य की कला में मुसलमान कला के प्रभाव की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। इसके विपरीत हैवेल महोदय का कथन है कि मुसलमान काल की भारतीय कला एक नाम के अतिरिक्त अन्य सभी गुणों में हिन्दू कला को प्रदर्शित करती है। उनका यह विचार भले ही मान्य न हो परन्तु इतना अवश्य है कि भारतीय कला का प्रभाव अधिक था। इसका कारण यह था कि भारतीय कलाकारों में समय एवं परिस्थित्यानुकूल आवश्यक परिवर्तन करने की क्षमता थी यही कारण था कि उन्होंने एक ऐसी शैली को अपना लिया जो उनके नये स्वामियों की धार्मिक रुचि एवं महत्वाकांक्षाओं के अनुकूल थी। इतने कम समय में और विशेषतः ऐसी परिस्थितियों में—जब विजित एवं विजेताओं के बीच एक गहरी खाई बन गई थी—मुस्लिम कला में भारतीय शैली का प्रभाव उसकी महानता एवं श्रेष्ठता प्रतिपादन करता है। हैवेल के कथनानुसार भारतीय शिल्पियों ने कभी भी विदेशी विचारों को नहीं अपनाया। इसके विपरीत इस काल की कला के समस्त मूल-भूत विचार विशुद्ध भारतीय हैं। हमारे पास अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिन से यह सिद्ध हो जायगा कि हिन्दू कला ने अब भी अपनी

स्थान देना अनुचित नहीं तो उचित भी न होगा। कहा जा सकता है कि अलाउद्दीन ने अनेक दुर्ग, तालाब एव राजकीय भवनों का निर्माण कराया था जो सुदृढ़ता में उस समय की किसी भी इमारत से कम न थे। यह भी कहा जा सकता है कि उस ने राय पिथौरा के समीप सीरी नामक दुर्ग का निर्माण कराया था परन्तु वास्तविकता तो यह थी कि भारत मे समन्वय कला का प्रथम चरण समाप्त हो रहा था क्योंकि सौन्दर्य का स्थान सरलता ने ले लिया था। हाँ एक अन्य दृष्टिकोण से अलाउद्दीन को कला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान दिया जा सकता है। उसने भारत में विशाल राज्य की स्थापना की थी और देश में शान्ति एव सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध किया था। फलस्वरूप शान्तिपूर्ण स्थिति म आगामी कला का विकास हो सकता था। इस समय तक कला के क्षेत्र में विशेष उन्नति न हुई थी जिसका उत्तरदायित्व आक्रमणकारी मगोलो और साथ ही साथ दिल्ली सुल्तान के विद्रोही एव प्रतिक्रियावादी सामन्तो पर था। इन दो कारणों से दिल्ली सल्तनत में अशान्ति एव अराजकता का भय बना रहता था। अत दिल्ली सुल्तानो के लिए यह सम्भव न था कि वह कला-विकास की ओर विशेष समय देते। यही कारण है कि कला के क्षेत्र में जो विकास हुआ उसके लिए प्रारम्भिक दिल्ली सुल्तानो को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है अन्यथा कुछ एक इमारतो को छोड़ कर अन्य इमारतें महत्वपूर्ण न थीं। अलाउद्दीन की बनवाई हुई प्रसिद्ध इमारतें इस प्रकार थीं—अलाई दरवाजा जिसे सुल्तान की अनन्य कृति और यहाँ तक कि "इस्लामी स्थापत्य का सर्वश्रेष्ठ सरक्षित रत्न" बताया गया है। हजार सितून महल जिस का उल्लेख करते हुए बर्नी ने कहा था कि इसकी नींव मे एक हजार मगोलों के सिर दफनाये गये थे। हौज़ अलाई और होज खास उसकी अन्य इमारतें थीं।

ततश्चात् भारत मे इस्लामी कला का दूसरा चरण आरम्भ होता है जिसमें तुगलको ने तुगलकाबाद तथा हिसार फिरोज़ा का निर्माण कराया था। तुग़लक सुल्तानों के शासन काल मे विशेषत. गयासुद्दीन और फिरोज़ तुगलक के समय मे कला के क्षेत्र मे कट्टरता आ गई थी। यही कारण है कि हमे इस काल की कला मे सरलता, कर्कशता एव निराशा का आभास होता है। मुहम्मद तुगलक उदार एव सहिष्णु प्रकृति का सुल्तान था परन्तु दुर्भाग्यवश उसे आन्तरिक विद्रोहों एव रहस्यमय योजनाओं के कारण समय नहीं मिला। इस समय की शैली का सर्वश्रेष्ठ नमूना तुगलक शाह का मकबरा है। तुगलकाबाद का नगर अपनी सुदृढ़ता एव विशालता के लिए प्रसिद्ध है। आज भी इस नगर के खण्डहरों मे हमे इस बात का आभास होता है। फिरोज़ तुगलक कलाप्रेमी एव महान् निर्माता था। उसने हिसार फिरोज़ा, फतेहाबाद एव जौनपुर आदि कई नगरों का निर्माण कराया था। इसके अतिरिक्त उसने अनेक महलों, मस्जिदों एव उद्यानों का निर्माण कराया। उसकी कलाप्रियता का आभास इस बात से मिलता है कि उसने दीवान-ए-विज़ारत नामक एक विभाग खोला जिसमें भवन एव नगर निर्माण की योजनाओं पर विचार विमर्श किया जाता था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि फिरोज़ तुगलक की कला यान्त्रिक तर्क एव समुचित प्रबन्ध पर आधारित थी।

तुगलक वंश के पतन के कारण दिल्ली सल्तनत मे अराजकता का बोलबाला था। अनेक स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना हो चुकी थी। केन्द्रीय सत्ता का प्रभाव शून्य था। भाग्य-

प्रति जागरूक था। यह सत्य है कि उसे अपनी कलात्मक रुचि में धर्म का प्रोत्साहन मिला था। कुतुबमीनार का निर्माण कुतुबुद्दीन नामक संत की स्मृति में किया गया था। कलात्मक दृष्टिकोण से उसका बहुत अधिक महत्व है। इसकी ऊँचाई २४२ फीट है और विदेशी इतिहासकारों ने इसके सरल सौन्दर्य की भूरि भूरि प्रशंसा की है। फर्गूसन ने इस मीनार में ग्यारह नोकदार महराबों के पर्दे की बहुत प्रशंसा की है। शीघ्र ही मृत्यु हो जाने के कारण कुतुबुद्दीन ऐबक अपने काम को पूरा न कर सका। उसके उत्तराधिकारी इल्तुतमिश ने उसके कार्य को पूरा किया और कुतुब मीनार को अन्तिम रूप दे दिया। समय के थपेड़े खाती हुई



चित्र ३१ कुतुबमीनार

यह मीनार आज भी गुलाम वंश के गौरव का प्रतीक है। तुगलक वंश के समय में इसका ऊपरी भाग टूट गया था। परन्तु फिरोज तुगलक ने पुन. इसकी मरम्मत करा दी। इ ी प्रकार सिकन्दर लोदी ने भी इसकी मरम्मत कराई थी।

कुतुबुद्दीन ने अजमेर में एक मस्जिद का निर्माण कराया जिसे अढ़ाई दिन का झोंपड़ा कहा जाता है। इसी प्रकार दिल्ली में एक मस्जिद बनवाई गई थी। उसके बाद शम्सुद्दीन इल्तुतमिश ने भी अनेक इमारतें बनवाई थीं जिनमें शम्सी ईदगाह तथा हौजिये शम्सी आदि उल्लेखनीय है। इल्तुतमिश के मृत्योपरान्त काल में कला का विकास रुक गया था। इल्तुतमिश के उत्तराधिकारी विलासमय जीवन व्यतीत करते रहे। बलबन को निरन्तर मंगोल आक्रमणों का सामना करना पड़ता था, फिर भी उसने कुछ एक दुर्गों का निर्माण कराया था परन्तु यह कलात्मक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण न थे।

दास वंश की कला सरल एवं धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत थी। हिन्दू-मुस्लिम कलात्मक समन्वय का यह प्रथम चरण था और इसमें मुसलमानी विचारों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। कुछ लोगों ने इसे हिन्दू कला का परिवर्तित रूप बताने का प्रयत्न किया है परन्तु यह सत्य नहीं है। इस समय की कला की मुख्य विशेषता थी धर्म प्रधानता एवं सरल सौन्दर्य जिसके कारण दास वंश के सुल्तानों विशेषतः कुतुबुद्दीन ऐबक को कलात्मक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

तत्पश्चात् खिलजी वंश का पदार्पण हुआ और अलाउद्दीन खिलजी के समान कठोर सुल्तान भी कला के विकास में रुचि रखते थे। परन्तु कला के क्षेत्र में उसे

का निर्माण कराया जिसे फर्ग्यूसन ने दक्षिण भारत की हिन्दू शैली का सुन्दरतम् नमूना बताया है। विजयनगर राज्य को अपने पड़ोसी बहमनी राज्य से निरन्तर युद्ध करने पड़ते थे। अन्त में विजयनगर के पतनोपरान्त मुसलमान विजेताओं ने उनके भवनों एवं मन्दिरों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया, फिर भी जो अवशेष बच गये थे वह आज भी उस समय की सर्वोच्च कला का प्रतिपादन करते है। मेवाड़ के राजा कुम्भा (१४३३-१४६० ई०) ने चित्तौड़ में मालवा जीतने के उपलक्ष में एक विजय स्तम्भ बनवाया था।

बहमनी राज्य में भी कला को बहुत प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था। यहाँ के शासक कलाप्रेमी थे और उन्होंने नगरो, महलों एवं मस्जिदों का निर्माण कराया था। बीजापुर की स्थापत्य शैली सुन्दरतम् थी। अहमदनगर तथा बीदर नगरो का निर्माण इसी काल मे हुआ था। गुलबर्गा तथा बीदर की मस्जिदें दक्षिण की शिल्प कला का गौरवशाली नमूना है। गुलबर्गा की जामे मस्जिदें, दौलताबाद का चाँद मीनार भी दर्शनीय उदाहरण है। उन्होंने ग्वालिगढ़, नरनाला, परेन्दा माहुर एवं नाल दुर्ग का निर्माण कराया था। बीजापुर की शैली मे तुर्की प्रभाव अधिक है और जैसा कि पहले बताया गया है बीदर ने ईरानी शैली का अनुकरण किया था। गुलबर्गा के मकबरा को दो भागो में बाँटा गया है। एक भाग मे अलाउद्दीन हसन बहमन शाह, मुहम्मद शाह द्वितीय आदि के मकबरे है और दूसरे भाग मे मुजाहिद शाह, दाऊद शाह, गयासुद्दीन और फिरोज़ शाह आदि के मकबरे आते है, जो हफ्त गुम्बद के नाम से प्रसिद्ध थे। इसी प्रकार बीजापुर का गोल गुम्बद, बीदर की सोला मस्जिद तथा अहमद शाह वली का मकबरा दर्शनीय है।

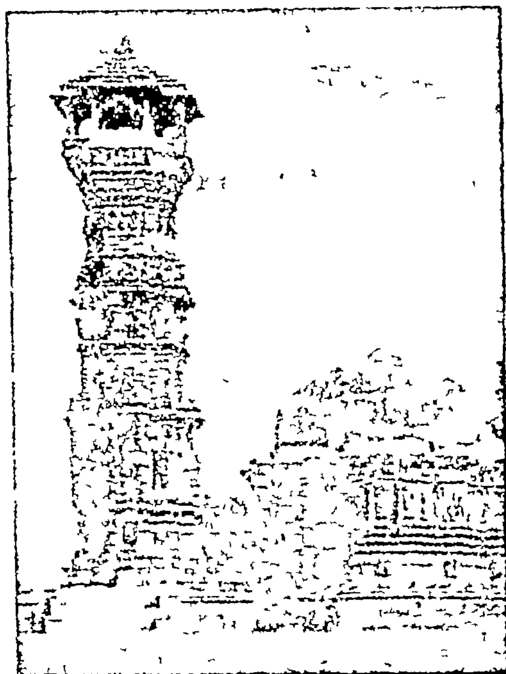
गुजरात में हिन्दू एवं जैन शैली को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। यहाँ के मुसलमान शासकों ने हिन्दू शिल्पियों को निजी शैली का प्रयोग करने की स्वतन्त्रता दे दी थी। मुहाफिज खाँ की मस्जिद अत्यन्त सुन्दर इमारत थी। अहमदाबाद, खम्भात तथा चम्पानेर की मस्जिदें एवं मकबरे अपने सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त कुएँ आदि सिंचाई के साधनों का निर्माण कराया गया था। गुजरात की सम्पूर्ण कला हिन्दू मुस्लिम कलाओं के पारस्परिक समन्वय का सुन्दर उदाहरण है। यद्यपि यहाँ के शासक मुस्लिम धर्मावलम्बी थे, परन्तु कला के क्षेत्र में उनकी उदारता एवं सहिष्णुता प्रशंसनीय है। जैसा कि ऊपर बताया गया है उन्होंने अपने राज्य के हिन्दू शिल्पियों को कला के क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी थी।

दूसरी ओर हिन्दू शिल्पियों ने अपने आपको परिस्थितिवश परिवर्तित रूप दे दिया और अपने नये स्वामियों की अभिरुचि का ध्यान रखते हुए मुस्लिम कला के कुछ आदर्शों को अपना लिया। इस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम शैली का सुन्दरतम समन्वय दिखाई देता है।

मालवा में मुस्लिम शैली का अनुसरण किया गया था। जामा-ए-मस्जिद, हिंडोला महल, जहाज महल, हुशंग शाह का मकबरा और बाज बहादुर एवं रूपमती के महल। यहाँ की सुन्दरतम शिल्प कृतियाँ हैं।

वश कला के क्षेत्र में इसका प्रभाव अच्छा हुआ। प्रादेशिक राज्यों के शासकों ने कलात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया। परन्तु स्थान स्थान पर कलात्मक प्रवृत्तियों में भिन्नता थी। मुस्लिम विजेताओं ने कुछ राज्यों में अपनी ही कला का अनुसरण किया और अन्य राज्यों में स्थानीय शैली को प्रोत्साहन दिया। प्रादेशिक राज्यों में गुजरात, बंगाल और काश्मीर में स्थानीय शैलियों का प्रभाव अधिक था। इसके विपरीत विजयनगर के हिन्दू राज्य को छोड़ कर दक्षिण के सम्पूर्ण मुस्लिम राज्य में दिल्ली की इस्लामी शैली का अनुसरण किया गया। उत्तर भारत में जौनपुर राज्य में भी इसी शैली का अनुसरण किया गया था। बीदर आदि कुछ एक राज्यों में विदेशी शैली को अपना लिया गया। प्रादेशिक राज्यों की स्थापना शैली में हिन्दू कला के आदर्शों का पुट अधिक दिखाई पड़ता है। विजयनगर के साथ साथ इन राज्यों ने हिन्दू कला के सुन्दरतम आदर्शों को प्रोत्साहन दिया और उसे गौरवमय बनाने का अथक परिश्रम कला के इतिहास में गौरवपूर्ण कहा जा सकता है।

प्रादेशिक राज्यों में दक्षिण में बहमनी राज्य तथा विजयनगर राज्य ने कला के क्षेत्र में काफी विकास किया। स्थापत्य कला में गुजरात की शैली सुन्दरतम् शैली बताई जाती है। मालवा राज्य में भी हम सुन्दर कलाकृतियों का वर्णन पढ़ते हैं। इसी प्रकार उत्तरी भारत में जौनपुर, बंगाल, काश्मीर आदि राज्य उल्लेखनीय हैं। फारस के राजदूत अब्दुर्रज्जाक और फर्ग्यूसन ने विजयनगर की स्थापत्य कला की बहुत प्रशंसा की है। विजयनगर के शासक महान् कला प्रेमी थे। उन्होंने अनेक मन्दिरों और सार्वजनिक कार्यालयों का निर्माण कराया, राज भवन, उद्यान एवं जलाशयों के निर्माण में उन्होंने अपनी कला-प्रियता का परिचय दिया है। हिन्दू-कला के विकास में विजय नगर राज्य का विशेष योग दान है। उनके बनवाये हुए राजप्रासादों में कमलप्रासाद सर्वश्रेष्ठ था। कृष्णदेवराय ने विट्ठल मंदिर


चित्र ३२ चित्तौड़ का विजय-स्तम्भ

एशियाई जातियों के प्रवाह ने तुर्कों के सांस्कृतिक विचारों को प्रभावित किया। यही कारण है कि खिल्जी वंश के शासन-काल में हम शासन तंत्र के रूप में सामाजिक समन्वय का सुन्दर चित्र देखते हैं।

मुस्लिम समाज

परन्तु इस प्रकार समन्वय हो जाने पर भी भारतीय समाज दो भागों में विभाजित रहा। एक ओर राज्य की अनुकम्पा प्राप्त करने वाले मुस्लिम धर्मावलम्बी थे और दूसरी ओर हिन्दू समाज था। यह विभिन्नता राजनैतिकता, धार्मिक एवं सामाजिक कारणों से थी। हिन्दुओं को मुस्लिम राज्य का शत्रु समझा जाता था। मुस्लिम धर्मावलम्बी अपने धर्म की उच्चता पर विश्वास करते थे और दोनों धर्मों का समन्वय असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। फिर दोनों वर्गों के सामाजिक रीति रिवाज भी भिन्न-भिन्न थे। मुसलमानों में मद्यपान सर्वत्र व्याप्त था। परन्तु हिन्दुओं में अपेक्षाकृत शून्य था। मुसलमानों में भी सामाजिक स्तर के अनुसार भेद-भाव था और राजनैतिक क्षेत्र में अन्य वर्गीय व्यक्तियों को अधिक महत्व नहीं दिया जाता था।

एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार मुस्लिम समाज निम्नलिखित दो भागों में विभाजित था :

(१) एहल-ए-सैयफ अथवा सैनिक वर्ग

(२) एहल-ए-कलम अथवा सांस्कृतिक वर्ग

प्रथम वर्ग में राज्य के छोटे कर्मचारी सम्मिलित थे जिन्हें धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करने की अनुमति न थी। यह वर्ग साम्राज्य की शक्ति का मुख्य आधार था। शासन प्रबन्ध एवं साम्राज्य सुरक्षा का उत्तरदायित्व इन्हीं लोगों पर था।

दूसरे वर्ग अथवा एहल-ए-कलम में मुल्लाओं के साथ साथ धार्मिक सन्तों, लेखकों, शिक्षकों एवं कवियों का समावेश था। प्रायः इस वर्ग के सभी सदस्यों को धार्मिक अधिकार प्राप्त रहते थे। अन्य शब्दों में वह धार्मिक समुदाय में सम्मिलित थे। समाज में इनका प्रभाव अधिक था और राज्य को इनकी सुविधाओं का ध्यान रखना पड़ता था। इस वर्ग में भी मुल्लाओं एवं धार्मिक सन्तों में कुछ भेद भाव था। धार्मिक नीति का वर्णन करते समय हम बता चुके हैं कि मुल्लाओं का झुकाव राजनीति की ओर भी था परन्तु धार्मिक सन्तों का राजनीति में कोई सम्बन्ध न था। उलमा लोग अवसरवादी थे। सुल्तान का विरोध भी करते थे और समयानुसार उसकी खुशामद भी करते थे। इसके विपरीत धार्मिक सन्तों को सुल्तान की प्रसन्नता अथवा क्रोध की कोई चिन्ता न थी। वास्तविकता तो यह थी कि उनकी लोकप्रियता सुल्तान एवं राज्य के लिये हानिकारक थी।

समाज में दान देने की प्रथा थी। समय समय पर राज्य को धार्मिक समुदाय की धार्मिक मांगों को पूरा करना पड़ता था। गरीबों के हित का ध्यान रखा जाता था। साधारण से साधारण व्यक्ति भी दान दिया करता था। इसी प्रवृत्ति के कारण अनेक सुल्तानों ने सार्वजनिक कार्यों को प्रोत्साहन दिया था। फिरोज तुगलक ने सिंचाई की सुविधाएं प्रदान की थी। इसे सामाजिक कर्त्तव्य कहा जा सकता है। परन्तु वास्तविकता

उत्तरी भारत की प्रादेशिक कला केन्द्रों में जौनपुर महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जौनपुर के शासक कलाप्रेमी थे और यहाँ भी हमें हिन्दू मुस्लिम शैली का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। हुसेन शाह ने जामा-ए मस्जिद का निर्माण कराया। उसके पूर्व इब्राहीम ने अटाला मस्जिद का निर्माण कराया था। यह मस्जिद जौनपुर के भवनों में सर्वश्रेष्ठ है। अलंकृत एवं आकर्षित यह मस्जिद हिन्दू-मुसलमान शैलियों के समन्वय की ज्वलन्त उदाहरण है। जौनपुर के शासकों ने अपने अधीन हिन्दू एवं जैन कलाकारों को ठीक उसी प्रकार की स्वतन्त्रता दे रखी थी जैसा उन्हें गुजरात में प्राप्त थी। इतिहासकारों का मत है कि जौनपुर की शैली में हिन्दू शैली का अधिक प्रभाव दिखाई देता है और वहाँ के प्रसिद्ध भवनों में विध्वस्त मन्दिरों एवं हिन्दू शैली के आधार पर बनाये गये अन्य भवनों की सामग्री का प्रयोग किया गया था।

बङ्गाल में भी कला का समुचित विकास हुआ था। यहाँ का सर्वश्रेष्ठ एवं सुन्दरतम् नमूना आदीना मस्जिद है जिसे सुल्तान सिकंदर शाह ने बनवाया था। इसके अतिरिक्त यहाँ की प्रसिद्ध इमारतों में हुसेनशाह का मकबरा, नुसरत शाह का कदम रसूल और चुनेहली मस्जिद के नाम उल्लेखनीय हैं। बङ्गाल की शैली जौनपुर की शैली से भिन्न थी और इसमें ईंटों को अधिक महत्व दिया गया है। साथ ही ईंटों के स्तम्भ अथवा महराबों के नीचे पत्थर का सहारा दिया जाता था। यह बङ्गाल की निजी देन है।

सामाजिक दशा

हम बता चुके हैं कि मुस्लिम राज्य में धर्म का अधिक प्रभाव था। राज्य केवल सहधर्मियों को ही उन्नति का अवसर देता था। उत्तरी भारत में मुसलमानों की विजय से एक शताब्दी बाद तक मुस्लिम समाज दो विभिन्न भागों में विभाजित था। तुर्क, अफगान एवं ईरानी जाति के लोग उच्च वर्ग में आते थे। इस वर्ग में अरब से आये हुये व्यक्तियों को भी स्थान प्राप्त था। भारतीय मुसलमान अथवा वे व्यक्ति जिन्होंने हिन्दू धर्म का त्याग कर मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लिया था इस वर्ग को प्राप्त सुविधायें प्राप्त नहीं कर सकते थे। तुर्कों का महत्व अधिक था और मुस्लिम जगत के पूर्वी भागों में उन्होंने सराहनीय कार्य किये थे। अस्तु इस भू-भाग का नेतृत्व भी तुर्कों के हाथ में था।

तत्पश्चात् मंगोलों के आक्रमणस्वरूप मध्य एवं पश्चिमी एशिया की अनेक जातियों ने भारत में प्रवेश किया। स्वयं मंगोलों ने मुल्तान आदि के आस-पास के भू-भाग को अपना घर बना लिया। निरंतर युद्धों के कारण भारत में तुर्कों का आगमन रुक गया और भारतीय शासनतन्त्र में शुद्ध तुर्की रक्त का अभाव हो गया। इस प्रकार भारतीय मुस्लिम समाज में विदेशी रक्त का प्रवाह क्षीण हो गया और भारतीय मुसलमानों और यहाँ तक कि हिन्दुओं को भी कुछ महत्वपूर्ण स्थान मिलने की आशा थी। भारतीय मुसलमानों ने राजनैतिक शक्ति हथियाने का प्रयत्न किया और हम देखते हैं कि नासिरुद्दीन के समय में इनके नेता इमादुल मुल्क रायहान ने बलबन को पदच्युत करा दिया और स्वयं प्रधान मन्त्री बन गया था। अन्तर्जातीय विवाहों, एवं मध्य

शिकार बन चुका था और बर्नी ने तो यहाँ तक लिखा है कि एक सुन्दर दास अथवा दासी का मूल्य ५०० से १००० टके तक हो जाता था।

(३) दास प्रथा—पहले बताया जा चुका है कि समाज मे दास प्रथा प्रचलित थी। प्रारम्भ मे दासता अभिशाप न थी। एक साधारण से साधारण दास भी उच्च पदो को प्राप्त कर सकता था। उसका स्वामी उसकी व्यावहारिक दीक्षा आदि का प्रबन्ध करता था और उसे उन्नति करने के सुअवसर मिला करते थे। दासवंश के सभी सुल्तान दास थे अथवा दास की सन्तान थे। परन्तु धीरे धीरे इस प्रथा ने सामाजिक कुरीति का रूप धारण कर लिया। इब्नबतूता ने तत्कालीन समाज का सुन्दर वर्णन किया है। उसका कथन है कि दासियाँ रखना सभ्यता का चिन्ह समझा जाता था। प्रत्येक अमीर के पास अनेक दास एवं दासियाँ रहती थीं। स्वयं इब्नबतूता ने चार विवाह किये थे और चारो को तलाक दे दिया था। यदि मूर यात्री इब्नबतूता और दरबारी कवि अमीर खुसरो जैसे विद्वान भी इस कुप्रथा एवं सामाजिक पतन मे योग देते तो साधारण प्रजा की क्या स्थिति होगी इसका अनुभव किया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते है कि मदिरापान, धन की बहुलता, सुल्तान का निजी चरित्र एवं दास प्रथा आदि मुख्य कारणो से सामाजिक पतन हुआ था।

यहाँ स्त्री समाज का वर्णन करना उचित होगा। समाज मे स्त्रियो का सम्मान था और उनकी शिक्षा आदि का प्रबन्ध भी था। इब्नबतूता का कथन है कि उसने अनेक ऐसे विद्यालयो को देखा था जहाँ स्त्रियों को शिक्षा दी जाती थी। परन्तु कन्या का जन्म अशुभ समझा जाता था। स्त्रियों मे पर्दा प्रथा प्रचलित थी और उनकी स्वतन्त्रता सीमित थी। फिरोज तुगलक ने उनकी सीमित स्वतन्त्रता का हरण कर लिया। उसके सम्मुख धार्मिक सभा की समाप्ति पर जाने वाली स्त्रियो के आचरण सन्देहास्पद थे।

हिन्दू समाज—भारतीय मुस्लिम राज्य के एक अंग के सामाजिक स्तर का वर्णन किया जा चुका है। अब इसके दूसरे अंग अथवा हिन्दू समाज का वर्णन करना आवश्यक है। विदेशी इतिहासकारों ने हिन्दू समाज की अच्छाइयों की प्रशंसा की है और साथ ही साथ उसमें फैली कुरीतियों की निन्दा भी की है। अलबरूनी का कथन है कि हिन्दुओं में अहंकार अधिक था। वह अपने ही समाज को सुदृढ़ एवं शिक्षित समझते थे। भारतीय विद्वान विदेशियों को अपने ज्ञान का परिचय नहीं देना चाहते थे। इस प्रकार मुस्लिम आक्रमण के समय हिन्दू समाज अच्छी स्थिति में था परन्तु राजनैतिक शक्ति के छिन्न हो जाने पर उनकी दशा शोचनीय हो गई। मुसलमानों ने अधिक से अधिक कर भार द्वारा हिन्दुओं का दमन किया। बरनी के कथनानुसार अलाउद्दीन के शासन काल में हिन्दुओं को अपनी उपज का ५० प्रतिशत कर के रूप में देना पड़ता था। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार के कर एवं कठोर यातनाओं के फलस्वरूप हिन्दू समाज असहाय एवं दुरवस्था में था। मुसलमान उनका अपमान किया करते तो सुल्तान का सहारा लेना पड़ता था। सुल्तान के सम्मुख दावे मांगे जाने के भय से अमीर लोग ऋण चुका देते थे।

दक्षिण भारत में मुसलमानों का प्रभाव कम था। हिन्दुओं में ब्राह्मणों का

यही थी कि धार्मिक व्यक्ति होने के कारण वह जन साधारण के कष्ट को नहीं देख सकता था। गयासुद्दीन तुगलक ने अपने भूतपूर्व स्वामियों अथवा खिल्जीवंश की लड़कियों के विवाह का प्रबन्ध किया था।

चारित्रिक दृष्टिकोण से मुस्लिम समाज आदर्श समाज न था। उसमें अनेक कुरीतियाँ फैली हुई थीं। मदिरा-पान एवं द्यूत क्रीड़ा उस समय की मुख्य बुराइयाँ थीं। इसी प्रकार दासियों को रखने की प्रथा भी प्रचलित थी। बलबन एवं अलाउद्दीन के समान कठोर शासकों ने चरित्र के विकास की ओर ध्यान दिया। दोनों ने ही मदिरापान का विरोध करा दिया और नियम भंग करने वालों को कठोर दण्ड दिया। बलबन के चरित्र में अहंकार एवं उच्चता के भाव थे। वह किसी भी निम्नवर्गीय व्यक्ति से बात नहीं करता था। कहा जाता है कि फखरू नामक एक ऐसे ही व्यक्ति ने उसे भेंट देनी चाही परन्तु सुल्तान ने उसे अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि बलबन ने सुल्तान के रूप में ऊँचा उठाने के लिए अपनी भीतरी मानवता को सम्मान एवं गौरव की बलिवेदी पर चढ़ा दिया था। सुल्तान अलाउद्दीन ने भी मदिरापान बन्द करा दिया और शासक वर्ग के चारित्रिक विकास की ओर ध्यान दिया। उनकी विद्रोही एवं प्रतिक्रिया-वादी प्रवृत्ति के दमनार्थ उसने उनके पारस्परिक मेल जोल पर पाबन्दी लगा दी। परन्तु अलाउद्दीन के मृत्योपरान्त मुस्लिम उच्चतन्त्र अनैतिकता के गर्त में पड़ गया। और यह स्थिति तुगलक वंश के शासनारम्भ तक चलती रही। मुहम्मद तुगलक के शासन काल में सामाजिक चरित्र में कुछ सुधार हुआ परन्तु फ़िरोज तुगलक ने सैनिकों में फैले भ्रष्टाचार एवं रिश्वत आदि को रोकने की चेष्टा नहीं की। फलस्वरूप सैनिक वर्ग का नैतिक स्तर शेष वर्गों के नैतिक स्तर से नीचा था :

समाज के निम्न नैतिक स्तर के कारण इस प्रकार थे।

(१) धन की बहुलता—समाज में विशेषतया शासक वर्ग के पास धन अधिक मात्रा में था और इसका दुरुपयोग किया जाता था। राज्य की आय का अधिकतम भाग हिन्दुओं से एकत्रित किया जाता था। इसके विपरीत मुसलमानों को बहुत कम कर देने पड़ते थे। यही नहीं धार्मिक नियमानुसार मुसलमान सैनिकों को लूट का कुछ भाग दिया जाता था। उन्हें सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थीं। ऐसी परिस्थिति में विलासमय जीवन की ओर झुकना स्वाभाविक ही था।

(२) सुल्तान का निजी चरित्र—समाज का चरित्र शासक वर्ग के चरित्र से प्रभावित होता है और शासक वर्ग के चरित्र और सुल्तान के चरित्र में समानता पाई जाती है। यदि सुल्तान विलासमय एवं भ्रष्टाचारयुक्त जीवन व्यतीत करता है तो यह स्वाभाविक ही है कि सामन्त एवं अमीर भी उसी का अनुकरण करें। इस बात का वर्णन किया जा चुका है कि सुल्तान की शक्ति चरित्र पर निर्भर थी और निजी रूप से शक्तिशाली सुल्तान के सम्मुख अमीरों की शक्ति क्षीण हो जाती थी परन्तु दुर्बल एवं विलासमय शासकों के सम्मुख केवल सुरा-सुन्दरी ही थे और उसका प्रभाव अमीरों पर पड़ता था। मुबारक खिल्जी के शासन काल में हमें इस प्रभाव का सुन्दर नमूना मिलता है। समकालीन इतिहासकारों के कथनानुसार लगभग प्रत्येक अमीर चारित्रिक पतन का

मुसलमान धार्मिक नेताओं के विचार मे हिन्दुओ पर अत्याचार करना उनका धार्मिक कर्तव्य था। समकालीन इतिहासकारों ने हिन्दुओ की दुर्दशा का वर्णन किया है और उनकी दुर्दशा पर प्रसन्नता प्रकट की है। सामान्यतया कोई हिन्दू सिर नहीं उठा सकता था और उनके घरों में चाँदी अथवा सोना लेश मात्र भी न था। उन्हें घोड़े की सवारी, शस्त्र रखने, सुन्दर वस्त्र पहनने का अधिकार न था। उनकी स्त्रियों को मुसलमानों के घरों में काम करना पड़ता था। हिन्दुओ को राह चलते मुसलमानों को नमस्कार करना पड़ता था। यही नहीं उन्हे राज्य की ओर से धर्म परिवर्तन का प्रोत्साहन दिया जाता था। हिन्दू न नया मंदिर बनवा सकते थे और न ही पुराने मन्दिरों को मरम्मत करा सकते थे। उन्हें अपने धार्मिक त्यौहारों को मनाने की अनुमति न थी। इस प्रकार हम देखते है कि हिन्दुओ की दशा बहुत शोचनीय थी। ऐसी परिस्थिति में यह सम्भव न था कि वह किसी आदर्श विशेष का प्रतिपादन करते। उनकी स्थिति पशु समान थी। उन्हें न तो सोचने की स्वतन्त्रता थी और न ही वह स्वतन्त्रतापूर्वक काम कर सकते थे। प्रो० यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि " ऐसी सामाजिक स्थिति मे श्रम एवं योग्यता से श्रेष्ठतम फल प्राप्त नहीं किये जा सकते। मानव हृदय उच्च आदर्श का प्रतिपादन नहीं कर सकता। हिन्दुओं मे बुद्धिक्षीणता और उच्चवर्गीय हिन्दुओ मे नीच प्रवृत्तियाँ, भारत में मुस्लिम शासन के सबसे बड़े अभिशाप थे। मुसलमानो का राजनैतिक वृत्त, अपने फलो को देखते हुए पूर्णतया निष्फल रहा।"

हिन्दुओं में भी दान देने की प्रथा थी। निर्धनों को भोजन दिया जाता था और धार्मिक उत्सवों पर विशेष दान दिया जाता था। जाति भेद एवं वर्ण व्यवस्था के कारण अनेक हिन्दू जाति के लिए यह एक अभिशाप था। उसी वर्ण व्यवस्था के कारण अनेक निम्न वर्गीय हिन्दुओं ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। मुस्लिम आक्रमणकारियों के सम्मुख हिन्दुओं की पराजय के कारणों में वर्ण व्यवस्था के फलस्वरूप फैली अनेकता भी एक मुख्य कारण थी। सती प्रथा भी प्रचलित थी परन्तु उत्तरी भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत मे इसका प्रचार अधिक था। साधारण प्रजा जन्त्रो मन्त्रो में विश्वास करती थी और अनेक बीमारियों के उपचार हेतु झाड़ फूँक का प्रयोग किया जाता था। लोगों मे धन गाड़ने की प्रथा थी और अधिक से अधिक धन एकत्रित करना गौरवपूर्ण समझा जाता था। महाजन लोग लेन-देन का कार्य किया करते थे। यदि कोई व्यक्ति ऋण की अदायगी से इनकार करता तो महाजन उसके विरुद्ध सरकार से प्रार्थना करते थे। अलाउद्दीन आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु का मूल्य निर्धारित कर दिया। तोल आदि पर नियन्त्रण रखा और नियम की अवहेलना करने वालों को कठोर दण्ड दिये। फलस्वरूप प्रत्येक वस्तु के मूल्य गिर गये और निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी बहुत कम लागत पर अपनी दिन प्रतिदिन की आवश्यकताएं सन्तुष्ट कर लिया करता था। राज्य मे अन्न काफी मात्रा में था। आर्थिक जीवन सुसाम्य था। गाँव की आबादी बढ़ गई थी और जन साधारण का जीवन सुखी था। अलाउद्दीन के आर्थिक सुधार मूल्य निर्धारण के प्राकृतिक नियम, माँग एवं पूर्ति के नियम, पर आधारित न था, यही कारण था कि सुल्तान की मृत्यु होते ही उसके सभी सुधार हवा हो गये। परन्तु इतना होने पर भी

सम्मान अधिक था। वर्ण व्यवस्था एव सती प्रथा जोरों पर थी। बलि देने की भी प्रथा थी। ब्राह्मण स्त्रियों में पर्दा प्रथा थी परन्तु अन्य वर्गीय स्त्री समाज मे स्वच्छन्दता का आभास मिलता है।

आर्थिक दशा

मुस्लिम आक्रमणकारियों के आगमन के पूर्व भारत की आर्थिक दशा अच्छी थी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आक्रमणोपरान्त काल में भारत की आर्थिक दशा डावाँडोल हो गई थी। आरम्भ में मुस्लिम आक्रमणकारियो एव शासको का मुख्य ध्येय लूट-मार ही बना रहा। फलस्वरूप धन-धान्य भारतवासियों की सम्पत्ति न रह कर विदेशियों की सम्पत्ति बन गया था। लूट मार एव राज्य विस्तार में व्यस्त रहने के कारण उन्हें देश के आर्थिक जीवन को सुव्यवस्थित बनाने का अवसर नहीं मिला। राज्य में केन्द्रीय सत्ता के दुर्बल होने के कारण देशी लुटेरों ने जगलों एव आस-पास के भू-भाग में लूट-मार का राज्य स्थापित कर रक्खा था। ऐसी दशा मे आर्थिक विकास अथवा सुव्यवस्था सम्भव न थी। सर्व प्रथम बलबन ने आन्तरिक सुव्यवस्था की ओर ध्यान दिया और उसके सुधारों का अनुसरण करते हुए सुल्तान अलाउद्दीन ने आर्थिक क्षेत्र मे अपनी प्रशसनीय योग्यता का परिचय दिया। इस समय राज्य की आय का मुख्य साधन कृषि कार्य था। इसके अतिरिक्त व्यापार भी महत्वपूर्ण था। बलबन एव अलाउद्दीन दोनों ने सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध किया। बलबन ने जगलों को साफ करवा दिया और इस प्रकार लुटेरों के गुप्त स्थानों को नष्ट भ्रष्ट कर उनकी सम्पूर्ण योजनाओं का अन्त कर दिया। व्यापारियों की सुविधा के लिए प्रत्येक मार्ग को लूटेरों से साफ करवा दिया गया। इस प्रकार व्यापार को प्रोत्साहन मिला और माल के आगमन-निगमन मे सुविधा हो गई।

व्यापार के क्षेत्र मे गुजरात एव मालवा ने विशेष उन्नति की थी। परन्तु इसके पूर्व यह दिल्ली साम्राज्य के अन्य सुधारो एव आर्थिक सगठन का वर्णन करना आवश्यक है। ध्यान रहे कि समकालीन मुस्लिम इतिहासकारो में बहुत कम व्यक्तियो ने तत्कालीन आर्थिक दशा का समुचित वर्णन किया है। इस कार्य मे हमे मार्कोपोलो, मूर यात्री इब्नबतूता एव चीनी यात्री महुयान के कार्यों से विशेष जानकारी प्राप्त होती है! दुर्भाग्यवश इन इतिहासकारों ने केवल बङ्गाल, मालवा एव गुजरात आदि के आर्थिक जीवन का वर्णन किया है। उत्तरी भारत के आर्थिक जीवन की वास्तविक झलक अलाउद्दीन के आर्थिक सगठन से मिलती है। सुल्तान अलाउद्दीन के आर्थिक सुधार उसकी महत्वाकांक्षाओं के फलस्वरूप हुए थे। सुल्तान के लिए यह सम्भव न था कि इतनी विशाल सेना का पालनपोषण राजकोष के आधार पर ही किया जाता। उसने अपने परामर्शदाताओं से विचार विमर्श किया। इब्नबतूता के अनुसार यदि कोई हिन्दू सुल्तान को भेंट देने के विचार से दरबार में प्रवेश करता तो मुसलमान "हदाक अल्ला" की रट लगाते थे जिसका अर्थ होता है "ईश्वर शुद्ध सत्य पथ पर लायें।" उनके रहन-सहन का स्तर बहुत नीचा था। वह सरकारी पद प्राप्त नहीं कर सकते थे। जजिया नामक एक कर देने पर ही उनको जीवन दान दिया जाता था।

बगाल के सम्बन्ध में मार्कोपोलो ने लिखा है कि देश धन-धान्यपूर्ण था और प्रतिदिन की आवश्यक वस्तुएँ सस्ते भाव पर मिल जाती थीं।। प्रजा का जीवन सुखी था। इसी प्रकार माहुमान ने लिखा है कि बगाल में चावल की खेती अधिक होती थी। इसके अतिरिक्त यहाँ अनेक प्रकार की दालें एव सब्जियाँ बहुलता से प्राप्त हो जाती थीं। सुपारी का प्रयोग किया जाता था। चावल और नारियल से नशीले पेय पदार्थ तैयार किये जाते थे। यहाँ जरी का काम भी किया जाता था और चाकू, छूरी आदि अनेक वस्तुएँ तैयार की जाती थीं।

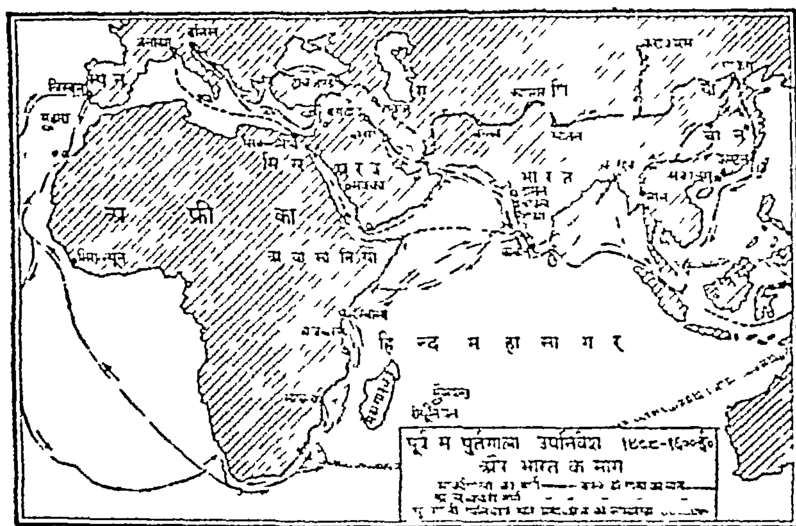
अभ्यास के लिए प्रश्न

१. तुर्क-अफगान शासन-काल में मुसलमान और हिन्दू समाज की स्थिति पर प्रकाश डालिए।

२. पूर्व मध्यकालीन भारत की आर्थिक स्थिति पर एक लेख लिखिए।

३. पूर्व मध्य कालीन भारत की सभ्यता एवं सस्कृति पर प्रकाश डालिए।

देश की आर्थिक दशा अच्छी रही। बाजारों में अन्न काफी मात्रा में था और राजकोष में इतना धन था कि मुबारक एवं खुसरो द्वारा धन लुटाये जाने पर भी काफी धन शेष बच गया था। मुहम्मद तुगलक के शासन काल में आर्थिक जीवन को बहुत बड़ा आघात पहुँचा और न केवल सुल्तान की योजनाएँ ही असफल हुईं वरन् आर्थिक क्षेत्र में भी उसे पूर्ण असफलता प्राप्त हुई। नवीन सिक्कों का आधार इतना सरल था कि कोई भी व्यक्ति उन्हें बना सकता था और यद्यपि समकालीन इतिहासकारों का कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि सुल्तान की नवीन योजना से राजकोष को अपार क्षति उठानी पड़ी। इसके अतिरिक्त दुर्भिक्ष आदि के कारण भी आर्थिक क्षेत्र में आतङ्क फैल गया था। सुल्तान ने दुर्भिक्षपीड़ितों की सहायतार्थ सुविधाएँ प्रदान कीं परन्तु उसे सफलता न मिली और हजारों व्यक्ति काल का ग्रास बन गये। कृषक खेती छोड़ कर भाग गये और व्यापार की गति भी रुक गई। फिरोज तुगलक ने सिंचाई का प्रबन्ध एवं अन्य सुविधाएँ देकर आर्थिक दशा को सुधारने का प्रयत्न किया परन्तु तैमूर के आक्रमण ने रही-सही दशा को भी शोचनीय बना दिया।



चित्र ३३

गुजरात, माबर एवं दक्षिण के अन्य प्रदेशों में व्यापार अधिक उन्नति पर था। व्यापारी जहाजों द्वारा विदेश से माल मँगवाया जाता था। विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन दिया जाता था और घोड़े, सोना, चाँदी एवं तांबा के बदले जड़ी-बूटियाँ, काली मिर्च, अदरक एवं वस्त्र ले जाया करते थे। कपास एवं नील वहाँ की प्रसिद्ध फसलें थीं। गुजरात धन-धान्य से परिपूर्ण था और इसमें सात हजार नगर एवं गाँव थे। स्थानीय कारीगर रंगीन चटाइयाँ बनाते थे और इन पर पशु-पक्षियों के चित्र अंकित रहते थे। माबर घोड़ों के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। वहाँ हर अच्छी नस्ल के घोड़े कम पाये जाते थे और अधिकतर घोड़े विदेशों से मँगवाये जाते थे।

में रहते थे। जितने मेवाती पकड़े गये उनको तलवार के घाट उतार दिया गया। बलबन ने गोपाल गिरि मे एक दुर्ग सिर्फ इसलिए बनवाया कि भविष्य में राजधानी को किसी प्रकार के बाहरी उपद्रवों द्वारा क्षति न पहुँचे। गोपाल गिरि के दुर्ग में सुयोग्य सैनिकों को रक्खा गया। अनेक छोटे-छोटे किले बनवाकर बलबन ने वहाँ अफगान सैनिकों की चौकियाँ बैठा दी। इन अफगानों को बलबन ने यह आदेश दिया कि वे जी तोड़ कर रक्षा कार्य करें और उनके इस कार्य के बदले में बलबन ने उन्हें निकट की भूमि जागीर रूप में दे दी थी।

जिन उपद्रवों से सम्पूर्ण देश को आर्थिक क्षति पहुँच रही थी उनमें दो अवध के डाकुओं के उपद्रव अधिक कुख्यात हे। अवध के ये दो डाकू कम्पिल और पतियारी भोजपुर को अपना गढ़ बना कर निकटवर्ती व्यापार-मार्ग से जाने वाले व्यापारियों पर छापा मारते थे। इसके भय से व्यापारियो ने आना जाना बन्द कर दिया था। बलबन ने इन के दमन के लिए सबसे पहले अनेक छावनियाँ बनवाई और साहसी सैनिकों को वहाँ नियुक्त कर दिया। उसने जलाली के दुर्ग को भी मरम्मत करा कर डाकुओं के दमन का कार्य सुचारु रूप से चलाना आरम्भ किया। बलबन स्वय कई महीनों तक डाकुओं के दमन के लिए उनके गढ़ों मे रहा।

दोआब के डाकुओ का पूर्ण दमन हो चुका था कि सहसा बलबन को यह सूचना मिली कि रुहेलखण्ड के जिलो में उपद्रव खड़े हो गए हैं। वहाँ के प्रान्तीय शासक उन विद्रोहो को दमन करने में पूर्णतया असमर्थ थे क्योकि उपद्रवियो की क्षति अपेक्षाकृत बहुत अधिक थी। बलबन का जब यह सूचना मिली तो वह क्रोधित हो उठा और उसने उपद्रवियो के कत्लेआम का आदेश दे दिया। दो दिन के भीतर ही उपद्रव क्षेत्र में खून की नदियाँ बहने लगीं, लाशो की दुर्गन्धि से आस-पास की हवा दूषित हो गई।

बलबन के शासन-काल मे विद्रोह और दमन—बंगाल के सूबेदार तुगरिल खाँ ने बलबन के शासन-काल मे विद्रोह किया था जिसे बलबन की सेना न दबा सकी। इस पर बलबन स्वय एक विशाल सेना लेकर बंगाल की ओर चल पड़ा। सुल्तान के भय से तुगरिल खाँ सुनारी भाग गया किन्तु बलबन कब छोड़ने वाला था। उसने उसका पीछा किया। तुगरिल खाँ गिरफ्तार किया गया और उसका वध कर दिया गया। तुगरिल के साथियो को इतनी बुरी तरह कुचला गया कि देखने वालो के कलेजे काँप उठे। बलबन ने बंगाल मे पूरी शान्ति स्थापित करके अपने पुत्र बुगरा खाँ को वहाँ का प्रान्तीय शासक बना दिया।

बलबन के पश्चात् गुलाम वंश का पतन आरम्भ हो जाता हे क्योंकि उसका उत्तराधिकारी कैकुबाद बिल्कुल ही अशक्त और दुर्बल शासक निकला। सुल्तान को दुर्बल देख कर सल्तनत के सरदारों और अमीरों ने राजनीतिक प्रभुता प्राप्त करने के लिए झगड़ा कर लिया। खिलजी और तुर्क सरदार आपस में होड़ लेने लगे। खिलजियों के नेता मलिक जलालुद्दीन खिलजी ने तुर्क दल के नेताओं को मरवा दिया और उसने खुद दिल्ली सल्तनत पर अधिकार कर लिया। मलिक छज्जू नामक एक व्यक्ति ने जला-

अध्याय ४६

दिल्ली सल्तनत में आन्तरिक विद्रोह

जैसा कि हम पिछले पृष्ठों में देख चुके हैं दिल्ली सल्तनत के समय में बराबर आन्तरिक विद्रोह होते रहे। राजपूत सरदार, प्रान्तीय शासक और महत्वाकांक्षी अमीर ही ऐसे विद्रोहों को जन्म देते थे। इस प्रकार के विद्रोह सल्तनत के लिए हानिकर सिद्ध होते रहे। इसीलिये सुल्तान विद्रोहों को 'दबाने के लिए बराबर सचेत रहा करते थे। यहाँ हम उन्हीं विद्रोहों के दमन की कहानी पढ़ेंगे।

इल्तुतमिश के समय में राजपूत विद्रोह—कुतुबुद्दीन ऐबक के बाद जब इल्तुतमिश दिल्ली सल्तनत का अधिकारी हुआ तो राजपूतों ने अपनी आजादी पुनः प्राप्त करने की चेष्टा की। वे तुर्कों को भारत से खदेड़ देने का प्रयास करने लगे। देखते-देखते चन्देलों ने कालिंजर और अजयगढ़ जीत लिया, उधर मुसलमानों से प्रतिहारों ने ग्वालियर का किला छीन लिया और उन्होंने अपना साम्राज्य झाँसी तक बढ़ा लिया। इसी प्रकार रणथम्भौर के चौहान राजा ने जोधपुर और उसके निकटवर्ती भू-भाग पर अधिकार कर लिया। अन्य राजपूत वंशों ने भी मुस्लिम सत्ता के विरुद्ध आवाज उठाई। पर चारों ओर विद्रोह से घिरा हुआ इल्तुतमिश तनिक भी न घबराया। उसने एक एक करके समस्त राजपूत राज्यों को दबा दिया और १२२० तक अजमेर, तहनगढ़, बयाना, साँभर, जालौर आदि उसके अधीन हो गये। अवध, दोआब तथा कटेहर के राजपूतों को भी इल्तुतमिश ने दबा दिया।

इल्तुतमिश के बाद का विद्रोह—इल्तुतमिश ने तो किसी प्रकार विद्रोहों को दबा कर शान्तिपूर्वक राज्य कर लिया किन्तु उसके बाद विद्रोहों का ताँता फिर शुरू हुआ। रजिया के समय में षड्यन्त्र अवश्य हुए विद्रोह नहीं। उसके पश्चात् ४० अमीरों का दल काफी शक्तिशाली हो गया और सल्तनत की शक्ति कम होने लगी। नासिरुद्दीन मुहम्मद के ५० वर्षों के शासन-काल में कोई विशेष घटना नहीं घटी। उसके सुयोग्य बलबन ने उसकी हर प्रकार से रक्षा की। नासिरुद्दीन को बलबन के हाथ का कठपुतली समझ कर और यह सोच कर कि सम्राट् अकर्मण्य है विद्रोहियों को प्रोत्साहन मिलता रहा। यद्यपि बलबन ने सुन्दर शासन-व्यवस्था द्वारा देश में शान्ति स्थापित करने की पूरी कोशिश की थी फिर भी नासिरुद्दीन के शासन-काल में अशान्ति और अराजकता छाई रही। इल्तुतमिश के बाद से ही मेवाड़ के राजपूतों ने शक्ति बढ़ाना शुरू कर दिया था। उनकी लूटों ने आस-पास के लोगों का जीवन संकटमय कर दिया था।

बलबन द्वारा विद्रोह दमन—सुल्तान बलबन ने दिल्ली के आस-पास के जंगलों को साफ कर लोगों का जीवन सुरक्षित किया क्योंकि मेवाती लोग इन्हीं जङ्गलों

हम यह कह सकते हैं कि मुहम्मद तुगलक के शासन काल के प्रारम्भिक वर्षों में जो विद्रोह हुये उनमें इन्हीं प्रान्तीय शासकों का हाथ था। सबसे पहला विद्रोह मुहम्मद तुगलक के भाई बहाउद्दीन ने किया। वह सागर का प्रान्तीय शासक था। सुल्तान ने बहाउद्दीन को गिरफ्तार कर लिया और उसके साथ इतना कठोर बर्त्ताव किया कि लोग काँप उठे। सिन्ध के सूबेदार से यह अत्याचार देखा न गया और उसने सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सुल्तान सिन्ध के विद्रोह में लगा ही था कि उसे बङ्गाल के विद्रोह की सूचना मिली। सिंध का विद्रोह किसी तरह दबा दिया गया पर बङ्गाल सुल्तान के काबू के बाहर हो गया। अतः बंगाल प्रान्त दिल्ली सल्तनत से निकल गया। बंगाल की स्वतन्त्रता के पहले ही माबर के शासक सय्यद जलालुद्दीन अहसानशाह ने अपने को दिल्ली सल्तनत से स्वतन्त्र घोषित कर लिया था। उधर दक्षिण में जफर खाँ ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया था और अलाउद्दीन बहमनशाह की उपाधि धारण की। हम आगे चल कर पढ़ेंगे कि दक्षिण में किस प्रकार बहमनी राज्य की स्थापना हुई थी। कड़ा के गवर्नर ने भी विद्रोह किया था, किन्तु उसका दमन कर दिया गया। सुल्तान ने जीते जी उसकी खाल खिंचवा ली। अवध के गवर्नर ऐनुलमुल्क ने भी विद्रोह किया था और सुल्तान ने उसे भी दबा दिया था। मुहम्मद तुगलक के समय का अन्तिम विद्रोह गुजरात का विद्रोह है जिसे दबाने की तैयारी सुल्तान कर ही रहा था कि उसका देहावसान हो गया।

फिरोज तुगलक के समय में विद्रोह का दमन—मुहम्मद तुगलक के समय में जितने प्रान्त हाथ से निकल गये थे उन पर पुनः अधिकार प्राप्त करने का प्रयास करना फिरोज का सबसे बड़ा कर्त्तव्य होना चाहिए था। सुल्तान से यह कहा गया कि दक्षिण से वह बहमनी राजा को जो हाल ही में स्वतन्त्र हुआ है साम्राज्य में मिला ले। इस पर सुल्तान ने उत्तर दिया कि वह मुसलमानों का खून बहाना नहीं चाहता। इसी प्रकार राजस्थान के राज्य को भी राज्य में मिलाने के लिए सुल्तान ने कोई प्रयत्न नहीं किया। बात यह थी कि सैनिक शक्ति अत्यन्त दुर्बल थी। सुल्तान में स्वयं साहस का अभाव था। न जाने किस प्रेरणा से उसने बंगाल को दिल्ली सल्तनत में मिलाने के लिए रणयात्रा की। किन्तु उसे बराबर असफलता मिली। सिन्ध का विद्रोह दबाने के लिए फिरोज तुगलक ने जो कार्य किये उनसे हम यह भली-भाँति समझ जाते हैं कि उसकी सैनिक योग्यता कितनी कम थी और वह कितना अदूरदर्शी था। सुल्तान कभी भी सिन्ध पर अधिकार नहीं कर सका होता लेकिन उसके योग्य मन्त्री ने उसे इस कार्य में काफी सहायता दी थी, जिससे कि वह सफल हो सका।

फिरोज के बाद विद्रोह—फिरोज तुगलक की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली सल्तनत का निरन्तर ह्रास होता गया। जो साम्राज्य इतना विशाल हो गया था वह काफी सीमित हो गया। दुर्भाग्यवश तैमूर का तूफानी आक्रमण हुआ। दिल्ली सल्तनत की रही सही ताकत भी खत्म हो गई। प्रान्तीय राज्यों को स्वतन्त्र होने का मौका मिला। अतः कई प्रान्त स्वतन्त्र हो गए। परन्तु दिल्ली सुल्तानों में इतनी ताकत नहीं रही कि वे इन राज्यों को फिर से दिल्ली सल्तनत के अधीन करते। तुगलक वंश के पश्चात् सैयद वंश का शासन स्थापित हुआ। उनके छोटे से राज्य में आन्तरिक विद्रोह का

ल्लुद्दीन खिल्जी के विरुद्ध बगावत की किन्तु उसे दबा दिया गया। जलालुद्दीन शान्ति-पूर्वक राज्य कर ही रहा था कि उसके भतीजे ने जैसा कि हम पढ़ चुके हैं चुपके से उस का बध कर दिया।

अलाउद्दीन खिल्जी के समय में विद्रोह—जैसा कि हम पढ़ चुके हैं अला-उद्दीन ने विद्रोह के कारणों पर खूब अच्छी तरह विचार किया था और विद्रोहों के दमन के उपायों का समुचित प्रबन्ध करके उसने विद्रोहियों का हिलना-डुलना तक बन्द करवा दिया था। अमीरों के विद्रोहों का मुख्य कारण जानकर ही उसने उनसे जागीरें छीन ली थीं। अलाउद्दीन ने यह समझ लिया था कि विद्रोह का सबसे बड़ा कारण प्रजा के पास अतुल धन राशि का होना ही है, अतः उसने ऐसा प्रबन्ध किया कि किसी के पास इतना अधिक धन न हो जाय कि वह सुल्तान के विरुद्ध आवाज उठा सके। अलाउद्दीन के गुप्तचरों ने प्रजा और सरदारों की छोटी-छोटी बातों तक की सूचना सुल्तान को देना प्रारम्भ कर दिया। हर प्रकार की विलासिता का अन्त करके सुख-सुविधा की चिन्ता पड़ गई। विद्रोहों की ओर ध्यान देने का अवसर ही न मिला। हिन्दुओं को तो उसने इतना निर्धन बना दिया कि उनको नमक रोटी के लाले पड़ गये, विद्रोह की बातें तो बहुत दूर रहीं। इस प्रकार अलाउद्दीन ने बहुत पहले से ही अपने शासन-काल में विद्रोहों की जड़ खोद देने के उपाय कर लिए थे।

मुबारक खिल्जी द्वारा विद्रोहों का दमन—अलाउद्दीन खिल्जी के उत्तरा-धिकारी मुबारक खिल्जी के समय में विद्रोहों का ताँता बँध गया, क्योंकि काफी दिनों के बाद कड़ा अंकुश कुछ ढीला हुआ था। गुजरात और देवगिरि के विद्रोह काफी भयंकर रहे। गुजरात में भयंकर विद्रोह हुआ था और देवगिरि के यादव नरेश तथा राज-पूताना के कुछ राज्यों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। सुल्तान ने गुजरात के विद्रोह का दमन कर दिया और अपने ससुर जफर खाँ को गुजरात का शासक बना दिया। देवगिरि का विद्रोह स्वयं मुबारक द्वारा ही दबाया गया। मुबारक ने देवगिरि के शासक हरपाल देव की खाल जीते जी खिंचवा ली।

खुसरो ने मुबारक की हत्या करके दिल्ली का सिंहासन प्राप्त कर लिया, किन्तु वह स्वयं गयासुद्दीन तुगलक द्वारा पराजित हुआ। गयासुद्दीन के शासन-काल में भी काकतीय वंश के राजा प्रताप रुद्रदेव ने विद्रोह कर दिया किन्तु उसका दमन कर दिया गया। गयासुद्दीन के उत्तराधिकारी मुहम्मद तुगलक के विद्रोहों और दमनों का इतिहास नीचे पढ़ेंगे।

मुहम्मद तुगलक के समय में विद्रोह—मुहम्मद तुगलक के सम्बन्ध में पढ़ते हुए हम ने देखा था कि वह मौलिक प्रतिभा का आदमी था। वह बड़ी ऊँची-ऊँची कल्प-नाएँ किया करता था परन्तु दुर्भाग्यवश उसकी प्रत्येक योजना असफल रही और उसकी स्थिति डाल से चूके हुए बन्दर सी हो गई। सम्पूर्ण साम्राज्य में विद्रोहों का ताँता लग गया। मुहम्मद तुगलक के समय में विद्रोहों की संख्या बहुत अधिक होने का कारण यह भी था कि उसके कई प्रान्तीय शासक विदेशी रक्त के थे। उन विदेशियों को सुल्तान से कोई हार्दिक प्रेम नहीं था और वे सर्वदा अपने को शक्तिशाली बनाने की चिन्ता में पड़े रहते थे। अवसर पाते ही वे विद्रोह का झण्डा खड़ा कर देते थे।

अध्याय ४७

दिल्ली सल्तनत पर एक विहंगम दृष्टि

राजवंशों का शीघ्र परिवर्तन

पिछले पृष्ठों मे हमने मुहम्मद गोरी के आक्रमण के सम्बन्ध में पढ़ा और देखा कि भीषण आक्रमणों से गोरी ने आतंक ला दिया था। उत्तर भारत के अधिकांश भाग पर अपना अधिकार स्थापित करके मुहम्मद गोरी तो स्वदेश लौट गया, किन्तु भारत पर शासन करने को वह अपने एक प्रिय गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक को छोड़ गया। ऐबक ने भी विजय पताका फहराई और देखते-देखते मुसलमानी सत्ता भारत मे स्थायी हो गई। किन्तु दिल्ली सल्तनत के इतिहास की यह एक बड़ी विचित्र स्थिति रही कि राजवंशों का परिवर्त्तन बड़ी शीघ्रता से होता रहा। १२०६ ई० से १२९० ई० तक गुलाम कुतुबुद्दीन के गुलाम तथा गुलामो के गुलाम ने शासन किया। १२९० ई० से १३२० तक खिल्जियों ने राज्य किया, फिर तुगलकों की बारी आई जिन्होंने १३२० ई० से १४१२ ई० तक राज्य किया। फिर १४५१ से १४५६ तक लोदी वंश का शासन चलता रहा। अन्त में बाबर ने सर्वदा के लिए इनसे दिल्ली छीन ली। भारत में मुसलमानों के जम जाने के पश्चात् अर्थात् १२०६ ई० से दिल्ली मे क्रमश. गुलाम, खिल्जी, तुगलक, सैयद और लोदी पॉच राजवंशो ने ३२० वर्षों मे अर्थात् १५२६ ई० तक राज्य किया। पहला राज वंश ८४ वर्ष, दूसरा ३० वर्ष, तीसरा ९२ वर्ष, चौथा ३७ वर्ष तथा पॉचवॉ ७५ वर्ष तक शासन कर सका था। इस तालिका से यह ज्ञात होता है कि कोई भी राजवंश ९२ वर्ष से अधिक नहीं टिक सका। आखिर इस राजनीतिक उथल-पुथल का क्या कारण था? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए शायद पाठक के मन में यह जानने की इच्छा उत्पन्न होगी कि एक के बाद दूसरे राजवंश का अधिकार राजसिंहासन पर कैसे हुआ। इसी प्रश्न पर हम संक्षेप मे विचार करेंगे अर्थात् राजवंशों के पतन पर दृष्टिपात करेंगे।

गुलामों का पतन—बलबन गुलाम वंश का अन्तिम शक्तिशाली शासक था। इसने अपने प्रपौत्र कैखुसरू को अपना उत्तराधिकारी निर्वाचित किया था, किन्तु सरदारों ने बलबन की मृत्यु के पश्चात् कैकुबाद को राजगद्दी पर बैठाया। उस समय इसकी आयु केवल १७ वर्ष की थी। कैकुबाद का पालन पोषण इस प्रकार हुआ था कि वह विलासिता का नाम तक नहीं जानता था। सहसा जब उसके सम्मुख वैभव और विलासिता का संसार आ खड़ा हुआ तो उसकी आँखें चकाचौंध हो गईं और उसने आँख मूँदकर इनका उपयोग करना आरम्भ कर दिया। शासन का अनु-सरण पदाधिकारियों ने भी करना आरम्भ कर दिया। फिर क्या था, सारे देश में

कोई प्रश्न ही नहीं था। तत्पश्चात् लोदी वंश आता है। बहलोल लोदी ने अफगान सरदारों से इतनी अधिक घनिष्ठता स्थापित कर दी थी कि उन्हें सुल्तान से किसी प्रकार का सन्तोष नहीं रहा। तत्पश्चात् सिकदर लोदी आता है। उसे अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ता है क्योंकि वह कुछ अधिक महत्वाकांक्षी था। सिकन्दर को सबसे पहले जौनपुर का सामना करना पड़ा। जौनपुर राज्य को बहलोल लोदी ने दिल्ली सल्तनत में मिला कर उस पर सिकदर के बड़े भाई बरबाक शाह का शासन स्थापित करा दिया था। सिकदर लोदी ने बरबाक शाह को हरा दिया और उसके साथ भाई होने के नाते यह कृपा दिखलाई कि उसे जौनपुर का प्रान्तीय शासक बना दिया। तत्पश्चात् जौनपुर के जमींदारों ने भयकर विद्रोह किया जिसे दबाने में बरबाक असफल रहा। बरबाक लखनऊ भाग गया किन्तु सिकन्दर लोदी ने इस विद्रोह का शीघ्र दमन कर दिया और बरबाक को पुनः जौनपुर का शासक नियुक्त कर दिया। सिकंदर को फिर कभी विशेष विद्रोह का सामना नहीं करना पड़ा।

इब्राहीम लोदी के समय मे विद्रोह—इब्राहीम लोदी के साथ में उसके छोटे भाई जलाल खाँ ने सिंहासनारोहण का विरोध करते हुए विद्रोह किया था। इब्राहीम को इस बात के लिए विवश होना पड़ा कि जलाल खाँ को जौनपुर का सुल्तान मान लिया जाय किन्तु आगे चलकर सुल्तान ने जलाल खाँ का वध करवा दिया। इब्राहीम लोदी ने अफगान सरदारों को बुरी तरह दबाया जिससे असन्तुष्ट हो कर उन्होंने काबुल के शासक बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए निमन्त्रण दिया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. दिल्ली सल्तनत के समय मे आतरिक विद्रोहो के कारणों पर प्रकाश डालिए।

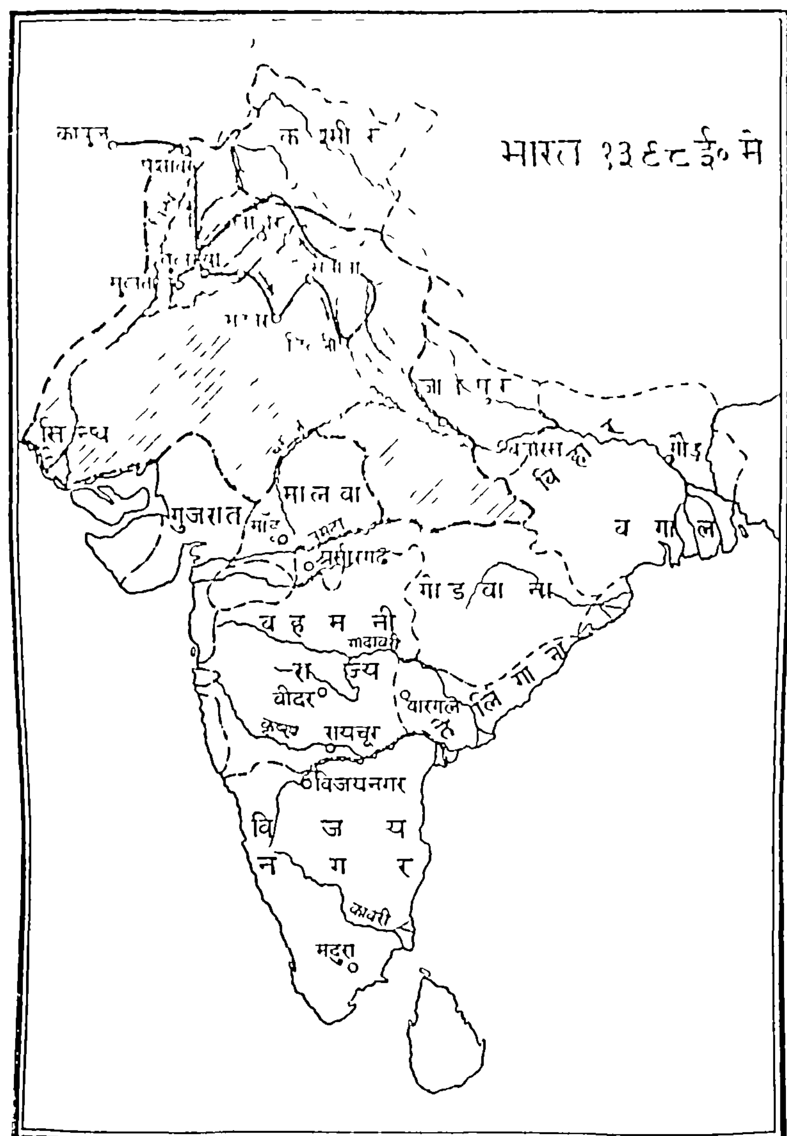
२. दिल्ली सल्तनत के समय के कुछ प्रमुख आन्तरिक विद्रोहो तथा उनके दमन पर प्रकाश डालिए।

आचरण के थे कि इन्होंने इल्तुतमिश के एक अन्य पुत्र कुतुबुद्दीन की हत्या कर दी। माँ की प्यास केवल पुत्र के खून से नहीं बुझी, उसने पुत्री रजिया के भी वध का षड्यन्त्र रचा, पर वह सौभाग्य से बच गई। पुत्र और माँ के काले कारनामों से दरबार म खलबली मच गई और अमीरों ने विद्रोह कर दिया। देखते देखते अनेक अमीर स्वतन्त्र हो गये। सरदारों ने माँ बेटा दोनों को कारागार में डाल दिया। रुकुनुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् १२३६ ई० में अर्थात् इल्तुतमिश की मृत्यु के एक साल बाद रजिया सिंहासन पर बैठी। इसके शासन काल में भी विद्रोह हुए। सर्व प्रथम अल्तूनिया ने विद्रोह किया। रजिया की हत्या के पश्चात् तो छः वर्षों तक अराजकता-सी फैली रही। उसके बाद उसका भाई बहराम सिंहासनारूढ़ हुआ था जो घोर कामुक और निर्दयी था। इसके शासनकाल में तो हत्याओं, विद्रोहों और अत्याचारों का ताता बंध गया। अतः इस शासक का अन्त भी हत्या द्वारा हुआ। तत्पश्चात् समूद गद्दी पर बैठा। उसकी कठोरता से तंग आकर अमीरों ने उसे कारागार मे डाल दिया और इल्तुतमिश के पुत्र नासिरुद्दीन को गद्दी पर बैठाया। यह पाक-साफ शासक था। अतः वह अपने मन्त्री बलबन की देख-रेख मे शान्तिपूर्वक २० वर्षों तक राज्य कर सका। यही एक ऐसा शासक था जो शासन के लिए अकुशल होते हुए भी शान्तिपूर्वक राज्य कर सका। इसमें कुछ रहस्य था। शान्तिप्रिय होने के कारण इसके शासन काल म विद्रोह नहीं हो सके, दूसरे उसे बलबन जैसा कुशल एव योग्य मन्त्री प्राप्त था। इस प्रकार हम देखते हैं कि लगभग सभी गुलाम शासकों की मृत्यु के पश्चात् राज्य मे विद्रोह का झण्डा ऊँचा उठता था। बलबन की मृत्यु के पश्चात् जो विप्लव हुआ उसका विवरण प्रारम्भ मे ही दिया जा चुका है और हमने देखा था कि जलालुद्दीन खिल्जी ने गुलाम वश का सदा के लिए अन्त करके एक नये राजवश (खिल्जी वश) की नींव डाली थी।

खिल्जी वश का पतन—कैकुबाद की हत्या के पश्चात् ही जलालुद्दीन को दिल्ली का सिंहासन प्राप्त हुआ था पर जलालुद्दीन की हत्या स्वय उसके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन ने कर दो। तत्पश्चात् अलाउद्दीन गद्दी पर बैठा। उसने विद्रोहियों का दमन सफलतापूर्वक किया पर उसकी मृत्यु के पश्चात् देश में पुन. अराजकता छा गई। उसके पुत्र खिज्र खाँ को गद्दी पर से उतार कर अमीर मलिक काफूर ने एक पंच-वर्षीय बालक शहाबुद्दीन को शासक बनाया। वास्तव में मलिक काफूर स्वय शासन की बागडोर अपने हाथ में लेना चाहता था, इसीलिए उसने इस छोटे से बच्चे को सुल्तान बनाया। पर ३५ दिन के भीतर ही इस बच्चे की हत्या कर दी गई। तत्पश्चात् अला-उद्दीन के एक दूसरे पुत्र मुबारक खाँ को अमीरों ने गद्दी पर बैठाया। कुछ साल तक तो यह सफलतापूर्वक शासन करता रहा किन्तु वह अपनी प्रारम्भिक सफलताओं पर फूल गया और उसने मनमानी करना आरम्भ कर दिया। हसन नामक एक व्यक्ति के प्रभाव में आकर वह और बिगड़ता गया। उसका भी जीवन सुरा और सुन्दरियों तक सीमित हो गया। अब वह अमीरों को अपमानित करने लगा। फलतः वे विद्रोही हो गए। इधर नीच हसन, जिसने खुसरो खाँ की उपाधि धारण कर ली, मौके की ताक में था। एक दिन वह सुल्तान के महल मे रात्रि में अपने साथियों के साथ घुस गया।

भोग-विलास का साम्राज्य छा गया। कैकुबाद तो सुरा और सुन्दरियों के हाथ की कठपुतली बन गया। अब राज-काज दिल्ली के कोतवाल के दामाद निजामुद्दीन के हाथ में रहने लगा। कैकुबाद नाम मात्र का सुल्तान बना रहा। निजामुद्दीन बड़ा ही महत्वाकांक्षी था। वह स्वयं शासक बनना चाहता था किन्तु यह तब तक सम्भव न था जब तक कैखुसरू जीवित था। कैखुसरू के विषय में हम कह आये हैं कि बलबन ने इसे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। अब भी कुछ सरदार कैखुसरू के पक्ष में थे। अतः निजामुद्दीन ने एक दिन सुल्तान कैकुबाद से जब वह नशे में चूर था, कैखुसरू की हत्या की अनुमति ले ली। फिर क्या था, कैखुसरू मुल्तान से बुलाया गया और रास्ते में ही रोहतक के पास उसकी हत्या कर दी गई। इस हत्या ने सम्पूर्ण राज्य में खलबली मचा दी। अनेक विरोधी दल बन गये जिनमें खिल्जी अमीर जलालुद्दीन फिरोज का दल अधिक शक्तिशाली था। इस दल के किसी सदस्य ने एक दिन सुल्तान कैकुबाद की हत्या कर दी और तब जलालुद्दीन खिल्जी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। यहीं से खिल्जी वंश का उदय होता है। गुलाम वंश के पतन में कुछ अन्य कारणों ने भी योग दिया। सरदारों में पारस्परिक द्वेष था, वे महत्वाकांक्षी थे और राज्य हड़पने के लिए षड्यन्त्र किया करते थे। जैसा कि ऊपर दिखाया गया है इससे एक दूसरी समस्या यह खड़ी हो गई कि राज प्रतिष्ठा में कमी आ गई। मंगोलों के अनवरत आक्रमण ने तो गुलामों की शक्ति छिन्न भिन्न कर दी थी, साथ ही सेना भी दुर्बल हो चली थी। इनका शासन प्रबन्ध सैनिक शक्ति पर चल रहा था और उसमें कोई सुधार नहीं हो सका था, अतः जनता की इसमें कोई रुचि नहीं रह गई थी। एक सबसे बड़ी कमी तुर्कों में (कुछ अन्य मुसलमान शासकों में भी) यह थी कि उनमें उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम न था। जिसकी लाठी उसकी भैंस का बोलबाला था। इससे हर शासक की मृत्यु के पश्चात् षड्यन्त्रों तथा विद्रोहों का भीषण प्रकोप उत्पन्न हो जाता था। वस्तुस्थिति का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें गुलाम वंश के प्रत्येक शासक के अंत की कहानी की ओर ध्यान देना होगा। गुलाम वंश के प्रथम शासक कुतुबुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र आरामशाह गद्दी पर बैठा, किन्तु उसकी सत्ता को बदायूँ के शासक इल्तुतमिश ने चुनौती दी और उसे गद्दी से उतार दिया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण राज्य में विप्लव का श्री गणेश हुआ और शक्तिशाली सरदारों ने राज्य के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इल्तुतमिश ने दिल्ली तथा उसके निकटवर्ती भाग को हड़प लिया, खिल्जी मलिकों ने लखनौती को अपने अधीन कर लिया, कुबैचा ने सिन्ध की बागडोर अपने हाथ में ले ली, लाहौर पर कभी कुबैचा का अधिकार हो जाता तो कभी गजनी के प्रधान शासक इल्दौज का। इसी प्रकार इल्तुतमिश की मृत्यु के पश्चात् भी विप्लव का तांता बँध गया। इल्तुतमिश यह जानता था कि उसके पुत्र निकम्मे हैं। अत. उसने अपनी पुत्री रजिया को उत्तराधिकारिणी घोषित कर दिया था। पर भला सरदारों को कब सह्य था कि वे किसी नारी द्वारा शासित हों, अत उन्होंने इल्तुतमिश के एक पुत्र रुक्नुद्दीन को गद्दी पर बैठाया। रुक्नुद्दीन की माँ का ही इसमें विशेष हाथ था। बेटा सुरा-सुन्दरियों में लग गया और माँ उल्टा सीधा शासन करने लगी। दोनों इतने पतित

हुआ। तत्पश्चात् कई दुर्बल शासक गद्दी पर बैठे। अन्तिम शासक अलाउद्दीन आलम



चित्र ३४

शाह था जिससे पंजाब के सरदार बहलोल लोदी ने दिल्ली छीन ली और इस प्रकार १४५१ ई० में दिल्ली पर लोदी वंश का शासन शुरू हुआ।

लोदी वंश का पतन—लोदी वंश के पतन का श्रेय बहुत कुछ १५२६ ई० में

मुबारक की हत्या कर दी गई और अत्याचारियों ने बेगमों और बच्चों पर गजब ढाया। १३१६ ई० में अलाउद्दीन की मृत्यु हुई थी और चार वर्ष के भीतर ही १३२० ई० में मुबारक की भी हत्या कर दी गई पर मुबारक का हत्यारा हसन भी जो नासिरुद्दीन के नाम से सुल्तान बना था, शान्तिपूर्वक राज्य न कर सका और उसके अत्याचारों से ऊब कर सरदारों ने विद्रोह कर दिया। फखरुद्दीन जूना जो आगे मुहम्मद तुगलक के नाम से प्रसिद्ध हुआ, हसन की स्वेच्छाचारिता नहीं बरदाश्त कर सका। उसने अपने पिता गाजी मलिक से सारे अत्याचारों को कह सुनाया। गाजी मलिक ने नासिरुद्दीन पर आक्रमण कर दिया। नासिरुद्दीन भागा, पर वह पकड़ा गया और उसका सर काट लिया गया। इस प्रकार खिलिजयों का पतन होता है और गाजी मलिक तुगलक वंश की स्थापना करता है। कितना विद्रोह, रक्तपात, छलकपट, विश्वासघात आदि से यह काल भरा हुआ था।

तुगलक वंश का पतन—तुगलक वंश का पतन तो अन्य राज वंशों से भी बुरी दशा में हुआ। गाजी मलिक गयासुद्दीन तुगलक के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था। पाँच वर्ष बाद ही उसके पुत्र मुहम्मद तुगलक ने उसकी हत्या का सफल षड्यन्त्र रचा और महल के सहसा गिर जाने से उसकी मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् मुहम्मद तुगलक सिंहासनारूढ़ हुआ। यद्यपि इसका अन्त हत्या द्वारा नहीं हुआ किन्तु हत्या से भी बढ़ कर भयानक विद्रोह हुए जिन्होंने तुगलक राजवंश की नींव झकझोर दी। इस के शासन-काल में ही माबर और बंगाल स्वतन्त्र हो गए। दक्षिण में हिन्दुओं ने विजय-नगर राज्य की स्थापना कर ली। अवध का सूबेदार मुहम्मद के बर्ताव से अप्रसन्न हो कर विद्रोही हो गया। सिन्ध में भी विद्रोह हुए, पर इन दोनों विद्रोहों को सुल्तान ने दबा दिया। दक्षिण में कृष्णा नायक की अध्यक्षता में हिन्दू राजाओं ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। विदेशी अमीरों ने भी विद्रोह करके दौलताबाद पर अपना अधिकार कर लिया। यही बहमनी राज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सुल्तान का जीवन ही विद्रोहियों के दमन में बीता। गुजरात के विद्रोह का दमन करते समय ही उसकी मृत्यु हो गई। फिरोज किसी प्रकार अपनी मौत मर सका। पर उसके पश्चात् तो तुगलकों का राज्य बच्चों का खिलवाड़ हो गया। १३८८ में फिरोज की मृत्यु हुई और १४१२ ई० तक पाँच शासकों ने राज्य किया जिसमें से प्रथम शासक तुगलक शाह (गयासुद्दीन) की हत्या पाँच माह के भीतर ही कर दी गई। दूसरे शासक अबूबकर को नासिरुद्दीन मुहम्मद ने बलात् पदच्युत कर दिया। चार वर्षों तक इसने राज्य किया। तत्पश्चात् हुमायूँ गद्दी पर बैठा, पर कुछ सप्ताहों में ही उसकी मृत्यु हो गई। फिर नासिरुद्दीन मुहम्मद तुगलक ने १८ वर्षों (१४१२ ई०) तक राज्य किया। उसकी मृत्यु के पश्चात् मुल्तान के प्रान्तीय शासक खिज्र खाँ ने दिल्ली को अपने अधीन कर लिया और तभी सैयद वंश की स्थापना हुई।

सैयद वंश का पतन—सैयद वंश का शासन-काल विद्रोहों का युग था। इसका संस्थापक खिज्र खाँ किसी प्रकार विद्रोहों से अपनी रक्षा करता हुआ शान्ति-पूर्वक अपनी साँसें तोड़ सका। उसके उत्तराधिकारी मुबारक शाह का अन्त हत्या द्वारा

और अन्य राज कर्मचारियों को इन षड्यन्त्रों और विद्रोहों से उन्नति करने की प्रेरणा मिलती थी। साम्राज्य हड़पने की लालसा मन में जोर मारती थी।

आन्तरिक विद्रोहों के भी कुछ प्रमुख कारण थे। उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम का न होना तथा शासकों की स्वेच्छाचारिता। शासन की कुव्यवस्था भी विशेष उल्लेखनीय है। कुछ ही सुल्तानों ने शासन-प्रबन्ध में सुधार की ओर ध्यान दिया था, अन्यथा अधिकांश इस ओर से उदासीन रहे। उनकी इच्छा ही विधान और व्यवस्था थी।

४ उत्तराधिकार के नियमों का अभाव—विभिन्न वंशों का शीघ्र परिवर्त्तन बहुत कुछ उत्तराधिकार सम्बन्धी नियमों पर आधारित था। तुर्की राज्य में जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत लागू थी। तुर्क साम्राज्य ही नहीं, इस्लाम धर्म भी इसी सिद्धान्त का पालन करता था। एक ओर था सुल्तान और दूसरी ओर उसके सामन्त प्रतिद्वन्द्वी के रूप में थे। एक का शक्तिशाली होना दूसरे की दुर्बलता का प्रतीक था। यही कारण था कि सुल्तान की मृत्यु के पश्चात् आन्तरिक विद्रोह अथवा षड्यन्त्र हुआ करते थे। दुर्बल सुल्तान सामन्तों के आश्रित थे। स्वभावतः शक्तिशाली सामन्त अपना स्वार्थ सिद्ध करते तथा उचित अवसर पाकर अपनी राजसत्ता स्थापित करना अपना परम धर्म समझते थे। खिलजी वंश के प्रवर्त्तक जलालुद्दीन ने कैकुबाद की और गयासुद्दीन तुगलक ने नासिरुद्दीन खिलजी की हत्या करवा दी। नासिरुद्दीन एवं गयासुद्दीन दोनों ही सामन्त थे। खिज्र खाँ नासिरुद्दीन, मुहम्मद तुगलक की मृत्यु पर मुल्तान का शासक था। सुल्तान की मृत्यु हो जाने पर उसने अपने बाहुबल पर सैयद वंश की स्थापना की। बहलोल लोदी आलमशाह सैयद के समय पंजाब का शासक था। इसने भी अवसर से लाभ उठाया था। इन सारे रक्त-पात के मूल में था—उत्तराधिकार के नियम का अभाव।

५. कर्त्तव्य के प्रति उदासीनता—कुछ विशेष सुल्तानों को छोड़कर लगभग सभी सुल्तान राज-कार्य के प्रति उदासीन थे। राज-कार्य वस्तुतः दरबारियों पर छोड़ दिया जाता था जिनमें शासन संगठन शक्ति का अभाव था। सुल्तान के कड़े निरीक्षण का अभाव उनकी मनमानी करने में सहायता देता था।

६. सामन्तों की दलबन्दी—दिल्ली सल्तनत के समय तुर्क, अफगान एवं भारतीय मुसलमानों में परस्पर वैमनस्य था। सर्व प्रथम तुर्की सामन्त राज्यसत्ता के अधिकारी थे परन्तु क्योंकि तुर्कों ने भारत को अपना देश बना लिया था एवं मध्य एशिया से तुर्कों का भारत आने का रास्ता भी बन्द था। अतः अफगान एवं भारतीय मुसलमान शक्तिशाली हो गए। तुर्कों के विरुद्ध इन दोनों का संगठन था। परन्तु संगठन-कर्त्ता से अधिक ये अवसरवादी थे। जो दल शक्ति प्राप्त करता दूसरा दल उसकी सहायता की हामी भर लेता था।। इनका पारस्परिक वैमनस्य राज्य सत्ता के लिए हानिकारक था। निर्बल सुल्तान को निश्चय रूप से शक्तिशाली दल का सामना करना पड़ता था। वह इस दल को अपना पथप्रदर्शक मान ले अथवा गद्दी छोड़ दे, बस यही दो मार्ग थे।

बाबर के आक्रमण को ही दिया जा सकता है। इस राजवंश में रक्तिम षड्यन्त्रों का अवश्य अभाव रहा, केवल इब्राहीम लोदी के समय में कुछ षड्यन्त्र हुए थे। इसके कुछ सरदार इससे रुष्ट थे जिन्होंने बाबर को आक्रमण के लिए आमन्त्रित किया और इस प्रकार १५२६ ई० में दिल्ली सल्तनत का अन्त हो गया।

राजवंशों के शीघ्र परिवर्त्तन के कारणों की समीक्षा

पिछले पृष्ठों में हमने यह देखा था कि एक के बाद दूसरे राजवंश का सूत्रपात हुआ। वह दूसरा राजवंश भी अधिक दिन तक नहीं टिक पाता था कि कोई तीसरा वंश सिंहासन हड़प लेता था। उसी स्थल पर इस शीघ्र पतन-परिवर्त्तन के कारणों का भी संकेत कर दिया गया था पर यहाँ उन पर संक्षेप में प्रकाश डाला जायेगा।

१. दुर्बल उत्तराधिकारी—गुलाम, खिल्जी, तुगलक, सैयद तथा लोदी सभी वंशों के संस्थापक शक्तिशाली एवं वीर थे किन्तु उनके उत्तराधिकारी दुर्बल निकले। उदाहरणार्थ कुतुबुद्दीन तो बहुत शक्तिशाली था किन्तु गुलाम वंश का अन्तिम शासक कैकुबाद नितान्त दुर्बल था। खिल्जी वंश के प्रथम दो शासक विशेषतया अलाउद्दीन खिल्जी, जिसने वास्तव में खिल्जी राज्य को महत्व प्रदान किया शक्तिशाली था, किन्तु मुबारक और नासिरुद्दीन दोनों दुर्बल शासक निकले। तुगलक वंश का संस्थापक गयासुद्दीन काफी सशक्त शासक था। किन्तु फिरोज तुगलक के पश्चात् अन्तिम पाँचों शासक दुर्बल रहे, और वे राज्य को नहीं सँभाल सके। सैयद और लोदियों के सम्बन्ध में भी यह कारण ठीक उतरता है। दुर्बल उत्तराधिकारियों से राज्य को बनाये रहने की आशा करना कहाँ तक सम्भव है। यही कारण है कि एक वंश के दुर्बल उत्तराधिकारी को दूसरे वंश का सशक्त व्यक्ति छल या बल से पराजित कर देता था और इस प्रकार नये राजवंश की नींव पड़ती थी और इस वंश को भी इसी प्रकार अपना पतन देखना पड़ता था। दुर्बल उत्तराधिकारियों पर मंगोलों का आक्रमण उनके लिए विष का काम करता था और राज्य की सैनिक शक्ति क्षीण हो जाती थी।

२. नैतिक पतन—पिछले पृष्ठों में हमने देखा था कि लगभग सभी राजवंशों में ऐसे शासक हुए जो सुरा-सुन्दरी पर सब कुछ लुटा देने को प्रस्तुत थे। इन विलासियों, कामुकों और मूर्खों से अपने वंश की मर्यादा बनाये रखने की आशा करना भूल होगी। हाँ, उन्होंने पतन में काफी योग दिया। सुल्तानों के नैतिक पतन से राजदरबारियों का भी चारित्रिक पतन हो जाता था।

३ आन्तरिक विद्रोह—सभी राजवंशों के शासन-काल में आन्तरिक विद्रोह हुआ करते थे। स्वयं राजमहल में ही षड्यन्त्र और विद्रोहों का ताँता लगा रहता था माता पुत्र की हत्या कर दे, भतीजा चाचा की हत्या कर दे, आदि कुत्सित कार्य इस युग लिए साधारण सी बात थी। जहाँ राजमहल से लेकर सम्पूर्ण राज्यों में ही विद्रोह ही विद्रोह होता हो भला वहाँ कोई राजवंश कैसे स्थायी हो सकता है। जनता, सरदारों

अध्याय ४८

सुल्तानों की दक्षिणी नीति

भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना के पश्चात् लगभग सौ वर्षों तक दक्षिण भारत विदेशियों की लूटमार उनके आक्रमणों और जिहाद से मुक्त रहा। दास वंश के शासक अपने राज्य की बाह्य और आन्तरिक सुरक्षा में ही प्रयत्नशील रहे। राज्य की सीमा रेखाओं के सवर्धन की अपेक्षा राज्य संगठन की समस्या ही उनके लिए अधिक महत्वपूर्ण थी और यही कारण है कि दक्षिण भारत उनके आक्रमणों और उनकी लूट-मार से अछूता रहा। अलाउद्दीन ही प्रथम शासक था जिसने अपने साम्राज्य की सीमा रेखाओं का अत्यधिक विस्तार किया और दक्षिण में तो उसकी विशाल रणवाहिनी, विजय वैजयन्ती उड़ाती हुई द्वारसमुद्र और कन्याकुमारी तक पहुंच गयी। खिल्जी साम्राज्य के मूल में थी उसकी विशाल सेना, और इसी विशाल सेना की सहायता से उसने प्राकृतिक अवरोध रेखा-विन्ध्याचल पर्वत का अतिक्रमण सुदूर दक्षिण के प्रदेशों को आक्रान्त कर उन्हें मुस्लिम सत्ता का आधिपत्य स्वीकार करने को विवश किया और इस प्रकार उसने दक्षिण-भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना की। जब तक दिल्ली सल्तनत की बागडोर एक कठोर और कुशल सेनानी शासक के हाथों में रही तथा दक्षिण भारत में दिल्ली सल्तनत का आधिपत्य अक्षुण्ण रहा और जब दिल्ली सल्तनत के सचा-लन सूत्र कुछ ढीले पड़े तो साम्राज्य के दूरस्थ प्रान्तों में विद्रोह की चिनगारियाँ धधक उठीं जिसका परिणाम यह हुआ कि मुहम्मद तुगलक के शासन-काल के अन्तिम वर्षों में राज्य की सगठित एकता छिन्नभिन्न हो गयी और दक्षिण भारत से दिल्ली की सर्वोच्च सत्ता का आधिपत्य समाप्त हो गया।

पूर्ववर्ती अध्यायों में साम्राज्य विस्तार के अन्तर्गत हम अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक की दक्षिण विजयों का विस्तृत वर्णन कर ही चुके हैं फिर भी पाठकों की सुविधा और सुल्तानों की दक्षिणी नीति का स्पष्टतापूर्वक हृदयगम कराने के विचार से हम उनकी विजयों का संक्षिप्त रूप से वर्णन करेंगे।

अलाउद्दीन की दक्षिण नीति एक कुशल दूरदर्शी और योग्य शासक की नीति थी। वह दक्षिण भारत की विजय का आकांक्षी अवश्य था परन्तु उन विजित राज्यों को साम्राज्य में सम्मिलित करना उसका उद्देश्य न था। सम्भवत उसने उन कठिनाइयों का स्पष्ट अन्दाज लगा लिया था जो दक्षिण भारत को साम्राज्य में आत्म-सात करने से उत्पन्न हो सकती थी। यह सत्य है कि सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भारत में एकता रही है लेकिन सांस्कृतिक एकता और राजनैतिक एकता में पर्याप्त अन्तर हुआ करता है।

उत्तर भारत की विजय के पश्चात् अलाउद्दीन का उत्साह वर्षाकालीन सरोवर की भाँति बढ़ रहा था जिससे प्रेरित होकर उस महत्वाकांक्षी सुल्तान ने अपने मन में

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ दिल्ली सल्तनत के संस्थापकों का नामांकन करते हुए बताइए कि उन्होंने किस प्रकार अपने वंश की स्थापना की।

२. दिल्ली सल्तनत के समस्त राजवंशों के पतन का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

३ क्या कारण है कि दिल्ली में इतनी शीघ्रता से राजवंशों का परिवर्त्तन होता रहा?

अपने सेनापति काफूर को दिया था "यदि राजा अपना कोष या रत्नों, हाथियों और घोड़ों को दे देने तथा अगले वर्ष भी धन या हाथी भेजने के लिए तैयार हो जावें, तो वह (मलिक नायब काफूर) इन शर्तों को स्वीकार कर ले और उसे अधिक तंग न करे।"

द्वारसमुद्र में होयसल वंश का राज्य था। इस समय यहाँ वीर बल्लाल तृतीय का शासन था। यह एक वीर और शक्तिशाली शासक था और समस्त कांगू प्रदेश, कोंकण का एक भाग और आधुनिक मैसूर का समस्त प्रदेश उसके अधिकार में था।

पाड्य-राज्य जहाँ शासन सत्ता को अधिकृत करने के लिए वीर पाड्य और सुन्दर पाड्य नामक दो भाइयों में गृह-युद्ध चल रहा था और दोनों ही अपने उत्तरी पड़ोसियों की सहायता प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील थे।

अलाउद्दीन के आक्रमण के समय दक्षिण-भारत की राजनैतिक दशा अत्यन्त अव्यवस्थित थी। जैसा कि पहले बताया जा चुका है दक्षिण-भारत का यह विभाजन, मुस्लिम आक्रमण के समय उत्तरी-भारत की विभाजित स्थिति के ही सदृश था फिर भी दोनों की स्थितियों की भिन्नता भी स्पष्ट है। जहाँ तक साधन और शक्ति का प्रश्न उठता है ग्यारहवी और बारहवीं शताब्दी के राजपूत राज्य मुस्लिम आक्रमणकारियों के पीछे नहीं थे परन्तु दक्षिण के राज्यों की स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर थी। परन्तु दक्षिणी राज्यों के शीघ्र पतन के अन्य कारण भी थे —

१३०७ में दक्षिण आक्रमण के समय देवगिरि के यादव राज्य में धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। वैसे चाहे इसका प्रभाव उतना घातक न होता जितना इस प्रतिद्वन्द्विता का राजनीति से सम्बन्धित हो जाने के कारण हुआ यहाँ तक कि कुछ व्यक्तियों ने आक्रमणकारियों की सहायता भी की।

यह बात स्मरणीय है कि भौगोलिक सीमा अर्थात् विन्ध्याचल पार कर लिए जाने पर दक्षिण की प्राकृतिक सुरक्षा पंक्ति का अन्त हो गया था। दक्षिण भारत में देवगिरि का महत्व अत्यधिक था। यहाँ से पूर्व और पश्चिम के राज्यों पर आक्रमण किया जा सकता था। देवगिरि के पतन ने दक्षिण के अन्य हिन्दू राजाओं के पराजय की सम्भावनायें प्रस्तुत कर दी।

कहा जाता है कि उन दिनों दक्षिण भारत के वैभव सम्पन्न अगाध ऐश्वर्यशाली ये प्रदेश अपनी अनन्त धनराशि के लिए सारे भारत में सानी नहीं रखते थे। इस बात का ज्वलन्त प्रमाण वह विशाल धन-राशि है जो अलाउद्दीन को भेंट और युद्ध के हरजानों के रूप में प्राप्त हुई थी। लेकिन पाठकों को यह स्मरण रखना चाहिए कि यह आर्थिक सम्पन्नता राजाओं और सामन्तों तक ही सीमित थी। जन साधारण निर्धनता की छाया में जीवन यापन कर रहा था क्योंकि उनकी आय का अधिकाश भाग कर के रूप में राज्य कोष में चला जाता था। दक्षिणी-भारत की जनता में उस विद्रोह की प्रवृत्ति का भी अभाव था जिसका परिचय उत्तरी भारत के निवासियों ने समय समय पर दिया। अभावग्रस्त और निर्धनता से पीड़ित जनता में आक्रमणकारियों का सामना कर सकने की सामर्थ्य कहाँ ? यही कारण था कि उत्तर से

दक्षिण विजय की ठानी और वह उसमें सफल भी हुआ। लेकिन अलाउद्दीन इस बात को अच्छी तरह जानता था कि दक्षिण भारत में साम्राज्य स्थापन भले ही कठिन न हो और दक्षिण भारत के राज्यों को विजित कर लेना मुस्लिम सेना के लिये भले ही एक आसान कार्य हो लेकिन दिल्ली में बैठकर इन दूरस्थ प्रान्तों को साम्राज्य के सगठित शासन-सूत्रों में अधिक काल तक जकड़ कर नहीं रखा जा सकता। अत. उसने एक ऐसी नीति अपनायी जिसके द्वारा उसकी दक्षिण-भारत को आक्रान्त करने की चिर-अभिलषित आकाक्षा भी पूरी हुई और साम्राज्य का सगठन तथा शासन-व्यवस्था भी पूर्ववत् रही। वह समस्त दक्षिण नरेशों को दिल्ली सल्तनत के झण्डे के नीचे देखना चाहता था। वह दक्षिण की उस अपार धन-राशि का स्वामी होना चाहता था जिसके विषय में उसने वर्षों से काफी सुन रखा था लेकिन इतने पर भी वह दक्षिण भारत के प्रत्यक्ष शासन-भार को अपने कन्धों पर सँभालने का अभिलाषी नहीं था।

आधुनिक शब्दावली में यदि हम कहना चाहें तो कह सकते हैं कि अलाउद्दीन दक्षिण-भारत के साथ (Co existence) की नीति का अनुकरण करना चाहता था। दक्षिण भारत का भाग्य विधाता होना ही उसका उद्देश्य था और वास्तविकता तो यह थी कि वह दक्षिण भारत के राज्यों को एक स्वामिभक्त और आज्ञाकारी राज्यों के रूप में देखने का आकाक्षी था। इसमें सन्देह नहीं कि उसकी यह नीति बुद्धिमत्तापूर्ण और दूर की सूझ थी। चित्तौड़ राज्य की घटना को ध्यान में रखते हुए ही उसने दक्षिण भारत के राज्यों को आन्तरिक स्वतन्त्रता प्रदान की थी।

दक्षिण-भारत की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति भी उसके दक्षिण-अभियान योजना के पूर्ण अनुकूल थी। उधर दक्षिण के शासक विलासिता और परस्पर के युद्धाग्नि में जर्जर होते जा रहे थे और इधर अलाउद्दीन की साधन-सम्पन्न विशाल रणवाहिनी फतह पर फतह हासिल कर अलाउद्दीन की दक्षिण विजय की महत्वाकाक्षा को बलवती बनाती जा रही थी। इस प्रकार दक्षिण-विजय के लिए यह एक स्वर्ण अवसर था जिसे यूँही हाथ से खो देना अलाउद्दीन जैसे सुल्तान के लिए असम्भव था। अलाउद्दीन ने दक्षिण-विजय का भार दुर्धर्ष सेनानी मलिक काफूर को सौंपा। काफूर ने अपने तीन अभियानों में समस्त दक्षिण भारत को खिलजी साम्राज्य की सेना के चरणों तले रौंद डाला और विजय श्री के साथ-साथ अपार धन-राशि लाकर अपने सुल्तान अला-उद्दीन खिलजी के चरणों में अर्पित कर दी।

इस समय दक्षिण भारत के राज्य इस प्रकार थे :—

देवगिरि का यादव राज्य जो सैनिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण था और यहाँ का शासक रामचन्द्र देव था। वारगल का राज्य जिसकी राजधानी तेलङ्गाना थी। यहाँ काकतीय वंश का शासन था और राजा प्रताप रुद्रदेव द्वितीय शासन कर रहा था—वारगल पर आक्रमण तो प्रो० आयगर के इस मत का स्पष्ट समर्थक है "दक्षिण के राज्यों को यथेष्ट धन प्राप्ति के लिए कामधेनु बना देना ही अलाउद्दीन दक्षिण अभियान का उद्देश्य था।" क्योंकि अलाउद्दीन ने इसी प्र

सरदार सेनापति भी विश्वासघात करने से नहीं चूकते थे। दक्षिण के हिन्दू राज्यों का अस्तित्व उन्मूलन हुये अभी अधिक दिन नहीं बीते थे कि उनके अमीर सरदारों ने षड्यन्त्रों और विद्रोहों का जाल बिछाना आरम्भ कर दिया। वे तुर्क शासकों की स्वार्थान्धता तथा पारस्परिक वैमनस्य से पूर्ण परिचित थे और हर घड़ी इसी ताक में रहते थे कि, कब उनको मौका मिले और वे स्वतन्त्र राज्य की घोषणा कर बैठें। मुहम्मद तुगलक इस भयानक और विषम परिस्थितियों का ताना बाना छिन्न भिन्न करने में समर्थ नहीं रहा, फलतः १३३५ ई० से १३४७ तक सम्पूर्ण दक्षिण-भारत दिल्ली साम्राज्य के हाथों से निकल गया। इस प्रकार मुहम्मद तुगलक की दक्षिण-नीति पूर्णतया असफल रही और यह कहना अनुचित न होगा कि औरंगजेब की भांति मुहम्मद तुगलक की कब्र भी दक्षिण में बन गयी थी। स्वतन्त्र हुये राज्यों में बहमनी तथा विजयनगर के राज्य मुख्य थे जिनका वर्णन यहाँ किया जायेगा।

दिल्ली के सुल्तानों की दक्षिण नीति के कई महत्वपूर्ण परिणाम हुए। प्रथम दक्षिण के राज्यों से दिल्ली सल्तनत के शासकों को अपार धन-राशि की प्राप्ति हुई जिसके आधार पर ही साम्राज्य-विस्तार, सैन्य संगठन, शासन सुधार, साहित्य एवं कला की उन्नति सम्बन्धी अनेकों योजनाएँ कार्यान्वित की गईं। दक्षिण भारत पर किये इन आक्रमणों के फलस्वरूप दक्षिण-भारत में भी इस्लाम प्रचार पा गया और कई स्थानों में तो इस्लाम के अच्छे केन्द्र बन गए। अन्तिम और महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि सुल्तानों की दक्षिण-नीति के कारण ही उत्तरी-भारत और दक्षिणी-भारत एक दूसरे के निकट आ गये जिसका प्रभाव आगे सामाजिक और धार्मिक जीवन पर स्पष्ट परिलक्षित हुआ।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. सुल्तानों के शासन-काल में दक्षिण भारत की राजनैतिक स्थिति पर प्रकाश डालिये।

२. सुल्तानों की दक्षिणी नीति पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

मलिक काफ़ूर के अभियानों का जो शक्तिशाली तूफ़ान उठा उसमें दक्षिण के ये राज्य एक के बाद एक ध्वस्त होते चले गये।

अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् दक्षिण के राज्यों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनेक प्रयत्न किये लेकिन उनकी ताक़तें कुचल दी जाती रहीं और पराजय ही उनके पल्ले पड़ती रही। वैसे आन्तरिक मामलों में वे पहले से ही पूर्ण स्वतन्त्र थे। तुगलक़ वंश के समय तक उनकी स्थिति में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ। गयासुद्दीन तुगलक ने वारंगल के राजा प्रताप रुद्रदेव के विरुद्ध सेनायें भेजीं क्योंकि उसने कर देना बन्द कर दिया था। उसे अपने दुर्ग की सुदृढ़ता और सेना की शक्ति पर विश्वास था। यही कारण है कि शाही सेनापति युवराज जूना खाँ के सम्मुख उसने आत्मसमर्पण करने से इन्कार कर दिया। राजकुमार ने घेरा जारी रखा और वारंगल के पतन का दिन दूर नहीं था कि दिल्ली में सुल्तान की मृत्यु का असत्य समाचार उड़ा दिया गया और फल-स्वरूप अव्यवस्था के भय से युवराज को घेरा हटाना पड़ा। सुल्तान गयासुद्दीन को यह असफलता असत्य प्रतीत हुई और १३२३ ई० में उसने पुन. युवराज के सेनापतित्व में एक सेना वारंगल के विजय हेतु भेजी। भीषण युद्ध हुआ और हजारों सैनिक खेत रहे लेकिन विजय श्री युवराज के पक्ष में रही। वारंगल नरेश ने परिवार सहित आत्मसमर्पण किया। वारंगल का नाम सुल्तानपुर कर दिया गया। इस प्रकार काक-तीय वंश के गौरव का सूर्य अस्त हो गया और दक्षिण भारत में उसके अस्तित्व की इति हो गई।

गयासुद्दीन की दक्षिणी नीति अलाउद्दीन की नीति का ही प्रतिरूप थी परन्तु मुहम्मद तुगलक ने इस नीति का परित्याग कर दिया। उसने दक्षिण के राज्यों को साम्राज्य में सम्मिलित ही नहीं किया वरन् साम्राज्य के अन्तर्गत इनका सुचारु रूप से प्रबन्ध करने के लिए उसने साम्राज्य की राजधानी दिल्ली के स्थान पर दौलताबाद घोषित की। उसका विचार था कि केन्द्र में स्थित होने के कारण दौलताबाद से उत्तर और दक्षिण भारत दोनों का शासन सुचारु और आसान हो उठेगा लेकिन यह उसकी भूल थी। दौलताबाद साम्राज्य के मध्य में अवश्य स्थित था परन्तु वहाँ की स्थिति सुल्तान और सामन्तों के मनोनुकूल न थी। सामन्तों के विचार में दक्षिण प्रदेश विदेशी राज्य के समान था। वैसे उत्तरी भारत में विरोधी भावनाओं का अभाव न था। लेकिन उत्तरी भारत में दीर्घकाल के पारस्परिक मेल-जोल से दोनों सभ्यताएं काफ़ी निकट आ चुकी थीं और कितने मुस्लिम सत्ताधिकारी इसे अपना वतन ही मानने लगे थे।

यही नहीं यातायात और आवागमन के द्रुतगामी साधनों के अभाव में इतने बड़े साम्राज्य का सम्यक शासन करना टेढ़ी खीर हो गयी। सुल्तान की रहस्यमयी योज-नाओं की असफलताओं ने राज्य में सुल्तान के सम्मान का ह्रास करने के साथ-साथ साम्राज्य की नींवों में घुन लगा दिया। सुल्तान ने तगी के विद्रोह-दमन में मुगलों की सहायता लेकर साम्राज्य की शक्ति क्षीणता की पोल खोल दी। परिणामस्वरूप ये विदेशी सरदार अपनी-अपनी शक्ति से अपना-अपना उल्लू सीधा करने में लग गये। दिल्ली के सुल्तान का यह दुर्भाग्य था कि जरा मौका मिलने पर उनके बड़े से बड़े वि-

किया है। इसके अतिरिक्त इतिहास बताता है कि वह एक पक्का मुसलमान था—स्मिथ के शब्दों में वह एक क्रूर तथा धर्मान्ध मुसलमान था तथा 'बुरहान ए मासिर' से भी इस बात का पता चलता है कि शासक पद पर प्रतिष्ठित होते ही हसन गंगू ने काफिरों के प्रदेशों को नष्ट भ्रष्ट करने और लूटने की आज्ञा दी। इससे भी फरिश्ता का मत बालू की भीति की भाँति ढह जाता है। निश्चित और सामयिक प्रमाणों के अभाव में किसी दन्तकथा पर विश्वास कर बैठना इतिहास के सम्बन्ध अपेक्षित दृष्टिकोण स्थापन के लिए लाभदायक नहीं है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अलाउद्दीन हसन का दिल्ली के तथाकथित किसी ब्राह्मण से सम्बन्ध जोड़ना एक निराधार कल्पना मात्र है। वह फारस के बहमन शाह का वंशज था और इसीलिए उसने बहमन शाह की उपाधि भी धारण की थी।

हम ऊपर कह आये हैं कि इस्माइल ने स्वयं ही अलाउद्दीन हसन को सिंहासनासीन होने के लिए आह्वान दिया था और ३ अगस्त १३४७ ई० को अमीरों ने उसके शासक होने की स्वीकृति दे दी। अधिकार हाथ में आते ही हसन ने जो पहला कार्य किया वह था गुलबर्गा को राजधानी बनाना। राज्य का शासन सूत्र गुलबर्गा में केन्द्रित कर लेने के पश्चात् उसने राज्य की सीमाप्रसार तथा शक्ति संवर्धन के भगीरथ प्रयत्न किये। विजय यात्रा के लिये कूच करने से पहले उसने शासन-व्यवस्था को संगठित कर देना आवश्यक समझा और इसके लिए उसने अपने राज्य को 'तरफों' में विभाजित कर दिया और इन प्रान्तों का शासन उन अमीरों को सौंपा जिन्होंने युद्ध में उसको सहायता पहुँचायी थी। इन अमीर जागीरदारों को साम्राज्य के सहायतार्थ एक निश्चित संख्या में सैनिक अनुचरों को रखना पड़ता था और मालगुजारी का एक निश्चित अंश भी राजकोष में रखना पड़ता था। शासन प्रबन्ध के विषय में डा० ईश्वरीप्रसाद के अनुसार उसने मुहम्मद तुगलक के दरबार में प्रचलित शासन विधियों का अनुकरण किया। हसन के द्वारा विभिन्न पदों की स्थापना का ज्ञान हमें 'बुरहान-ए-मासिर' से होता है जिसमें कुछ पद इस प्रकार हैं

१. साहिब ए-अर्ज—सेना का निरीक्षक
२ नायब बारबक—उपद्वार रक्षक
३. कूरबेग-ए-मैसरा—वाम अंग का नायक
४. कूरबेग-ए-ममना—दाहिने अंग का नायक
५. दबीर—सचिव
६. दीवान—मन्त्री
७ शहना-ए-फील—गजाध्यक्ष
८ दावात दार—दावात रखने वाला
६ सैयद उस हुज्जाब—राज प्रासाद का अध्यक्ष
१०. हाजिब उलकस्सा—नगर अधिरक्षक
११ शहना-ए-बारगाह—दरबार निरीक्षक
१२. चाश्नागीर—भोजन चखने वाला

अध्याय ४६

स्वतन्त्र राज्यों का उदय (बहमनी और खानदेश राज्य)

तुगलक के शासन-काल में शासनतन्त्र कुछ ढीला पड़ गया था जिसके परिणाम-स्वरूप साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में विद्रोह हुये। प्रादेशिक राज्यों में स्वतन्त्रता प्राप्ति का आन्दोलन हुआ और कुछ प्रान्तीय शासकों ने तो डंके की चोट पर अपनी स्वतन्त्रता घोषित भी कर दी। इसी अशान्ति और अव्यवस्था की नाजुक स्थिति में दक्षिण के अमीरों ने इस्माइल मख की अध्यक्षता में विद्रोह का नारा बुलन्द किया और दौलताबाद में अपने स्वतन्त्र राज्य की नींव डाली। दक्षिण का यह प्रसिद्ध राज्य इतिहास में बहमनी राज्य के नाम से प्रसिद्ध है। दक्षिण का यह इतिहास-प्रसिद्ध राज्य अपनी स्थापना से लेकर खण्ड-खण्ड होने तक लगभग १८० वर्षों तक स्थित रहा। इस अवधि में चौदह सुल्तानों ने राज्य किया। जहाँ तक राज्य के विस्तार का प्रश्न है यह राज्य उत्तर में वेनगंगा से लेकर दक्षिण में कृष्णा और पश्चिम में कोनकन से पूर्व में भोंगिर तक के विस्तृत भू-भाग में फैला हुआ था। बहमनी सल्तनत यथार्थ में एक मुस्लिम राज्य था जिसका इतिहास ही अभियानों, अत्याचारों, उत्पीड़न तथा पारिवारिक दुर्घटनाओं तथा रक्तरंजित घटनाओं से भरा पड़ा है क्योंकि गुजरात, मालवा, तेलङ्गाना और यहाँ तक कि उड़ीसा आदि सभी निकटवर्ती राज्यों के विरुद्ध अभियान होते रहे और भयंकर युद्ध भी हुए किन्तु विजयनगर के साथ चलने वाला संघर्ष दीर्घकालीन और भयंकर संघर्ष था। शासन सम्बन्धी सफलताओं और कला तथा स्थापत्य के पोषण में बहमनी राज्य का कोई महत्वपूर्ण योग नहीं है, हाँ यत्र-तत्र कुछ उदाहरण अवश्य मिल जाते हैं जो अत्यल्प हैं। राज्य स्थापना के कुछ काल बाद ही इस्माइल ने स्वयं ही वीर और युद्धप्रिय हसन को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर उसके लिए राज्य का सिंहासन रिक्त कर दिया।

बहमनी राज्य के सम्बन्ध में इतिहासकारों में काफी काल तक मतभेद की धारा प्रवाहित रही। इस सम्बन्ध में फरिश्ता ने जिस दंतकथा का उपयोग किया है वह आकर्षक होते हुए भी विश्वस्त नहीं है कि हसन गंगू अपने ब्राह्मण स्वामी गंगू के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के हेतु ही अपने साम्राज्य का नाम बहमनी (ब्राह्मणी) रखा था। यह एक निराधार कल्पना है। आधुनिक गवेषणाओं ने इस मत की धज्जियाँ उड़ा दी हैं। आधुनिक गवेषणाओं द्वारा यह स्पष्ट हो चुका है कि हसन फारस के बादशाह का वंशज था। 'बुरहान-ए-मासिर' के अनुसार हसन स्वयं को बहमन बिन इस्फन्दियार का वंशज बताता था। पाठकों को यह नहीं भूलना चाहिये 'बुरहान-ए-मासिर' का लेखक, जहाँ तक दक्षिण के इतिहास का प्रश्न है फरिश्ता से अधिक प्रामाणिक और विश्वस्त लेखक है और इस लेखक ने उसमें सम्बन्धित किसी ऐसे ब्राह्मण का उल्लेख नहीं

पड़ा और सुल्तान की सेनाएं लोभान्ध होकर लूटमार, हत्याकार, अत्याचार और जनता की दर्दनाक करुण कराहें को पीछे छोड़ती हुई विजयनगर के दुर्ग से टकरायीं। राय को अपने दुर्ग की सुदृढ़ता पर भरोसा था लेकिन भाग्य साथ नहीं दे रहा था। सुल्तान ने एक चाल चली और राय उसे समझ न सका। तुंगभद्रा के पार उतरती मुस्लिम सेनाओं को भागता हुआ समझ कर हिन्दू सैनिकों ने दुर्ग के द्वार उन्मुक्त कर दिये और उनका पीछा किया। सुल्तान यही चाहता भी था, एकाएक उसकी सेनाएँ लौट पड़ीं और विजयनगर की स्थिति काबू से बाहर हो गया। निर्ममतापूर्वक कत्लेआम जारी किया गया और शहर को भारी क्षति पहुँचाई गई। हार कर राय को सन्धि करनी पड़ी। विजेता सुल्तान गुलबर्गा वापस लौट गया लेकिन हृदय के ऊपर एक भार लेकर। विजयनगर के राजकीय रक्षक ने विजेता के मर्म में ठेस पहुंचायी थी जिसके कारण उसने भविष्य में कभी भी निर्दोष व्यक्तियों की हत्या न करने की शपथ ली।

मुहम्मद शाह के शासन काल में छिटपुट विद्रोह की घटनाएं भी की गयीं लेकिन उनमें कोई दम न था। फरिश्ता ने मुहम्मद शाह को अपनी प्रशंसा का पात्र बनाया है क्योंकि वह 'दीन' का कट्टर अनुयायी था पर डा० ईश्वरीप्रसाद के शब्दों में "दानवीय अत्याचारों में आनन्द का अनुभव करने वाला तथा गर्हित विलास क्रीड़ाओं में मग्न रहने वाला मुहम्मद शाह वास्तव में उस प्रशंसा के योग्य नहीं है जो फरिश्ता ने उस पर बरसायी है।"

युद्ध नीति की भाँति गृहनीति में भी मुहम्मद शाह निर्दयता और क्रूरता का हामी था। उसके आदेश से सार्वजनिक मदिरालयों का निषेध कर दिया गया और राजकीय नियमों के उल्लंघन के लिए कठोर दण्ड व्यवस्था की गयी। अन्त में १७ वर्ष ७ महीनों तक शासन करने के पश्चात् १३७३ में उसकी मृत्यु हो गयी।

मुजाहिद शाह—मुहम्मद शाह की मृत्यु के पश्चात् मुजाहिद शाह गद्दी पर बैठा। अपने शासन काल में मुजाहिद शाह ने जिस नीति का अनुसरण किया वह राज्य के लिए मंगलकारी नहीं सिद्ध हुई। उसने स्थानीय सरदारों के स्थान पर फारसी और तुर्की अमीरों का पक्षपात किया जिससे कलह और आन्तरिक फूट के बीज अंकुरित हो उठे। विजयनगर के विरुद्ध युद्ध और उससे वैमनस्य मुजाहिद शाह को विरासत में मिला था। बहमनी और विजयनगर के मध्य शत्रुता और युद्धों की दीर्घकालीन शृंखला का प्रधान कारण था रायचूर दोआब का प्रदेश। जिस प्रकार इंगलैण्ड के लिए फ्रान्स और जर्मनी के मध्य लम्बी अवधि तक युद्ध होते रहे उसी प्रकार इस प्रदेश को अधिकृत करने के लिए भी उपरोक्त दोनों राज्यों की शक्तियाँ निरन्तर जूझती रहीं। विजयनगर इन दिनों अपनी प्रगति के पथ पर था और यह काल उसके गौरवसूर्य का मध्याह्न था। मुजाहिद ने दो बार विजयनगर पर आक्रमण किया। पहली बार उसे असफलता मिली लेकिन दूसरी बार उसने नगर को घेर लिया परन्तु हिन्दुओं ने भी जिस शक्ति और शौर्य का प्रदर्शन किया उससे मुस्लिम सेना की आँखें खुल गयीं और उन्हें भारी पराजय मिली। शाही सेना की यह पराजय और सुल्तान की असन्तोष-

१३. सरपर्दाधर—अन्तःपुर हरम का रक्षक

शासन को व्यवस्थित कर उसने राज्य विस्तार की ओर ध्यान दिया और काफिरों के प्रदेशों पर हसन के आक्रमणों की जो बाढ़ आयी उसमें एक के बाद एक राज्य अधिकृत होता चला गया। शाही सेना द्वारा विजित कान्धार पुनः अधिकार में ले लिया गया और बीदर तथा मालखण्ड पर भी विजय पताका फहरा उठी। मुहम्मद तुगलक की मृत्यु ने अनेक चिन्ताओं का हल प्रस्तुत कर दिया और निर्द्वन्द्व होकर स्वेच्छानुसार कोई भी काम करने को स्वतन्त्र हो गया। उपरोक्त प्रदेशों के अतिरिक्त गोआ, दभोल, कोलापुर तथा तेलगाना तक के प्रदेश बहमनी साम्राज्य की छत्रछाया मे ले लिए गये। अपने अन्तिम दिनों तक में बहमन शाह दौलताबाद के पूर्व में मेगौर तक तथा उत्तर में वेनगगा से दक्षिण में कृष्णा नदी की सीमा रेखाओं के मध्य मे विस्तृत विशाल भू-भाग का स्वामी था। सन् १३५६ ई० म बहमन शाह का देहान्त हो गया।

प्रथम मुहम्मद शाह—सुल्तान अलाउद्दीन शाह की मृत्यु के उपरान्त मुहम्मद शाह प्रथम गद्दी पर बैठा। मुहम्मद शाह बहमनी राज्य की तवारीख में एक योग्य शासक की अपेक्षा एक योद्धा के रूप में अपने युद्धों के लिए ही प्रसिद्ध हे। मन्त्री सैफुद्दीन गोरी के हाथों में आन्तरिक शासन-व्यवस्था का उत्तरदायित्व सोप कर सुल्तान स्वय अपने पिता की विजय परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए अविछिन्न युद्ध परम्परा में सलग्न हो गया। उसके शासन-काल में ही तेलगाना और विजयनगर के विरुद्ध उस युद्ध परम्परा का श्री गणेश हुआ जो उसकी मृत्यु के बाद ही नही प्रत्युत बहमनी साम्राज्य के पतन के पश्चात् भी अटूट रही। उसके उत्तराधिकारियों ने इस युद्ध शृङ्खला को अपने पैतृक अधिकार के रूप में ग्रहण किया और वर्षों तक भयकर युद्ध के ये घनघोर बादल दोनों राज्यों के ऊपर छाये रहे। मुहम्मद शाह जब तेलगाना और विजयनगर की ओर ससैन्य उन्मुख हुआ तो हिन्दुओं ने डट कर सामना किया और अपने प्राणों की आहुतियाँ चढ़ा दीं लकिन विजय श्री मुहम्मद के पक्ष म रही और परिणामस्वरूप विजित प्रदेश ध्वन्सावशेषों में परिवर्तित कर दिया गया। मुहम्मद शाह शान्ति से बैठने वाला व्यक्ति नहीं था। २० वर्ष बाद उसने पुनः तेलंगाना और विजयनगर से मुठभेड़ ली। दो वर्षों के घमासान युद्ध के पश्चात् तेलगाना के भाग्य ने पलटा खाया और उसे हार स्वीकार कर गोलकुण्डा का दुर्ग तथा हरजाने के तौर पर ३३ लाख मुद्रायें देने को विवश होना पड़ा। विजयनगर के सम्बन्ध में भी कुछ इसी प्रकार की घटना घटी। युद्ध के प्रारम्भिक दिवसों में विजयनगर के राय ने ३०,००० अश्वारोहियों और १,००,००० पैदल तथा ३०० हाथियों की सेना की सहायता से सुल्तान की सेना के दाँत खट्टे कर दिये। उसके राज्य मे घुस कर रायचूर दोआब का प्रदेश वीरान कर दिया। पाठकों को स्मरण रहे कि कृष्णा तथा तुगभद्रा के मध्य का प्रदेश ही रायचूर दोआब कहलाता था। इसके उत्तर मे सुल्तान ने क्रोधित होकर पूर्ण शक्ति से विजयनगर पर चढ़ाई की लेकिन हिन्दू सैनिकों ने भी रणस्थल में अपने पग जमा दिये परन्तु एकाएक विजयनगर के भाग्य नक्षत्र कुछ धूमिल हो उठे और सुल्तान की सेना में नयी सैन्य सहायता आ पहुँचने के कारण हिन्दू सैनिकों को पराजित होन

भी अधिक भयानक युद्ध छिड़ा। इतिहास मे यह युद्ध सुनार-पुत्री के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। विजयनगर के राय ने बहमनी राज्य मे स्थित मुद्गल के एक सुनार की पुत्री पर आसक्त होकर उस स्थान पर आक्रमण किया। फिरोज शाह ने इसका जबर-दस्त उत्तर दिया और विशाल रणवाहिनी लेकर विजयनगर पर टूट पड़ा और बङ्कापुर दुर्ग पर अधिकार तथा ६० हजार हिन्दुओं को बन्दी कर लिया। राय की स्थिति डावाँडोल हो उठी और उन्हे विवश होकर विजेता द्वारा प्रस्तुत की गयी अपमानजनक शर्तों को स्वीकार कर शान्ति का क्रय करना पड़ा। सुल्तान ने राजा की कन्या से विवाह किया और सुनार कन्या का विवाह शाहजादा हसन खाँ से कर दिया गया।

इतना सब होने के बाद भी सुल्तान शान्ति से नहीं रह सका। १४२० ई० मे फिरोज ने पगल दुर्ग पर अकारण ही आक्रमण कर दिया जिससे विजयनगर के साथ पुन. युद्ध आरम्भ हो गया लेकिन इस बार सुल्तान का मनचाहा नहीं हो सका। विजय श्री हिन्दुओं के पक्ष मे रही। परिणामस्वरूप मुस्लिम प्रदेशों मे बरबादी और विनाश नृत्य कर उठे। हिन्दुओ ने मुसलमानो से अपना बदला लेने मे किसी प्रकार की कसर नहीं छोड़ रखनी चाही।

अहमद शाह—१४२२ ई० मे सुल्तान फिरोज शाह की मृत्यु के पश्चात् अहमद शाह सिंहासन का स्वामी हुआ। युवराज हसन खाँ को केवल अनुपम सुन्दरी सुनार पुत्री से ही सन्तोष करना पड़ा। अहमद शाह ने १३ वर्ष राज्य किया और वारगल तथा विजयनगर के विरुद्ध नयी विजयों का सेहरा भी उसके माथे बँधा। विजय-नगर के प्रदेशो को लूट तथा उजाड़ करके और नर सहार के द्वारा फिरोज शाह की पराजय का प्रतिशोध किया गया। १४२५ ई० मे वारङ्गल के ऊपर अभियान हुआ। वारङ्गल का हिन्दू राजा युद्ध में खेत रहा और वारगल का राज्य बहमनी सल्तनत के विशाल उदर मे विलीन हो गया। अहमद शाह ने कोकण, मालवा और गुजरात के विरुद्ध भी अनिर्णीत युद्ध छेड़े। क्रूरकर्मा यह सुल्तान अपने विजयोत्सव को भीषण नर सहार के द्वारा सम्पन्न किया करता था। अहमद शाह ने बीदर नगर की नींव डाली और उसे राजधानी का गौरव प्रदान किया। शासन के अन्तिम काल मे तेलगाना में हिन्दुओ ने विद्रोह करने की असफल चेष्टा की थी। अन्त में १४३५ इस क्रूर और निर्ममहृदय सुल्तान की मौत हो गयी।

अलाउद्दीन द्वितीय—अहमद शाह के पश्चात् उसके ज्येष्ठ पुत्र अलाउद्दीन ने २२ वर्षों तक राज्य किया। आन्तरिक गृह कलह, पुत्री मलिजहाँ तथा भाई मुहम्मद खाँ के विद्रोह से काफी उलझन हुई। आन्तरिक सुव्यवस्था के निमित्त जब उसने कुछ विदेशियो को प्रोत्साहन और राजकीय सम्मान प्रदान किया तो कलह और अस-न्तोष घटने के स्थान पर बढ़ते ही गये। एक समय दक्षिण के अमीरो ने अपने विदेशी प्रतिद्वन्द्वियों को सहभोज में आमन्त्रित किया और भोजन के स्थान पर अत्याचार की तलवार तथा विनाश के शर्बत से उनका स्वागत किया जिसके परिणामस्वरूप १२०० अभिजात सैयद तथा ७ वर्ष से १७ वर्ष तक के अन्य १००० विदेशियो को तलवार के घाट उतार दिया गया।

चनक नीति दोनों ही सुल्तान के लिए काफी महँगी पड़ी। सुल्तान कत्ल कर दिया गया और दाऊद ने जो उसका चचेरा भाई था सिंहासन अधिकृत कर लिया लेकिन इस घटना के कुछ दिन बाद ही मुजाहिद की बहिन के नमाज के षड्यन्त्र से नव मस्तक दाऊद का सिर भी जमीन पर लोट गया।

मुहम्मद शाह द्वितीय—दाऊद के कत्ल के पश्चात् १३७८ में मुहम्मद शाह द्वितीय गुलबर्गा के सिंहासन का स्वामी हुआ। इस सुल्तान ने अपनी युद्ध से विमुख शान्तिप्रिय नीति से अमीरों और सरदारों में राज-भक्ति उत्पन्न की। इस काल में विजयनगर और बहमनी राज्य में पूर्व काल से अनवरत रूप से चली आने वाली युद्ध परम्परा को कुछ काल के लिये विश्राम मिला। मुहम्मद शाह धार्मिक प्रवृत्ति का, साहित्य प्रेमी और विज्ञान में अभिरुचि रखने वाला सुल्तान था। उसने अनेक मस्जिदों, तथा शिक्षा संस्थाओं का निर्माण किया और बहुत से कलाकारों को प्रश्रय दिया। एक बार राज्य में दुर्भिक्ष पड़ने पर मालवा और गुजरात से अनाज मँगाने के लिए दस हजार बैलगाड़ियाँ नियुक्त की थीं। शान्तिप्रिय सुल्तान मुहम्मद शाह अपने अन्तिम दिनों में शान्ति और चैन नहीं पा सका क्योंकि उसके पुत्र गयासुद्दीन और शम्सुद्दीन राज्य प्राप्ति के लिए अधीर हो उठे थे। १३९७ ई० में सुल्तान की मृत्यु के पश्चात् उसके उपरोक्त पुत्रों ने केवल ६ महीनों तक राज्य किया। इसके उपरान्त सुल्तान हसन शाह का पौत्र फिरोज शाह गद्दी पर बैठा।

फिरोजशाह—इस सुल्तान के विषय में इतिहासकारों में काफी मतभेद है। 'बुरहान-ए मासिर' के अनुसार वह एक न्यायप्रिय, उदार और दयालु शासक था। वह कुरान की प्रतिलिपियाँ बना कर तथा उसके हरम की स्त्रियाँ वस्त्रों पर बेल-बूटे काढ़ कर तथा उनको बेचकर जीवनयापन करतीं थीं। वह एक अद्वितीय शासक था और उसकी न्यायप्रियता के अनेक आख्यान इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित है। फरिश्ता का कथन इसके विपरीत है। उसके अनुसार फिरोजशाह एक मद्य व्यसनी तथा सङ्गीत का प्रेमी सुल्तान था। उसके हरम में नित्य ८०० स्त्रियाँ लाई जाती थीं। उपरोक्त दोनों मतों पर विचार करने से स्पष्ट पता चलता है कि दोनों ही कथन अतिशयोक्तियों से अतिरंजित है, हाँ इनसे इतना निष्कर्ष अवश्य निकलता है कि वह एक सरल और विनोदप्रिय प्रवृत्ति का सुल्तान था। आमोद-प्रमोद उसके जीवन का अंग था।

फिरोज शाह ने कुछ काल के लिए रुकी युद्ध परम्परा को पुन, आगे बढ़ाया और विजयनगर के विरुद्ध के बाजे फिर एक बार घनघोर गर्जन कर उठे। उसके शासन काल में दक्षिण भारत लगभग १० वर्षों तक भयंकर दुर्भिक्ष से ग्रस्त रहा लेकिन वारंगल और विजयनगर के विरुद्ध युद्धों की गति भी तीव्र रही। परिणामस्वरूप वारंगल का दुर्ग अधिकृत कर लिया गया, इससे एक ओर बहमनी राज्य की सीमायें गोदावरी के मुहाने पर स्थित राजमहेन्द्री तक पहुँच गयीं और अन्य ओर विजयनगर के राजकुमार बुक्का का षड्यन्त्र द्वारा वध कर दिया गया और पिता हरिहर द्वितीय को ४००,००० पौ० युद्ध क्षति पूर्ति के रूप में देना पड़ा। लेकिन विजयनगर के साथ युद्धों का सिलसिला यहीं समाप्त नहीं हो जाता। १४०६ में विजयनगर के साथ

अलाउद्दीन का जीवन भी रक्तपात, नर-संहार की क्रूर घटनाओं से भरा है। यद्यपि आरम्भ में उसने अत्यन्त शान्त और उदार दृष्टिकोण अपनाया था परन्तु क्रमशः वह अपने पूर्वजों की नीति का अनुगामी बन गया। भाई मुहम्मद शाह के विजयनगर की सहायता से विद्रोह करके रायचूर, दोआब, बीजापुर तथा निकटवर्ती प्रदेशों पर अधिकार कर लेने के बाद भी अलाउद्दीन ने मुहम्मद को पराजित कर क्षमा ही नहीं प्रत्युत रायचूर का प्रदेश जागीर में दे दिया था। कुछ काल बाद ही नये सिरे से सैन्य संगठन और शक्ति संवर्धन कर विजयनरेश देवराय द्वितीय रायचूर प्रदेश पर चढ़ बैठा। अलाउद्दीन ने भी डट कर सामना किया। घमासान युद्ध होने के बाद भी कोई निर्णय नहीं निकल सका। फरिश्ता तथा 'बुरहान-ए-मासिर' के लेखक, दोनों ने किसी निर्णयात्मक युद्ध का उल्लेख नहीं किया है। हाँ कुछ मास के घेरे के बाद दोनों में सन्धि हो गयी और देवराय ने कर देना स्वीकार कर लिया। १४३६ ई० में सुल्तान ने कोंकण प्रदेश को भी हस्तगत कर लिया और वहाँ के हिन्दू राजा की पुत्री से विवाह कर निकट सम्बन्ध की स्थापना की।

अलाउद्दीन के शासन के विषय में फरिश्ता लिखता है कि "उसने अपने राज्य के सभी भागों में सच्चे न्यायाधीश तथा जनता के नैतिक जीवन की जाँच करने के लिए पदाधिकारी नियुक्त किये। यद्यपि वह स्वयं मद्यपान करता था परन्तु दूसरों के लिए मदिरा तथा आखेट का निषेध कर दिया। उसने प्रमादी तथा आवारा लोगों की गरदनों में जञ्जीर बँधवायी और उनसे सड़कें साफ करने के लिए मजदूरों तथा मेहतरों का काम लिया जिससे वे सुधर कर जीविका कमाने योग्य हो जावें अथवा देश छोड़ कर चले जायें। यदि कोई व्यक्ति चाहे वह किसी भी स्थिति का हो सुधार तथा चेतावनी के बावजूद मदिरा पान करता हुआ पकड़ा जाता तो पिघला हुआ शीशा उसके गले में डाल दिया जाता था।"

हुमायूँ—सन् १४५७ ई० में अलाउद्दीन का देहान्त हो गया और उसके बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र हुमायूँ सिंहासन पर बैठा। वह एक अत्यन्त क्रूर और निर्दय शासक था। फरिश्ता लिखता है :

हुमायूँ शाह ने अपने को क्रूर प्रवृत्तियों में लय कर दिया। लोगों को यातनाएँ देने के लिए उसने चौक में खूँखार हाथियों तथा हिंस्र पशुओं का प्रबन्ध कर उबलते हुए तेल तथा पानी के कड़ाहों की व्यवस्था की। उसने अपने भाई हसन को एक भयंकर चीते के सामने फिंकवा दिया। चीता उसे निगल गया और स्वयं छज्जे पर बैठा दर्शक बना रहा। सुल्तान ने यातनाएँ देने के लिए नये-नये ढंग निकाले और युवकों, वृद्धों, पुरुषों तथा स्त्रियों को पीड़ित किया ..वह छोटे से छोटे अपराधों के लिए महल की परिचारिकाओं को मृत्यु दण्ड की आज्ञा देता था। यदि कभी किसी अमीर को उसके सामने उपस्थित होना पड़ता तो वह अपने परिवार से अन्तिम विदा लेकर आता था।

डा० ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में "परन्तु इस हृदयहीन शासक का सौभाग्य था कि उसको ख्वाजा महमूद बिन मुहम्मद गावान जीगिलानी के रूप में, जो इतिहास में महमूद

१४७० में रूसी सौदागार एथनेसियस निकितिन बीदर आया और उसने बहमनी राज्य के विषय में अनेक ज्ञातव्य बातें लिखीं।

महमूद गावाँ ने राज्य विस्तार के साथ-साथ शासन-व्यवस्था की ओर भी समुचित ध्यान दिया। उसने राज्य के शासन सम्बन्धी प्रत्येक विभाग में अभूतपूर्व सुधार किये और उनका सम्यक् प्रबन्ध किया। भ्रष्टाचार को कठोरतापूर्वक समाप्त करने का प्रयास किया गया। इस प्रकार महमूद ने राज्य की स्थिति दृढ़ करने में किसी प्रकार की कोई कोरकसर नहीं उठा रखी।

महमूद गावाँ—इसके पूर्व कि बहमनी राज्य के परवर्ती शासकों का वर्णन किया जाय हम अपने पाठकों को महमूद गावाँ के विषय में कुछ बता देना चाहते हैं।

मध्य काल के राजनीतिज्ञों और प्रशासकों में महमूद गावाँ एक उच्च और विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। बहमनी राज्य में १८० वर्षों के जीवन काल में सैफुद्दीन गोरी और महमूद गावाँ ही दो कुशल और प्रतिभाशाली प्रशासक हुए जिनमें महमूद निर्विवाद रूप से महान ठहरता है।

गावाँ के पूर्वज फारस में गावाँ नामक स्थान के निवासी और गिलन के शाह के मन्त्री थे। युवावस्था में महमूद गावाँ व्यापार के निमित्त भारत आया और भ्रमण करता हुआ दक्षिण पहुंचा। सुल्तान हुमायूँ से उसका परिचय हुआ और सुल्तान ने उससे प्रभावित होकर उसे उच्च पदाधिकारी बना दिया।

महमूद गावाँ ने लगभग २५ वर्षों तक बहमनी सुल्तानों की सेवा की। इस अवधि में उसने अपनी पूरी सामर्थ्य, पूरी कुशलता और पूरी प्रतिभा बहमनी राज्य को सुदृढ़ करने में लगा दी। राजनैतिक दलों की कीचड़बाजी से मुक्त रह कर उसने दिन-रात राज्य के मंगल की चिन्ता की। उसने राज्य की सीमाओं का प्रसार किया। बेलगाँव का दुर्ग, गोआ तथा कोडपल्ली पर अधिकार किया और कांजीवरम पर भी विजय पताका फहरायी। कोङ्कन को राज्य में आत्मसात करने से बहमनी राज्य के शासित भू भाग में काफी वृद्धि हो गयी एक ओर यदि महमूद गावाँ ने अपने अभियोगों द्वारा राज्य की परिधि विस्तृत की तो दूसरी ओर उचित शासन-व्यवस्था के द्वारा विशाल राज्य के शासन में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों की सम्भावना का भी निराकरण कर दिया।

महमूद गावाँ ने प्रान्तों का नवीन संगठन किया। प्रान्तों के अधिपति गवर्नरों के अधिकार सीमित कर दिये। सैनिकों का वेतन बढ़ा दिया गया और राजकीय कोष से नगद देने की व्यवस्था हुई। उच्च पदाधिकारियों को जागीर देने की प्रथा बन्द कर दी गई। भूमिकर की समुचित व्यवस्था के लिए गाँवों की भूमि की नये सिरे से नाप-जोख करायी। इसके अतिरिक्त महमूद गावाँ ने प्रायः प्रत्येक विभाग में महत्वपूर्ण सुधार प्रस्तुत किये।

महमूद गावाँ एक असाधारण प्रतिभाशाली शक्तिवाला व्यक्ति था। राजकीय अनुग्रह स्वीकार करने के पश्चात् उसने निःस्वार्थ रूप से अपना जीवन राज्य के हितों की रक्षा में अर्पण कर दिया। इतने बड़े पद और अधिकार का स्वामी [illegible] भी प्रतिदिन १२ 'लारियों' व्यय करने वाले चटाई पर शयन करने

पहुँचाई थी। १६५५ में शिवाजी ने बीजापुर के सुल्तान को गहरी हार दी और १६८५ ई० में औरङ्गजेब ने उसको समाप्त कर दिया।

अहमदनगर

१४६८ ई० में अहमदनगर में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना मलिक अहमद ने की। उसकी मृत्यु के बाद १५०६ ई० में बुरहान निजाम शाह गद्दी पर बैठा और उसने १५५३ ई० तक राज्य किया। गद्दी पर बैठने के समय वह अल्पावस्था का एक किशोर था, बड़े होने पर उसका विवाह बीजापुर की शाहजादी से हुआ था। इसने विजयनगर के राय से मिलकर बीजापुर पर आक्रमण किया था। उसके पश्चात् हुसैन शाह शासक हुआ जिसने विजयनगर के विरुद्ध बने सत्र में भाग लिया था। इतिहास प्रसिद्ध नायिका चाँद बीबी इसी हुसैन शाह की कन्या थी जिसका विवाह बीजापुर के सुल्तान अली आदिल शाह के साथ हुआ था। पति की मृत्यु के पश्चात् वह पुनः अहमदनगर चली गई। १६०० ई० में जब राजकुमार मुराद ने एक विशाल सेना लेकर अहमदनगर पर आक्रमण किया तो चाँद बीबी की वीरता, उसके साहस और रण-कौशल ने मुगलों को दाँतो तले अँगुली दबाने पर विवश कर दिया। राजकुमार को सन्धि करनी पड़ी लेकिन १६०० ई० में चाँद बीबी की मृत्यु हो गयी और शाही सेना ने अहमदनगर पर अधिकार कर लिया।

गोलकुण्डा

कुतब शाह इसका संस्थापक था। कुतुब शाह पहले तेलगाना का गवर्नर था। वह राजभक्त गवर्नर था लेकिन बहमनी सुल्तान के मन्त्री कासिम बरीद से वैमनष्य हो जाने के कारण १५१८ ई० में स्वतन्त्र हो गया। ६० वर्ष की अवस्था में उसके पुत्र जमशेद ने उसका वध कर दिया। १६१६ ई० तक चलने वाले इस राज्य वंश का औरगजेब ने अंत कर दिया।

बीदर

बहमनी राज्य के पतन काल में शनै-शनै राज्य की समस्त शक्ति मन्त्री कासिम बरीद के हाथों में केन्द्रित हो गयी थी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र अमीर बरीद ने मन्त्रित्व का भार सँभाला। वह अवसर की ताक में रहा और जब बहमनी वंश का अन्तिम सुल्तान कलीमउल्ला बीजापुर भाग गया तो १५२६ ई० में अमीर ने अपने को बीदर का शासक घोषित कर दिया। इस वंश का शासन अन्य राज्यों की अपेक्षा कम काल तक रहा। १६०६ ई० में यह बीजापुर राज्य में मिला लिया गया।

खानदेश

ताप्ती नदी की घाटी में स्थित खानदेश एक छोटा-सा राज्य था जिसके उत्तर में विन्ध्याचल की शैल श्रेणियाँ, दक्षिण में दक्षिण के पठार और बहमनी का राज्य, पश्चिम में गुजरात और पूर्व में बरार राज्य था। इतिहास के विद्यार्थियों को स्मरण होगा कि अलाउद्दीन ने इस पर अपनी विजय वैजयन्ती उड़ायी थी और तब से फिरोज तुगलक के काल तक यह दिल्ली सल्तनत के अधीन एक प्रदेश था। १३७० ई० में फिरोज ने खानदेश का शासन अपने निजी सेवक मलिक रजा को सौंपा और उसे फारुखी अर्थात्

वर्षीय पुत्र सिंहासनासीन हुआ। वह एक विलासी और दुराचारी शासक था। शासन व्यवस्था का भार मन्त्री बरीद के हाथों में सौंप कर वह अपनी विलासिता, दुराचरण और ऐय्याशी मे डूबा रहा जिसका परिणाम यह हुआ कि अपने शासक का अनुकरण कर प्रजा भी विलासीन हो गई। सम्मानित सन्त सुरापात्रों में अपने वस्त्रों को डुबाने लगे और धर्मोपदेशक विद्यालयों को त्याग कर सुरागृहों में जा पहुँचे और पान गोष्ठियों का सभापतित्व स्वीकार करने लगे।" राज्य की इस स्थिति का फल भी शीघ्र ही सामने आया। राज्य शक्ति में घुन लगा तथा उसको निर्बल देखकर प्रान्तीय शासकों की बन आयी और वे एक के बाद एक करके अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करने लगे। स्वतन्त्रता के इस आन्दोलन का उद्घाटन किया। बरार के गवर्नर फतेह उल्ला इमाद शाह ने जिसने सर्वप्रथम अपनी आजादी का ऐलान किया। युसुफ आदिल शाह ने बीजापुर में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। उसके पश्चात् अहमद-नगर के प्रान्तीय शासक मलिक अहमद ने अहमदनगर में स्वतन्त्र राज्य की नींव डाली। इसी प्रकार गोलकुण्डा में स्वतन्त्र राज्य कायम हुआ। १५१८ ई० में बहमनी साम्राज्य के शासक महमूद शाह के पश्चात् शासकों का नाम गिनाने के लिए तीतीन और शासक अवश्य हुये लेकिन वे नाम मात्र को ही शासक थे। अन्तिम शासक कलीम उल्ला की मृत्यु के पश्चात् भारतीय इतिहास के रगमंच से बहमनी राज्य वश की इति हो गयी।

बहमनी राज्य का विस्तृत प्रदेश निम्न पाँच स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त हो गया :—

१—बरार में इमादशाही राज्य-वश का राज्य
२—बीजापुर में आदिलशाही वश का राज्य
३—अहमदनगर में निजामशाही वश का राज्य
४—गोलकुण्डा में कुतुबशाही वश का राज्य
५—बीदर में बरीदशाही का राज्य

बहमनी राज्य के शासन पर एक विहंगम दृष्टि

आयोजित हत्याओं, भीषण नर संहारों, विजित प्रदेशों की क्रूरतापूर्वक लूट-मार, धार्मिक दृष्टि से अत्याचारों, समय-समय पर होने वाले अमीरों के षड्यन्त्रों, राज-सभा में विलासिता के नग्न नृत्यों तथा अनन्त रक्तपात से युक्त दीर्घकालीन परम्परा बद्ध युद्धों से रञ्जित बहमनी राज्य में १८० वर्षों के इतिहास में १४ सुल्तानों ने राज्य किया। इनमें अधिकाश शासक दानविक प्रवृत्ति के थे और रक्तपात करने, धार्मिक असहिष्णुता के शिकार होकर देवालयों को ध्वस कर देने और विजित प्रदेशों में अमानुषिक सागर प्रवाहित कर देने में आनन्द का अनुभव करते थे। शासन व्यवस्था में महमूद गावाँ के पूर्व कोई भी महत्त्वपूर्ण प्रयोग नहीं किये गये। हिन्दुओं के प्रति कभी भी उदार नीति का प्रयोग न कर सकने के कारण उन्हें केवल छोटे-छोटे ही पद दिये गये। रूसी सौदागर निकितन ने तत्कालीन स्थिति का सुन्दर चित्रण किया है। उसके वर्णनानुसार देश घना बसा था, कृषि की अवस्था सन्तोषजनक थी। सारे देश में

अध्याय ५०

हिन्दुओं का राजनैतिक पुनरुत्थान

विजयनगर साम्राज्य

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना—पाठकों को स्मरण होगा कि भारत में इस्लाम के आगमन के बाद काफी समय तक सुरक्षित दक्षिण के हिन्दू राज्यों को खिल्जी सुल्तान अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफूर ने अपने सशस्त्र अभियानों के द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया था। यादवों, काकतीयों, होयसलों तथा पाण्ड्यों ने एक के बाद एक मुस्लिम सत्ता के सम्मुख सिर झुका कर उसको अपना अधिपति स्वीकार कर लिया था। पश्चिमी तट पर स्थित केरल राज्य भले हो इस दिशा में एक अपवाद बना रहा। परन्तु मुस्लिम सेनाओं के दक्षिण अभियानों ने रक्तपात, लूट-मार, मौत और बरबादी का ताण्डव नृत्य कराते इन विजित प्रदेशों की स्वतन्त्रता का अपहरण अवश्य किया और इन प्रदेशों के नरेशों ने दिल्ली सल्तनत का स्वामित्व भले ही स्वीकार किया परन्तु अपार धन-राशि की उपलब्धि करने और विजेता होने का गौरव अनुभव करने के सिवाय दिल्ली के सुल्तानों ने इन राज्यों की सम्यक् शासन-व्यवस्था करने की दिशा में कोई महत्वपूर्ण चरण नहीं उठाया। वे दिल्ली से दूरस्थ इन प्रदेशों को शासन की दृष्टि से गवर्नरों के हाथों में सौंप कर और समय समय पर सैनिक सहायता तथा वार्षिक कर मात्र प्राप्त करके सन्तुष्ट से रहने लगे। दिल्ली सल्तनत के प्रतिनिधि शासकों ने अपने-अपने प्रदेशों में जिस मनचाही नीति का प्रयोग किया उससे वे लोकप्रिय नहीं हो सके। "काकतीय तथा होयसल राज्यों के अन्तिम उन्मूलन से पहले उनके राजाओं, प्रतापरुद्र द्वितीय तथा वीर बल्लाल तृतीय ने एक ऐसी ज्योति जगा दी थी जो विजयनगर के पतन से पहले कभी नहीं बुझ सकी।"

मुहम्मद तुगलक के अन्तिम दिवसों से ही दिल्ली राज ने अराजकता, अव्यवस्था तथा विद्रोहों की स्थिति का सामना करना प्रारम्भ कर दिया था। राज्य की इसी डावाँडोल स्थिति से लाभ उठाकर १३३५ ई० में जलालुद्दीन अहसानशाह ने विद्रोह करके मदुरा में स्वतन्त्र राज्य वंश की स्थापना की, जिनका अनुकरण करते हुए अगले वर्ष ही यादववंशीय संगम के पुत्र ने इतिहास-प्रसिद्ध विजयनगर साम्राज्य की नींव डाल दी। इस महान राज्य की उत्पत्ति के विषय में 'ए फारगटन-एम्पायर' नामक ग्रन्थ में सीवेल ने जिन सात अनुश्रुतियों का उल्लेख किया है उसमें सर्वाधिक विश्वसनीय अनुश्रुति के अनुसार हरीहर तथा बुक्का नामक दो भाइयों को इस साम्राज्य की स्थापना का श्रेय है। वारंगल नरेश प्रतापरुद्र के कोषागार में नियुक्त ये दोनों भाई १३२३ ई० में वारंगल के पतन के पश्चात् रायचूर प्रदेश के अनागोंडी के शासक की सेवा में चले गए। परन्तु दुर्भाग्य ने पीछा नहीं छोड़ा और शीघ्र ही अना-

भाग्यशाली की उपाधि दी। फिरोज़ की मृत्यु के बाद दिल्ली राज्य में अव्यवस्था अराजकता और विद्रोहों की जो भयकर आँधियाँ चली उनकी पुनरावृत्ति करना व्यर्थ होगा। मलिक रजा ने दिल्ली की इस सुकुमार स्थिति से लाभ उठाकर और मालवा के दिलावर खाँ का अनुकरण करते हुए अपने को खानदेश का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया और दिल्ली से अपने वैधानिक सम्बन्ध तोड़ लिए।

मलिक रजा एक महत्वाकाक्षी सुल्तान था। उसने राज्य विस्तार का प्रयास किया और इस प्रयास में वह गुजरात के मुजफ्फर शाह से भिड़ गया। मुजफ्फर शाह ने उसे कई युद्धों में पराजित किया और अन्त में सन्धि हो गई। महत्वाकाक्षी होने के साथ ही मलिक रजा एक शान्तिप्रिय सुल्तान था। हिन्दुओं के प्रति उसने धार्मिक सहिष्णुता का व्यवहार किया। प्रजा की उन्नति और उसकी सुख-शान्ति का उसने भरपूर प्रयास किया। सन् १३९९ में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मलिक नसीर गद्दी पर बैठा। उसने करीब ३८ वर्षों तक शासन किया। उसके शासन-काल की महत्वपूर्ण घटना आसा नामक हिन्दू सामन्त से असीरगढ़ का दुर्ग छीन लेना है। १४३७ में मलिक नसीर स्वर्ग सिधार गया। उसकी मृत्यु के बाद परवर्ती शासकों के काल में गुजरात से छिटपुट युद्धों को छोड़कर कोई महत्वपूर्ण घटनायें नहीं घटीं। खानदेश के परवर्ती शासक, अयोग्य और निर्बल सुल्तानों की एक शृंखला है जिनके शासन में खानदेश की व्यवस्था और शक्ति के बन्धन शिथिल होते ही गये और अन्त में १६०१ में अकबर ने दक्षिण के सिंहद्वार असीरगढ़ दुर्ग को जीत कर खानदेश पर अपने प्रभुत्व का सिक्का जमा दिया और खानदेश मुगल साम्राज्य का एक अंग बन गया।

खानदेश अपने असीरगढ़ दुर्ग (जो सैनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था) के कारण अत्यधिक प्रसिद्ध था। सुल्तान आदिल के शासन-काल में खानदेश ने पर्याप्त व्यापारिक उन्नति की। उर्वर वसुन्धरा और बुरहानपुर का सोने की जाली का काम तथा मलमल का उद्योग खानदेश में उन दिनों कचन की वर्षा कर रहा था। इस प्रकार आस-पास के युद्ध-रत राज्यों से घिरे रहने पर भी खानदेश अपने पड़ोसी राज्यों के शासन में भौतिक दृष्टि से पर्याप्त समृद्धिशाली था। रशब्रुक विलियम्स लिखते हैं कि खानदेश इस बात का आदर्श उदाहरण है कि राजनीतिक कला के प्रयोग के बिना भी किस प्रकार किसी राज्य में सुखी और समृद्ध जीवन सम्भव हो सकता है।

[नोट—इन वशों का पूर्ण इतिहास द्वितीय भाग में दिया जायगा।]

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. बहमनी राज्य की स्थापना किस प्रकार की गई थी और इसके पतन के पश्चात् किन स्वतन्त्र राज्यों का निर्माण इसके स्थान पर हुआ था ?

२. बहमनी वश के सुल्तानों की सामान्य विशेषता पर प्रकाश डालते हुए बहमनी राज्य के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।

३. बहमनी राज्य के काल मे वहाँ की सामाजिक और आर्थिक अवस्था कैसी थी ?

४. खानदेश के फारुखी वंश का सक्षिप्त इतिहास लिखिए।

किये थे। शिलालेखों में बुक्का की अत्यधिक प्रशंसा की गयी है। १३७९ ई० में बुक्का की मृत्यु हो गयी।

हरिहर द्वितीय—बुक्का की मृत्यु के पश्चात् हरिहर द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ और उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। इसके पूर्व के हरिहर प्रथम और बुक्का दोनों ने राज्यमुकुट नहीं धारण किया था। बहमनी में इसका समकालीन शासक मुहम्मद शाह द्वितीय था जो एक शान्तिप्रिय शासक था। हरिहर द्वितीय भी एक शान्तिप्रेमी और धर्म सहिष्णु शासक था। फिर उसने साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने तथा सीमा विस्तार के पूर्ववर्ती शासको की नीति को आगे बढ़ाया। उसने केरल, तैलप आन्ध्र तथा कटक के राज्यों को जीतकर राज्य की दक्षिणी सीमा को काफी दूर तक पहुँचा दिया। इसका सेनापति गुन्द एक रणकुशल और पराक्रमी व्यक्ति था। हरिहर को अपनी प्रजा के हितों का अत्यधिक ध्यान रहता था। मन्दिरों तथा देवालयों के निर्माण के लिए दिए गये धन से हमें उसकी सहृदयता और उदारता का परिचय मिला है। १४०४ ई० मे हरिहर द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र राजा हुआ लेकिन वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो गया।

देवराय प्रथम—इसके अनन्तर देवराय प्रथम सिंहासन पर बैठा। देवराय को बहमनी शासकों से कई बार युद्ध करना पड़ा था। इन युद्धों मे फिरोज शाह ने उसे करारी मात दी जिससे विवश होकर देवराय को आत्मसम्मान बेचकर शान्ति और व्यवस्था क्रय करनी पड़ी। १४१० ई० में देवराय की मृत्यु हो गयी।

विजय राय—देवराय प्रथम के परलोकगामी होने के बाद उसका पुत्र विजयराय का राज्याभिषेक हुआ। इसने केवल ६ वर्षों तक राज्य किया। इसके शासन-काल में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी।

देवराय द्वितीय—विजय राय की मृत्यु के पश्चात् १४१६ ई० में देवराय द्वितीय राजसिंहासन पर बैठा। इस नरेश का जीवन दुर्भाग्यपूर्ण था कि प्राय सारा जीवन उसे बहमनी से युद्ध करते और क्षति उठाते बीता। शासन के प्रारम्भिक काल में फिरोज शाह ने अकारण उसे युद्ध करने पर लाचार कर दिया परन्तु देवराय ने भी उसे कड़ा उत्तर दिया और बुरी तरह परास्त किया। परन्तु २४ वर्ष बाद फिरोज शाह ने उत्तराधिकारी असमद शाह ने विजयनगर पर आक्रमण कर फिरोज शाह की पराजय का पूरी तरह बदला ले लिया और कई दिनों तक उसने स्त्री-पुरुषों, शिशुओं-वृद्धों के वध, लूटमार और विनाश का जो भयङ्कर नाटक खेला उससे उसकी क्रूरता, निर्ममता तथा अमानवीयता का सहज ही पता लगाया जा सकता है। उसके शासन-काल में दो विदेशी इटली 'काउन्ट निकोलो कोन्टी तथा फारस का राजदूत अब्दुर्रज्जाक, विजयनगर आये थे। इन विदेशी यात्रियों ने विजयनगर की राजसभा, राजधानी तथा राज्य के वैभव का आकर्षक वर्णन किया है।

निकोलो कोन्टी ने लिखा है—

"विजयनगर का अति विशाल नगर ढालू पहाड़ियों के निकट स्थित है। इसकी परिधि ६० मील है। इस नगर में प्रायः ९० हजार व्यक्ति शस्त्र-चालन में

गोंडी के भी मुसलमानों द्वारा आक्रान्त किये जाने पर ये दोनों भाई बन्दी करके दिल्ली भेज दिये गए। लेकिन रायचूर में मुस्लिम शासकों द्वारा शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित नहीं हो सकी। परिणामस्वरूप तुगलक सुल्तान ने उनको अपना प्रतिनिधि बना कर अनागोंडी का शासक बना कर इन्हें सौंप दिया। इन्हीं दोनों भाइयों ने प्रसिद्ध विद्वान विद्यारण्य की सहायता से १३३६ ई० में तुगभद्रा के तट पर विजयनगर की स्थापना की। नगर की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण भी किया गया। 'तुगभद्रा के किनारे पर, अनागोंडी के सामने सात प्राचीरों से रक्षित जिस दुर्ग का निर्माण किया गया था उसका प्रयोजन अधर्म की उन शक्तियों का अवरोधन करना था जिन्हें म्लेच्छों ने सारे देश में बिखेर दिया था।" हरिहर इस नये राज्य का प्रथम शासक था जिसने १३५३ ई० तक शासन किया।

हरिहर—शासक पद प्राप्ति के बाद हरिहर ने जिस कार्य की ओर प्रमुख रूप से ध्यान दिया। वह था राज्य की सीमाओं का विस्तार। उसने साहस के साथ इस दिशा में चरण बढ़ाये और परिस्थितियों ने उसका साथ दिया। १३४० ई० तक उसने कोकण का कुछ प्रदेश और मालाबार का समुद्र तट अपने अधिकार में कर लिया। १३४४ ई० में मुसलमानों को दक्षिण से उखाड़ फेंकने के लिए वारङ्गल के शासक पुन कृष्णनायक ने जो सघ बनाया था हरिहर ने उसमें भी भाग लिया था। १३४६ ई० में होयसल का राजा विरूपाक्ष बल्लाल मदुरा के सुल्तान से युद्ध करते हुये मारा गया और दक्षिण में दिल्ली सुल्तान का प्रभाव क्षयोन्मुख था इस स्थिति ने हरिहर को होयसल अधिकृत करने का मौन निमन्त्रण दिया और होयसल पर अधिकार करके चारों ओर विजय पर विजय प्राप्त करते हुए, हरिहर ने अपने मृत्यु काल १३५३ ई० तक विजयनगर राज्य की सीमाएँ उत्तर में कृष्णानदी से लेकर दक्षिण में कावेरी तक तथा पूर्व पश्चिम में समुद्र से समुद्र तक पहुँचा दीं। उत्तर में बहमनी का विस्तृत साम्राज्य था। दोनों राज्यों की सीमायें अत्यन्त निकट होने के कारण साम्राज्यवाद की दौड़ में दोनों एक दूसरे को कट्टर प्रतिद्वन्द्वी समझते थे जिसके परिणामस्वरूप २०० वर्षों से भी अधिक काल की एक अविच्छिन्न युद्ध परम्परा स्थापित हो गयी। दोनों राज्यों की भीषण टक्कर द्वारा जिस रक्तपात, लूटमार, निरपराध नरसंहार तथा प्रदेश उजाड़ कर देने वाली जिस विभिषिका को जन्म देती थी उसकी पुनरावृत्ति यहाँ आवश्यक है। पाठक उसे बहमनी राज्य के वर्णन में पढ़ चुके हैं। एक कुशल शासक की स्थिति से हरिहर ने प्रान्तों का विभाजन कर उन्हें कुशल और अनुभवी व्यक्तियों को सौंप दिया।

बुक्का—हरिहर की मृत्यु के पश्चात् बुक्का विजयनगर का शासक हुआ। हरिहर की भाँति वह भी एक कुशल सेनानायक तथा शासक था। वह एक उदारहृदय तथा धर्म-सहिष्णु शासक था। उसने जैनों तथा वैष्णवों पारस्परिक संघर्ष को बचाया था। एक योद्धा की हैसियत से उसने मुहम्मद शाह तथा मुजाहिद शाह से लोहा भी लिया था। अभिलेखों के अनुसार वह तीन समुद्रों का अधिपति था। चीन के सम्राट ताइ त्सू के दरबार में अपना दूत भेज कर चीन से सम्बन्ध स्थापित

लिया और अपने को विजयनगर का शासक घोषित कर दिया। नरसिंह ने राज्य के दृढ़ बनाने तथा सुव्यवस्था उत्पन्न करने के लिए भरसक प्रयत्न किये। परन्तु यह वश अधिक दिनों तक राज्य गद्दी पर कायम नहीं रह सका क्योंकि उसके उत्तराधिकारी को उसके सेनापति नरेश नायक ने १५०५ ई० में वध करके राज्य की शासन सत्ता अपने हाथों में ले ली। नरेश नायक ने इस प्रकार विजयनगर के एक नये शासक वश की स्थापना की।

कृष्ण देव राय—कृष्ण देव राय इस नवीन शासक वश का सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रतिभाशाली शासक था।

कृष्ण देव राय के शासन काल से विजयनगर के साम्राज्य के इतिहास का एक नया अध्याय आरम्भ होता है जिसमें यह साम्राज्य अपने विकास की मन्जिलें तय करता हुआ समृद्धि और उत्कर्ष के चरम सीमा तक पहुँच गया। एक दुर्धर्ष विजेता के रूप में उसने साम्राज्य विस्तार की नीति अपनायी और सर्वप्रथम मैसूर के सरदार गगा राज का गर्व खर्व कर उसके समस्त प्रदेश को विजयनगर साम्राज्य का एक अग बना लिया। १५१२ ई० में कृष्ण राय ससैन्य उड़ीसा की ओर अग्रसर हुआ और शीघ्र ही उसे धूल चटा दी, अन्त मे उड़ीसा नरेश को अपनी कन्या का विवाह उससे करके शान्ति मोल लेनी पड़ी। उत्तर मे इस समय बहमनी साम्राज्य के पतन के पश्चात् उसके भग्नावशेषों पर ही स्थापित हुये स्वतन्त्र राज्यों में परस्पर और हिन्दू शासकों के मध्य राज्य विस्तार के प्रश्नों को लेकर गहरी प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। इसी सुअवसर पर कृष्ण देव राय ने इस ओर दृष्टि फेरी और बीजापुर के सुल्तान आदिल शाह से भिड़ गया। १६ मई सन् १५२० ई० को भयकर युद्ध के पश्चात् विजेता कृष्ण देव राय की उन्मत्त सेनाओं ने भयङ्कर लूट मार प्रारम्भ कर दी और बीजापुर तहस-नहस कर दिया गया। इस युद्ध ने बीजापुर सुल्तान के साहस का दम तोड़ दिया जिससे वह कभी भी विजयनगर की ओर दृष्टि नहीं उठा सका।

कृष्ण देव राय के शासनकाल मे ही समुद्रतटवर्ती प्रदेशों मे स्थित पुर्तगालियों के गवर्नर अल्बुकर्क ने भटकल मे दुर्ग बनाने की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए एक प्रतिनिधि मण्डल विजयनगर की राजसभा में प्रेषित कर पुर्तगाल सरकार की ओर से विजयनगर के लिए मैत्री हस्त बढ़ाया। मुसलमानों का सामना करने तथा व्यापारिक दृष्टि से यह मैत्री सम्बन्ध अत्यन्त लाभदायक था। इस प्रकार कृष्ण देव राय ने अपने शौर्य और पराक्रम से साम्राज्य की सीमाओं का अत्यधिक विस्तार किया और आधुनिक मद्रास प्रेसीडेन्सी, मैसूर तथा दक्षिण कुछ रियासतों के प्रदेश को आत्मसात करता हुआ विजयनगर साम्राज्य पूर्व मे कटक, पश्चिम मे सलसिट तथा दक्षिण में सुदूरतम प्रदेशों तक विस्तृत हो गया।

कृष्णदेव राय एक योग्य, रूपवान और उदारहृदय तथा धर्मसहिष्णु शासक था। 'पाइस' नामक विदेशी यात्री ने राय का आँखों देखा जो वर्णन प्रस्तुत किया है उसमें उसकी सुन्दरता, भव्यता और आकर्षक व्यक्तित्व का स्पष्ट आभास हो जाता है। डा० ईश्वरी प्रसाद के शब्दों मे इस काल का इतिहास प्रतिपक्षी शक्तियों में प्रधानता

समर्थ हैं। इस देश के निवासी स्वेच्छानुसार कई विवाह करते हैं। स्त्रियाँ मृत पति के साथ जला दी जाती हैं। यहाँ का राजा सर्वाधिक शक्तिशाली है।

"यहाँ के राजा के अन्तःपुर में १२ हजार स्त्रियाँ है जिनमें ४००० तो उसके साथ प्रत्येक स्थान पर जाती हैं। इनसे रसोई का काम लिया जाता है। इतनी ही घोड़ों पर सवार होकर उसके पीछे चलती है जिनमें दो-तीन हजार इस शर्त पर उसकी पत्नियाँ चुनी जाती हैं कि उसके मरने पर वे सती हो जायेंगी।

"वर्ष में एक बार वे अपने देवता की 'रथयात्रा' नगर में अत्यन्त समारोह के साथ निकालते हैं जिसमें बहुमूल्य वस्त्रालङ्कारों से सुसज्जित युवतियाँ देवता को प्रसन्न करने के लिए स्तुतिगायन करती हैं। बहुत से लोग धार्मिक उत्साह के उमंग में आकर रथचक्रों के नीचे गिर कर प्राण दे देते हैं। इसे वे देवता को प्रसन्न करने वाली विधि मानते हैं।

"विशेष महत्वपूर्ण उत्सव वर्ष में तीन बार मनाये जाते हैं। इनमें एक अवसर पर वे सुसज्जित वस्त्रों में तीन दिन नृत्य गीत-तथा सह-भोज में बिताते हैं। अन्य अवसर पर वे मन्दिरों तथा अपने गृहों की छतों पर सरसों के तेल के दीपक जलाते हैं। तीसरे उत्सव पर परस्पर एक दूसरे पर केसर का रङ्ग छोड़ते हैं।"

निकोलो कोन्टी के समान ही अब्दुर्रज्जाक ने भी विजयनगर का बड़ा ही भव्य तथा विस्तृत वर्णन किया है।

"राजा सुसज्जित होकर ४० स्तम्भों वाले भवन में साटन के वस्त्र पहिन कर बैठता है। उसके गले में सच्चे मोतियों की एक माला है जिसका मूल्य आँकना कठिन है।" रज्जाक ने राजा की शरीर सम्पत्ति तथा उसके दरबार में पहुँचने, राजा के स्वागत करने, तथा भोजनादि के प्रबन्ध के विषय का क्रम से अत्यन्त रोचक वर्णन किया है। नगर का वर्णन करते हुये वह लिखता है :

"देश का अधिकांश भाग कृषि के योग्य और उर्वर है। इस राज्य में लगभग ३०० अच्छे बन्दरगाह हैं। दैत्याकार १००० हाथी तथा ११ लाख पदाति की सेना है। हिन्दुस्तान में वह सर्वाधिक सर्वाधिकार सम्पन्न राज्य है। नगर इस प्रकार का है कि विश्व में न कभी देखा और न सुना है। उसके चतुर्दिक सात प्राचीर हैं। बाहरी दीवाल से ५० गज आगे तक आदम कद पत्थर गड़े हुये हैं जिससे कोई भी पैदल तथा अश्वारोही बाहरी प्राचीर तक नहीं पहुँच सकता था। राजप्रासाद के समीप चार बाजार आमने-सामने स्थित हैं। इस नगर में मधुर सुगन्ध युक्त वृक्ष तोड़े हुये फूल किसी भी समय मिल सकते हैं। लगता है यह जीवन की आवश्यक सामग्री है। प्रत्येक विभिन्न व्यापारी मण्डल अथवा कारीगरों की दूकान एक दूसरे से समीप है। जौहरी अपने लाल और मोती आदि रत्न बाजार में खुले रूप से बेचते हैं। इस देश में ३ प्रकार की स्वर्ण मुद्राएँ एक रजत मुद्रा और एक तांबे की मुद्रा का प्रचलन है।"

१४४६ ई० में देवराय की मृत्यु हो गयी और उसके बाद उसके दो पुत्रों, मल्लिकार्जुन और विरूपाक्ष, ने क्रमशः कुछ दिनों राज्य किया। वे दोनों ही अत्यन्त अयोग्य थे जिससे राज्य में अव्यवस्था और कुचक्रों के चिन्ह प्रगट होने लगे थे। इसी मय तेलगाना के शक्तिशाली सामन्त सुलुव नरसिंह ने विरूपाक्ष से सिंहासन छीन

ही मुस्लिम राज्यों के एक सघ का सगठन किया गया जिसमें बरार को छोड़ कर शेष चारों राज्यों ने भाग लिया और विजयनगर साम्राज्य के विनाश के लिए प्रस्तुत की योजनाओं को कार्यान्वित किया जाने लगा।

तालीकोट का निर्णयात्मक युद्ध—सघ की सम्मिलित सेनाओं ने २५ दिसम्बर १५६४ ई० को दक्षिण की ओर कूच कर दिया और कुछ ही दिनों में वह कृष्णा नदी के किनारे तालीकोट के समीप जा पहुँची। साम्राज्य के ऊपर इतना बड़ा सकट उपस्थित था परन्तु राम राजा ने किसी भी प्रकार की चिन्ता के भाव नहीं प्रकट किये। वह मित्र राज्यों के दूतों से उपेक्षणीय भाषा का प्रयोग करता रहा और इस सगठित शत्रुता को महत्वहीन समझता रहा। अन्त में उसने दो विशाल सेनायें अपने भाइयों को सोप कर कृष्णा के तटों की रक्षा के लिए भेजा और स्वय भी शेष सैन्य शक्ति के साथ उनका अनुगमन किया। एक ओर विजयनगर साम्राज्य की सेनायें सागर की भाँति लहरा रही थीं तो मुस्लिम सेनायें भी दूसरी ओर टिड्डीदल की भाँति फैली हुई थीं। अनुभवी और वयोवृद्ध हुसेन निजाम शाह मित्र राज्यों की सेनाओं का सचालन कर रहा था। केन्द्र का भाग अपने अधीन रख कर उसने वाम और दक्षिण पार्श्वों के सचालन का भार कुतुबशाह तथा आदिल शाह को सौंपा। ९० वर्ष का रामराजा हिन्दू सेना का स्वय सचालन कर रहा था। दक्षिण के इतिहास में शायद ही कभी इतनी विशाल सेनाओ की भिड़न्त हुई हो। युद्ध प्रारम्भ हुआ। हिन्दुओं ने मुसलमानो पर बिजली की भाँति भयानक रूप से आक्रमण किया और मुस्लिम सेनाओं के वाम तथा दक्षिण पक्ष छिन्न भिन्न हो गये। दोनो पक्षो में असख्य योद्धा खेत रहे। रामराजा ने कोषाध्यक्ष को, डट कर युद्ध करने वाले को बहुमूल्य पुरस्कार वितरित करते रहने का आदेश दिया। इससे उत्साहित होकर हिन्दुओ ने फिर प्राणों का मोह त्याग कर रणोन्मत्त की भाँति मुसलमाना पर प्रचण्ड आक्रमण किया। युद्ध भयानक और अवर्णनीय था। हिन्दुओ के भयकर युद्ध ने शत्रुओ को पीछे हटने के सोचने पर विवश कर दिया और एक प्रकार से विजयनगर की जीत निश्चित कर दी। लेकिन होने वाला कुछ दूसरा ही था। विजयनगर का सौभाग्य रूठा हुआ था। विजय के निश्चित लगने वाले क्षणो में ही मुस्लिम तोपखानो ने पाँसा पलट कर विजयनगर की किस्मत का फैसला कर दिया। हिन्दू सेना अस्त-व्यस्त हो उठी और विजयनगर के मन्त्री और सेनानायक रामराजा बन्दी की स्थिति में हुसेन निजाम शाह के सामने था। निजाम शाह ने अपने हाथो से तलवार के एक झटके में उसका सिर धड़ से उड़ा दिया।

विजयनगर की विशाल सेना पराजित हो गई। राम राजा कत्ल कर दिया गया, लेकिन विनाश लिए हुए दुर्भाग्यपूर्ण नाटक का प्रदर्शन पूरा नहीं हुआ था। विनाश, बर्बर नर सहार और विध्वस की विभीषिका अपने मे छिपाये इस नाटक के शेष अक भी शीघ्र पूरे हो गए—विजयनगर की ईंट से ईंट बजा दी गई और शीघ्र ही वह ऐश्वर्यशाली, वभव सम्पन्न, तथा भव्य प्रासादो, गगनचुम्बी अट्टालिकाओं, और विशाल देव मन्दिरो वाला विजयनगर ध्वसावशेषो में परिवर्तित कर दिया गया। एक लाख से अधिक हिन्दू तलवार के घाट उतार दिये गये और अ पसख्य

के लिए रक्त-रंजित संघर्षों का इतिहास है और ऐसे काल में इतिहास के मध्य कृष्ण देव राय जैसे वीर एवं सुसंस्कृत शासक के चरित्र-चित्रण की ओर मुड़ते हुए निसन्देह अत्यन्त विश्रान्ति का अनुभव होता है। दक्षिण का कोई भी ऐसा हिन्दू अथवा मुसलमान शासक नहीं हुआ जो कृष्ण देव राय की तुलना में ठहर सके। सीवेल महोदय ने लिखा है, कृष्ण देव राय नाम मात्र का शासक न था, वह व्यावहारिक दृष्टि से अपरिमित शक्तिशाली एवं व्यक्तिगत दृष्टि से आकर्षक व्यक्तित्व सम्पन्न निरकुश अधिपति था। वह अपनी सेनाओ का स्वय सचालन करता था। वह विनीत तथा उदार प्रवृत्ति का शासक था जो अत्यन्त लोक-प्रिय था। उसके आचरण पर यही एक कलक बिन्दु है कि वह मुसलमानो को पराजित करने के पश्चात् वह अपनी मागों में गर्वीला और शीलरहित हो उठा। कुछ ऐसा लगता है कि इस कलक बिन्दु का वर्णन करते हुए सीवेल साहब ने पन्द्रहवीं शताब्दी की 'जैसा को तैसा' की नीति और बहमनी शासकों के क्रूरकृतियों को भुला दिया था अन्यथा वह ऐसा न लिखते। वी० ए० स्मिथ के अनुसार वह दक्षिण का महानतम सम्राट था तथा दक्षिण के मध्य युगीन राज्यों के रक्त-रजित इतिहास के काले पृष्ठों को कान्ति प्रदान करता है।

अच्युत राय—कृष्ण देव की मृत्यु के उपरान्त उसका भाई अच्युत राय सिंहासन पर बैठा। वह एक अयोग्य शासक था। उसने अपनी अयोग्यता तथा कायरता से विजयनगर के साम्राज्य के पतन का प्रथम अध्याय लिखा। इसके बाद ही विजयनगर का प्रसिद्ध और दृढ़-साम्राज्य पतन की ओर तेजी से बढ़ चला। बीजापुर के सुल्तान ने रायचूर तथा मुद्गल के प्रदेश छीन लिए, अच्युत राय कुछ नहीं कर सका। १५४२ में उसकी मृत्यु हो गयी।

सदाशिव राय—अच्युत राय के पश्चात् सदाशिव गद्दी पर बैठा और राज्य के पतन का क्रम आगे बढ़ा। सदाशिव केवल नाम मात्र का शासक था। शासन की बागडोर मन्त्री राम राय के हाथों में थी जो स्वय एक अयोग्य व्यक्ति था तथा जिसने अपने अविवेकपूर्ण कार्यों तथा मिथ्या अहमन्यता से सहयोगियों तक को अप्रसन्न कर दिया। १५४३ ई० में राम राजा गोलकुण्डा तथा अहमद नगर की सम्मिलित सेनाओं ने बीजापुर पर आक्रमण किया। परन्तु बीजापुर के योग्य तथा कुशल मन्त्री असद खाँ ने अपनी चालो से इस सघ को छिन्न-भिन्न कर दिया और बीजापुर को पराजय से बचा लिया। इसके बाद पुन एक सघ बना और इस बार वह अहमदनगर के विरोध में था। १५५७ ई० में विजयनगर, बीजापुर तथा गोलकुण्डा की सम्मिलित सेनाएं अहमदनगर पर चढ़ बैठी। अहमदनगर अधिक समय तक इन सम्मिलित सेनाओं के विरोध में नहीं टिक सका। परिणामस्वरूप अहमदनगर पराजित हुआ और अहमद नगर में तहस-नहस, विनाश और अमानवीय क्रूर अत्याचारों का नाटक खेला गया। सारा देश वीरान कर दिया गया, मुसलमान स्त्रियों के सम्मानों से खेला गया और मस्जिदों को ध्वस कर कुरान का अपमान किया गया।

अहमदनगर पर ढहाये गए अत्याचारों ने मुसलमानों की आँखें खोल दीं और उनमें पारस्परिक सहयोग की भावना का जन्म हुआ। हिन्दू साम्राज्य विजयनगर की दृढ़ स्थिति और उसकी समृद्धि मुसलमान राजाओं की आँखों में करकने लगी। शीघ्र

सहायता का मुँह देखना ही राज्य ह्रासोन्मुख शक्ति का ढिंढोरा पीट देना था। अच्युत-राय के पश्चात् सदाशिवराय तथा उसका मन्त्री रामराजा दोनों ही राज्य के हितों की रक्षा उसकी उन्नति तथा सुरक्षा की ओर से आँखें बन्द करके अपने को दक्षिण की राजनीति में फँसा दिया। दक्षिण के सुल्तानों के पारस्परिक संघर्षों में हाथ डाल कर विजयनगर ने एक भावी खतरा पैदा कर लिया था। पहले बीजापुर के विरुद्ध संघ बना, तत्पश्चात् अहमदनगर के विरोध में संघ का निर्माण हुआ और अहमदनगर पराजित कर दिया गया। इन संयुक्त सेनाओं ने, विशेषकर हिन्दुओं ने, अहमदनगर को लूटमार, मस्जिदों को ध्वंस करने, स्त्रियों को अपमानित करने तथा कुरान का असम्मान करने में जिस नृशंसता का परिचय दिया उससे मुसलमानों की जातीय भावना को आघात पहुँचा और शीघ्र ही परस्पर संगठित होकर विजयनगर के विनाश की योजनाओं के सोचने में लग गये और तालीकोट के युद्ध ने डंके की चोट विजयनगर के पतन की घोषणा कर दी। कुछ छुटपुट कारणों से देश की व्यापक समृद्धि और ऐश्वर्यशीलता भी उत्तरदायी थी। जिसके कारण लोगों का ध्यान देश के हित चिन्तन में न लगकर विलास और नैतिक अनाचरण की ओर आकर्षित हो गया। देश को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया जिसके कारण उसका पतन स्वाभाविक हो गया था।

विजयनगर की शासन-व्यवस्था

विजयनगर साम्राज्य का इतिहास दक्षिण में मध्य युग के हिन्दुओं के राज-नैतिक पुनरुत्थान का इतिहास है। एक तरह से यह भी कहा जा सकता है कि विजय-नगर साम्राज्य की स्थापना तत्कालीन परिस्थितियों की माँग थी। सेविल की निम्न पंक्तियों में हमें तत्कालीन स्थिति का कुछ आभास हो जाता है। "प्रत्येक वस्तु का एक ही अनिवार्य परिणाम परिलक्षित होता था—हिन्दू प्रान्तों का सत्यानाश, उनके प्राचीन राजवंशों का अस्तित्व-विनाश, उनके धर्म, नगरों तथा मन्दिरों का विध्वंस। दक्षिण के निवासियों का जो कुछ प्रिय था वह सब कुछ लड़खड़ा कर गिर जाने वाला था— विजयनगर साम्राज्य का जन्म इन्हीं स्थितियों की जड़ में हुआ था और इन्हीं परिस्थि-तियों ने विजयनगर की शासन नीति का भी निर्धारण किया था। मुसलमानों से अपने राज्य, अपने धर्म, अपने देवालयों की सुरक्षा के हेतु ही विजयनगर का शासन अपने अन्तिम काल तक एक सैनिक शासन ही था। जिसके मूल में थी धर्म की सुरक्षा की भावना। इस विशाल साम्राज्य के अधिकांश शासक कुशल और योग्य राजनीतिज्ञ थे इसके अतिरिक्त सौभाग्य से शासन विधान में कुशल अनेक ब्राह्मणों का सहयोग इन्हें समय समय पर मिलता रहा। परिणामस्वरूप विजयनगर में शान्ति और व्यवस्था के लिए उस संगठित शासन-प्रणाली का प्रयोग हुआ जिसके द्वारा साम्राज्य में स्थायित्व आया।"

केन्द्रीय शासन—सम्राट राज्य का सर्वोच्च सत्ताधीश था। उसके अधिकार अनियन्त्रित और असीम थे। उसकी सहायता के लिए मन्त्रियों, प्रान्तीय शासकों, सेना-पतियों, कुशल और योग्य ब्राह्मणों और कवियों की एक परिषद थी जिसके सदस्य सम्राट द्वारा मनोनीत किये जाते थे। सम्राट परिषद का निर्णय मानने के लिए बाध्य

धन-राशि लूट ली गई। सीगेल ने अत्यन्त करुण शब्दों में इस नगर के दुर्भाग्य का चित्र साकार कर दिया है—

"पाँच महीने तक विजयनगर को शान्ति नहीं मिली। शत्रु विनाश के ध्येय से आये थे और अविश्रान्त रूप से अपने ध्येय की पूर्ति में लग गए। बर्बरतापूर्वक नर संहार किया गया और मन्दिर तथा प्रासादों को ऐसा ध्वस्त कर दिया गया कि थोड़े से पत्थर के बने विशाल मन्दिरों और दीवालों को छोड़ कर उस समृद्ध नगर का कोई चिन्ह नहीं रह गया। उनसे कोई भी वस्तु बचती नहीं दिखाई देती थी। वे अग्नि और तलवार से, लौह दण्डों और फरसों से दिन प्रति दिन विनाश का कार्य करते रहे इतने समय-समय में अकस्मात रूप से दुनिया के इतिहास में ऐसे भव्य और समृद्ध नगर का ऐसा विनाश शायद कभी नहीं हुआ।"

इस प्रकार तालीकोट के निर्णयात्मक युद्ध ने विजयनगर साम्राज्य का विनाश प्रस्तुत किया। तालीकोट का युद्ध भारत के कुछ थोड़े से निर्णयात्मक युद्धों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। एक ही युद्ध के द्वारा विजयनगर ऐसे दृढ़ और समृद्ध साम्राज्य का मिट्टी में मिल जाना दुनिया के इतिहास में अपने ढंग की अनोखी घटना है।

तालीकोट के युद्ध के बाद रामराजा का भाई तिरुमल सदाशिव के नाम पर शासन करने लगा। १५७० ई० में उसने सिंहासन अपहरण कर नये शासक वंश की स्थापना की। इस वंश में सबसे प्रसिद्ध राजा वेंकट प्रथम था। उसने राज्य को दृढ़ बनाने के कुछ प्रयास किए थे। परन्तु अयोग्य उत्तराधिकारियों के कारण वह व्यर्थ रहा। उत्तर का काफी भाग मुसलमानों ने अपने अधिकार में कर ही लिया था। मदुरा तथा तंजौर के नायकों ने भी साम्राज्य के खण्डों में स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना कर ली। इस प्रकार विजयनगर का प्रसिद्ध साम्राज्य ऐतिहासिक विस्मरण के गर्त में समा गया।

विजयनगर के पतन के कारण—विजयनगर का पतन इतिहास की एक ऐसी घटना है कि इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी कुछ अरसे के लिए चकित-सा रह जाता है। लेकिन तालीकोट के निश्चयात्मक युद्ध के अतिरिक्त भी कुछ कारण थे जो साम्राज्य के समाधि निर्माण की तैयारियाँ पहले से ही करने लगे थे। यदि ध्यानपूर्वक दृष्टि-पात किया जाय तो स्पष्ट पता चल जायेगा कि विजयनगर के साम्राज्य को अपने जीवन भर अविश्रान्त रूप से मुसलमानों से युद्ध करना पड़ा और युद्धों की इस अविच्छिन्न परम्परा में विजयनगर प्रायः घाटे ही में रहा। बार-बार इस क्षति को उठाने का कारण था सैन्य संगठन का अभाव। साम्राज्य की सेना विशाल होते हुए भी सैनिक शिक्षा से शून्य सी थी। सेना का अश्वारोही अंग भी शक्तिहीन ही था। हाथियों की सेना अपने विश्वासघात के कारण इतिहास-प्रसिद्ध ही है। मुसलमानों का तोपखाना हिन्दुओं की पराजय का कारण बन जाता था जिसकी भीषण मार से शत्रुपक्ष हता-हत होकर अव्यवस्थित और निरुत्साह हो बैठता था।

कृष्णदेव राय के पश्चात् अयोग्य उत्तराधिकारियों का जो ताँता बँधा वह बदला नहीं। अच्युतराय ने अपनी अयोग्यता और कायरता के कारण राज्य में होने वाले कुचक्रों और षड्यन्त्रों को नष्ट करने के लिए राज्य के शत्रु आदिलशाह को

साम्राज्य की केन्द्रीय सेना तथा द्वितीय प्रान्त-पतियों की सेना, जो युद्धादि अवसर पर सम्राट की सहायता करती थी। समस्त सेना, गज सेना, अश्वारोही तथा पदाति इन भागों में विभक्त थी।

अर्थ व्यवस्था—भूमि कर राज्य की आय का प्रधान स्रोत था। साम्राज्य की समस्त भूमि पर सम्राट का अधिकार माना जाता था। इस भूमि को वह अपने सामन्तों में विभाजित कर देता था और सामन्त उसे किसानों में बाँट कर बदले में किसानों से उपज का $\frac{6}{10}$ भाग वसूल करते थे, जिसमें आधा उन्हें राजकीय कोष में दे देना पड़ता था। आश्चर्य है कि शेष $\frac{4}{10}$ भाग में प्रजा किस प्रकार निर्वाह करती होगी जब कि भूमि कर के अतिरिक्त भी उसे कई प्रकार के कर देने पड़ते थे। इन अतिरिक्त करों में चरागाह तथा विवाह कर भी थे। यही नहीं प्रायः पशुओं से लेकर सभी आवश्यक वस्तुओं के ऊपर चुङ्गी देनी पड़ती थी। करों का यह विषम जाल इतना विस्तृत था कि वेश्याएं भी इससे मुक्त न थीं। वेश्याकर से १२००० फनम की प्राप्ति होती थी जो पुलिस के ऊपर खर्च किया जाता था। अनेक अभाव के करों तथा चुंगी के विषय भार से ग्रस्त साम्राज्य की लक्ष-लक्ष जनता की जो कुछ अवस्था रही हो लेकिन साम्राज्य की राजधानी, राज सभा, राज्यप्रासाद, भव्य भवन और विशाल देव मन्दिर आदि अपनी समृद्धि, वैभव सम्पन्नता तथा ऐश्वर्यशालिता में निर्विवाद रूप से अन्य सभी राज्यों की ईर्ष्या के विषय बने हुये थे।

इस प्रकार आदि साम्राज्य के मूल में थी विशाल सैन्य शक्ति और सैन्य शक्ति की नींव था सम्पन्न राजकोष, तो देश की समृद्धि और सम्पन्नता उस कोष की बुनियादें थीं।

विजयनगर का ऐश्वर्य

विजयनगर के ऐश्वर्य तथा उसकी समृद्धि ने विदेशी यात्रियों के ऊपर कुछ ऐसा प्रभाव छोड़ा कि वे विजयनगर की भूरि-भूरि प्रशंसा करते नहीं थकते। कोन्टी तथा अब्दुर्रज्जाक के कुछ उद्धरण हम पहले दे आये हैं। इन्होंने बड़े ढंग से क्रमानुसार विजयनगर का आकर्षक वर्णन प्रस्तुत किया है। नगर और दुर्ग, राजा और राज सभा, बाजार, और देव मन्दिरों और उत्सवों के साथ साथ सामाजिक तथा आर्थिक जीवन पर भी काफी प्रकाश डाला है।

सामाजिक अवस्था—विदेशी यात्रियों ने राजधानी में होने वाले जिन समारोहों का वर्णन किया है उससे स्पष्ट पता चलता है कि सामाजिक जीवन अत्यन्त सुख-शान्तिमय था। समाज में ब्राह्मण वर्ग अत्यधिक सम्मान का पात्र माना जाता था। शासन व्यवस्था में इस वर्ग का महत्वपूर्ण योग होता था। ब्राह्मण वध निषिद्ध था। राज्य में शाकाहारी और मांसाहारी दोनों प्रकार के व्यक्ति थे। ब्राह्मण मांस नहीं खाते थे। नुनज के अनुसार—

विजयनगर के राजा लोग बैल तथा गाय के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार का मांस खाते हैं। वह भेड़, सुअर, हिरन, तीतर, खरगोश, फाख्ता, बटेर, और सब प्रकार के पक्षियों का मांस खाते हैं यहां तक कि चूहे, बिल्लियां तथा छिपकलियां तक

नहीं था। उसे स्वेच्छानुसार किसी भी कार्य के करने का अधिकार था। वह अपने न्यायालय में न्यायाधीश के आसन से न्याय करता, शासन व्यवस्था का निरीक्षण करता और युद्धों में अपनी विशाल सेना का संचालन करता था। राज्य के प्रमुख अधिकारियों में प्रधान मन्त्री, कोषाध्यक्ष, रत्नभण्डार का रक्षक तथा सुरक्षा विभाग के प्रधान थे। सुरक्षा विभाग का प्रधान बहुत कुछ मुगलकालीन कोतवाल की भाँति होता था। उसके और उसके विभाग के ऊपर राज्य की शान्ति और सुरक्षा एवं भ्रष्टाचार दमन का उत्तरदायित्व होता था।

प्रान्तीय शासन—विशाल साम्राज्य को सम्यक शासन की सुविधा की दृष्टि से लगभग २०० प्रान्तों में विभक्त कर दिया गया था और राजकीय प्रतिनिधियों के हाथों में इनका शासन सौंपा गया था। इन प्रतिनिधियों की नियुक्ति सम्राट स्वयं करता था। प्रत्येक प्रान्त साम्राज्य की प्रतिकृति था। सर्वाधिकार सम्पन्न ये प्रान्तपति अपने प्रान्त में अपनी सेनायें रखते तथा अपना दरबार किया करते थे। लेकिन होता यह सब था साम्राज्य के नियन्त्रण में। वे अपने प्रान्त के प्रत्येक कार्य के लिए सम्राट के प्रति उत्तरदायी थे। प्रान्त की आय का ½ भाग राजकीय कोषागार में प्रेषित कर देना पड़ता था और ½ भाग से प्रान्त का शासन चलता था। महानवमी के समारोह के दिनों में सम्राट इन प्रान्तपतियों से कर प्राप्त करता था तथा उन्हें उपहार बाँटता था। कर न देने वाला, राजद्रोह आदि का दोषी, प्रान्तपति कठोर दण्ड का भागी होता था।

ग्राम शासन—प्रान्त 'नाडुओं' में विभक्त थे तथा 'नाडू' नगरों तथा ग्रामों में विभाजित थे। इस प्रकार गाँव शासन की लघुतम इकाई था। पंचायतों के अधीन गाँवों का प्रबन्ध था और इन पंचायतों का प्रधान आयगर कहलाता था। इस अधिकारी को वेतन के रूप में या तो कुछ भूमि या उपज का कुछ अंश प्राप्त होता था। इनका पद वंशानुगत होता था। यह गाँवों के साधारण फैसलों का निर्णय करता, राज कर वसूल करता तथा शान्ति स्थापन के प्रयत्न करता था।

न्याय-व्यवस्था—विजयनगर की न्याय-व्यवस्था का ठीक ज्ञान नहीं है। फिर भी इतना निश्चित है कि दण्ड विधान अत्यन्त कठोर था। सम्राट स्वयं सर्वोच्च न्यायाधीश था। न्यायालयों में हिन्दू न्याय-विधान का प्रचलन था। साधारण अपराधों के लिए भी कभी-कभी रोमाञ्चित कर देने वाले दण्डों का विधान किया जाता था। ब्राह्मणों को प्राण दण्ड नहीं दिया जाता था।

व्यवस्था—विजयनगर साम्राज्य अपने भाग्य में युद्धों की एक अविश्रान्त परम्परा लेकर विकसित हुआ था। अतएव सेना की ओर ध्यान देना अत्यावश्यक था। ध्यान दिया भी गया लेकिन उसका दृष्टिकोण कुछ गलत था रहा। सेना के संगठन, दृढ़ता तथा उचित सैन्य-शिक्षा की अपेक्षा साम्राज्य के कर्णधारों ने सैन्य संख्या की विशालता पर अधिक ध्यान दिया। नुनीज और अब्दुर्रज्जाक ने विजयनगर की सेनाओं से सम्बन्धित जो संख्या दी है वह भले ही अतिरंजना पूर्ण हो लेकिन उससे सेना की विशालता का आभास तो हो ही जाता है। सेना दो [illegible]

अध्याय ५१

दिल्ली साम्राज्य का विघटन

प्रान्तीय राज्यों का उदय

मुहम्मद तुगलक के शासन काल के अन्तिम वर्षों मे साम्राज्य को जो आर्थिक एवं राजनैतिक आघात सहन करने पड़े थे वे साम्राज्य के भावी पतन की अग्रगामी सूचनायें थीं। साम्राज्य विघटन की जिन प्रवृत्तियों ने मुहम्मद तुगलक के अन्तिम वर्षों में जन्म लिया था उन्होंने शीघ्र ही अपना रंग भी दिखाना प्रारम्भ कर दिया था और मुहम्मद तुगलक के कार्यों तथा तत्कालीन परिस्थिति ने भावी विनाश की जो भूमिका प्रस्तुत की उसके विरोध मे फिरोज शाह तुगलक ने कोई महत्वपूर्ण चरण नहीं उठाया। परिणामस्वरूप फिरोज के राजत्व काल में ही दिल्ली राज्य की सीमायें तेजी से अन्तर्मुखी हो चलीं और दिल्ली का राज्य अत्यन्त संकुचित हो गया। उसकी अशक्त-नीति राज्य को शक्ति और दृढ़ता नहीं प्रदान कर सकी। परिणामस्वरूप उत्तराधिकारी राज्य के पतन को किसी भी भाँति नहीं रोक सके और कालक्रम के अथाह सागर में वर्षों से डूबता-उतराता साम्राज्य का जर्जर पोत तैमूर जैसे क्रूर आक्रमणकारियों के प्रचण्ड तूफान का भारी आघात नहीं सह सका और छिन्न-भिन्न होकर ऐतिहासिक विस्मरण के गर्त में समा गया। पाठकों की सुविधा के लिए साम्राज्य के पतन के कारणों पर कुछ विस्तार से प्रकाश डालना अपेक्षणीय होगा।

तुगलक साम्राज्य के पतन के अनेक कारणों मे कुछ प्रमुख इस प्रकार थे :—

१ साम्राज्य की विशालता और यातायात के द्रुतगामी साधनों का अभाव,
२ स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासन,
३ संगठन और दृढ़ शासन व्यवस्था का अभाव,
४ तुर्क और विदेशी अमीरों का संघर्ष,
५ मुसलमानों का नैतिक पतन,
६ सेना का पतन,
७ भारतीयों का शासनाधिकार से बहिष्कार,
८ हिन्दुओं के विद्रोह,
९ उत्तराधिकार के सुनिश्चित नियम का अभाव,
१० साम्राज्य के विघटन में मुहम्मद तुगलक का उत्तरदायित्व,
११ साम्राज्य के विघटन में फिरोज तुगलक का उत्तरदायित्व,
१२ फिरोज के अयोग्य उत्तराधिकारी तथा
१३ विदेशी आक्रमण,

बाजार में बिकती हैं जो खाई जाती हैं। विजयनगर में रक्तपूर्ण बलि चढ़ाने की प्रथा थी। पायस में महानवमी तथा अन्य उत्सव पर सैकड़ों बलियों का उल्लेख किया गया है। बलि पशुओं मे भेड़ों तथा भैंसों की प्रधानता थी। सती प्रथा प्रचलित थी। सघर्षों के निपटाने की सामान्य विधि के रूप में द्वन्द्व युद्ध का प्रचलन था लेकिन इसके लिए मन्त्री की आज्ञा आवश्यक होती थी। स्त्रियाँ समाज में सम्मान पूर्ण स्थान रखती थीं। नुनीज के वर्णनानुसार अनेक स्त्रियाँ लेखन का कार्य करतीं थीं। शिक्षा की उचित व्यवस्था भी थी। वेश्यायें भी सार्वजनिक उत्सवों और समारोहों में भाग लेती थीं। प्रजा में सुख और शान्ति थी।

साहित्य और कला—विजयनगर के नरेशों तथा मन्त्रियों ने साहित्यकारों तथा कलाकारों को प्रोत्साहन और आश्रय प्रदान कर हिन्दू और संस्कृति की उन्नति में महत्वपूर्ण हाथ बटाया। सस्कृत तथा तेलगू का अच्छा विकास इस साम्राज्य काल में हुआ। ऋग्वेद, सहिता, ऐतरेय, ब्राह्मण तथा आरण्यक पर टीकायें लिखने वाला सायण ऐसा प्रसिद्ध धुरन्धर विद्वान तथा माधवाचार्य जैसे दर्शन के विद्वान इस साम्राज्य की विभूति थे। शासकों में भी नरसिंह और कृष्णदेव राय कुशल कवि और विद्वानों के आश्रयदाता थे। तेलगू का महान कवि अलसनी कृष्ण राय कालीन राष्ट्रकवि था। विदेशी यात्रियों द्वारा प्रदत्त वर्णनों में राजधानी के विशाल एव भव्य प्रासादों, देवमन्दिरों और भवनों का जो सकेत है तथा सरोवरों और झीलों का जो वर्णन है उससे इस बात का स्पष्ट पता चलता है कि विजयनगर के शासकों में वास्तु-कला के प्रति गहरा प्रेम था और उसे पर्याप्त प्रोत्साहित किया था। परन्तु दुर्भाग्य है कि वास्तु कला के वे सुन्दर नमूने और प्रस्तर शिला के वे बहुमूल्य प्रयोग मुसलमानों की प्रतिहिंसा की अग्नि में स्वाहा हो गये।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. विजयनगर राज्य के विषय मे आप क्या जानते हैं ?
२. विजयनगर के दो प्रमुख राजाओं के कार्यों का मूल्यांकन कीजिये ?
३. विजयनगर की शासन-व्यवस्था और सभ्यता पर प्रकाश डालिए ?

संगठित नहीं था और दूसरी ओर प्रान्ताध्यक्ष अपने शासित भूभाग में स्वतन्त्र शासक सी नीति का प्रयोग करते थे। इन स्वातन्त्र्य प्रेमी और महत्वाकाक्षी अमीरों ने राजभक्ति को उपेक्षणीय बना कर अपने स्वार्थसाधन की ओर ही प्रयास किये। अलग-अलग अमीरो की शक्ति सवर्धन का तात्पर्य ही है साम्राज्य की शक्ति का ह्रास होना। साम्राज्य के समस्त विस्तृत भूभाग पर छा जाने वाली किसी केन्द्रीय दृढ़ शासन व्यवस्था का अभाव भी इन अमीरों के उत्कर्ष में सहायक था। ये अमीर सदैव इस मौके की ताक में रहते थे कि कब अवसर मिले और कब वे अपने राज्य मे अपने नाम का खुतबा पढ़ावे। आन्तरिक शासन में तो प्रान्त एक प्रकार से स्वतन्त्र ही थे। हाँ, बाह्य रूप में केन्द्र से इनका वैधानिक सम्बन्ध अवश्य रहता था। इस प्रकार साम्राज्य वास्तव में अर्ध स्वतन्त्र राज्यों का एक असम्बद्ध सघ था और केन्द्रीय सरकार का शिथिल और शक्तिहीन शासनतन्त्र साम्राज्य के विभिन्न भागो विशेषकर दूरस्थ प्रदेशों में नियन्त्रण स्थापित करने में सफल नहीं हो सकता था।

तुर्क और विदेशी अमीरों की स्वार्थपरता—साम्राज्य के शासन-सचालन का बहुत बड़ा अधिकार तुर्की, ईरानी और मध्य एशियाई विदेशी अमीरो के हाथ में था। इन अमीरो की बढ़ती हुई शक्ति साम्राज्य के लिए चिन्ता का कारण बन रही थी। ये अमीर जातीय दम्भ और विजेता से अहकार को अपने हृदय मे स्थान देकर शासितों के साथ पराजितों का सा व्यवहार करते थे और जनता मे असन्तोष तथा विद्रोह के बीज वपन करते थे। दूसरी ओर राजभक्ति की ओर से आँखें मूँद कर अपनी ही स्वार्थ-परता में संलग्न रहे। यही नही कालान्तर मे परस्पर ईर्ष्या, जलन, विद्वेष और प्रतिद्वन्द्विता के शिकार भी हो गये और अपनी इस राष्ट्र विरोधी मनोवृत्ति से साम्राज्य को पतन की ओर घसीट ले चले।

मुसलमानो का नैतिक पतन—दरबार के अन्दर बढ़ती हुई विलासिता और आमोद-प्रमोदप्रियता ने मुसलमानों की नैतिकता को धक्का पहुँचाया। ऐशोआराम में उन्होंने अपने पूर्वजों की शक्ति उनके गौरव तथा साहस को विस्मृत कर दिया था। फिरोज के असफल युद्धो से इसी बात का सकेत मिलता है।

सेना का पतन—निरन्तर होने वाले विद्रोहो के दमन के लिए इतने विशाल साम्राज्य की इधर से उधर और उधर से इधर दौड़ धूप करते करते साम्राज्य की सेना निर्बल पड़ने लगी थी और उसने बलबन, अलाउद्दीन और प्रारम्भिक तुगलक सुल्तानों के काल की शक्ति खोना प्रारम्भ कर दिया था। उसका साहस और रणकौशल क्षीण हो चला था। सेना मे जो वशानुगत पद की परम्परा चल पड़ी थी वह स्पष्ट ही सैन्य शक्ति की जड़ों को खोखली बनाती जा रही थी। योग्य सेनापतियो का अभाव ही था। इस प्रकार साम्राज्य का मूलाधार सैन्यशक्ति ही तपेदिक के रोगी की भांति दिनोदिन क्षीण होती जा रही थी।

भारतीयों का शासनाधिकारों से वंचित रहना—दिल्ली के समस्त सुल्तानों ने शासन के सचालन म हिन्दुओं को अलग ही रक्खा और शासन का भार मुसलमानो को ही सोपा गया। हिन्दुओं को शासन के कार्यों से इस प्रकार वञ्चित रखना साम्राज्य के लिए हितकर नहीं सिद्ध हुआ क्योंकि

अब इन कारणों पर संक्षेप में विचार कर लेना विषय के स्पष्टीकरण के लिए लाभदायक सिद्ध होगा।

साम्राज्य की विशालता और आवागमन के द्रुतगामी साधनों का अभाव—अलाउद्दीन के काल में दिल्ली का बादशाह एक अत्यन्त विस्तृत साम्राज्य का स्वामी था। भारतीय इतिहास में अशोक के बाद यह इतना विशाल साम्राज्य था जिसमें सुदूर दक्षिण और दूरस्थ बङ्गाल के प्रदेश भी अन्तर्निहित थे। सल्तनत के विस्तार की यह पराकाष्ठा थी और यही साम्राज्य तुगलक वंश के प्रारम्भिक सुल्तानों के हाथ लगा। उस काल में समस्त साम्राज्य के सुव्यवस्थित शासन संचालन में, आवागमन के साधनों और द्रुतगामी वाहनों तथा सुरक्षित राजमार्गों में नितान्त अभाव एक महान बाधा थी। ऐसी अवस्था में दूरस्थ प्रान्तों का केन्द्र से कोई स्थायी सम्बन्ध नहीं रख सकता था। दूरस्थ प्रान्तों के प्रान्ताध्यक्ष अपने-अपने प्रान्तों में बिल्कुल स्वतन्त्र शासकों की नीति का प्रयोग करते थे और इस अवसर की ताक में रहते कि कब मौका मिले और स्वतन्त्रता की घोषणा कर दें। इसी वजह से जब उत्तर-पश्चिम में मुल्तान से लेकर पूर्व में बङ्गाल तक और दक्षिण में माबर तक जब विद्रोहों की ज्वाला धधक उठी तो सुल्तान के लिए एक दुखद चिन्ता का कारण बन गई। कभ सुदूर दक्षिण और उत्तर में और कभ सुदूर पश्चिम और पूर्व में उठने वाले उपद्रवों के बवंडर शान्त करने के लिए दिल्ली के केन्द्र में स्थित न होने के कारण साम्राज्य की सेना शीघ्र ही पेशराबाजी से परेशान हो गई। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आवागमन के सुन्दर साधनों के अभाव में इतने विशाल साम्राज्य की स्थापना करना पहले से साम्राज्य की नींव में घुन लगा देना है। आगे यही हाल दिल्ली सल्तनत का हुआ।

स्वेच्छाचारी तथा निरकुश शासन—मध्ययुग के प्रायः सभी शासक निरंकुश थे। लेकिन उनकी निरकुशता के सफल निर्वाह के लिए जिन बातों की आवश्यकता होती है वे तुगलक सुल्तानों में नहीं थी। सम्यक् रूप से शासनतन्त्र के संचालन में प्रतिभाशाली तथा सैनिक योग्यता से सम्पन्न शासक, द्वितीय कुशल और राजभक्त कर्मचारी और तृतीय प्रजा का सहयोग तथा सद्भाव इन तीन बातों की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। शासक के निरंकुश होने की स्थिति में तो उसका प्रतिभाशाली और सैनिक योग्यता से सम्पन्न होना अनिवार्य सा हो उठता है और तुगलक सुल्तानों में इस गुण का अभाव था। द्वितीय राजभक्त कर्मचारी तथा जनता की भक्ति पर स्थापित साम्राज्य ही कुछ अधिक स्थायी हो सकता है। ये दोनों बातें भी तुगलक सुल्तानों को नहीं प्राप्त थीं, अतः साम्राज्य का पतन होना निश्चित था। फ़िरोज के बाद जो उत्तराधिकारी हुए उनकी अयोग्यता ने तो साम्राज्य को पतन की ओर ही ढकेला। अतः तुगलकों का निरंकुश शासन भी तुगलक साम्राज्य के पतन के लिए कम उत्तरदायी नहीं है।

संगठन और दृढ़ शासन-व्यवस्था का अभाव—ऊपर हम कह चुके हैं कि आवागमन के द्रुतगामी साधनों के अभाव में किसी साम्राज्य के सम्यक शासन में कितनी असुविधाएँ आ पड़ती हैं। एक ओर तो सल्तनत का विशाल आकार उस्य [illegible]

की रक्षा की ओर से आँखें बन्द कर अपने स्वार्थों की सिद्धि में लगे रहते थे और प्रजा में असन्तोष बढ़ता जाता था।

३ अमीरों का पराजित दल सदैव इन दूसरे अमीरों और गद्दी पर बैठे सुल्तानों की जड़ें खोदने में व्यस्त रहते थे।

४. इन सब का परिणाम होता साम्राज्य की शक्ति का ह्रास और साम्राज्य के भावी पतन की प्रवृत्तियों का क्रियाशील हो उठना।

साम्राज्य के विघटन मे मुहम्मद तुगलक का उत्तरदायित्व—मुहम्मद तुगलक की असफलताओं ने जो स्वतः पराजित उच्च भावनाओं के दुखद परिणामस्वरूप थीं, साम्राज्य के पतन की भूमिका प्रस्तुत की, जिसमें भविष्य मे साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करने वाली प्रवृत्तियो के बीज सन्निहित थे। मुहम्मद तुगलक ने जिन-जिन योजनाओं को कार्यान्वित करना चाहा वे सभी योजनाएँ राजकोष का एक बड़ा भाग व्यय करा कर असफल हो गईं। कहानी यहीं नहीं समाप्त होती—दस वर्ष के कठोर दुर्भिक्ष ने राज्य को बुरी तरह मसल दिया था। व्यवस्था और शान्ति स्थापना की योजनाओं की पूर्ति के लिए जिस समृद्ध राज्य की आवश्यकता होती है वह असफल योजनाओं, विद्रोहों के दमन और दुर्भिक्ष के कारण काफी रिक्त हो चला था। दुआबे की कृषि मारी गयी थी। इन सब का परिणाम अत्यन्त भयानक हुआ। इन असफल योजनाओं और जनता की बिगड़ती दशा ने शासक और शासित के बीच जो गहरी खाई डाल दी थी वह आसानी से भरने वाली नहीं थी। जनता सुल्तान के हठी स्वभाव से चिढ़ गई थी और सुल्तान ने अपनी योजनाओं की असफलता में प्रजा की उदासीनता को स्थान देकर जो रुख अख्तियार किया वह भी राज्य के लिए अमंगलकारी ही था।

मुहम्मद तुगलक ने शासनतन्त्र में जिस निरंकुश नीति और कठोर दण्ड-विधान को स्थान दिया उसने लोगों में असन्तोष की आग भड़का दी। साधारण जनता की बात तो दूर रही उसके बड़े बड़े अमीर सरदार भी आतंकित हो उठे और सुल्तान के विरोधी बन बैठे। दक्षिण के अमीरों के दमन में जिस नीति का प्रयोग किया गया उसने दक्षिण के अमीरों को एक होकर संगठित हो जाने पर विवश कर दिया और इस प्रकार सुल्तान ने अपने पैरों पर ही कुल्हाड़ी मार ली जब कुछ ही दिनों बाद स्वतन्त्र बहमनी साम्राज्य की स्थापना हो गयी और सुल्तान दक्षिण के प्रदेश से हाथ धो बैठा।

इन सब के अतिरिक्त मुहम्मद तुगलक के एक अन्य कार्य ने भी साम्राज्य के पतन में काफी हाथ बँटाया और वह था पुराने तुर्क अमीरों की उपेक्षा करके नये आये विदेशी अमीरों को प्रोत्साहन और ऊँचे ऊँचे पद प्रदान करना जिसके कारण एक ओर तो साम्राज्य पुराने अनुभवी और कुशल अमीरों की प्रतिभाओं के उपयोग से वंचित रह गया और दूसरी ओर ये नये-नये अमीर राज्य व्यवस्था को भलीभाँति सँभाल नहीं सके और नाखुश पुराने प्रभावशाली अमीर इन नये अमीरों से ईर्ष्या करने लगे और सुल्तान के विरोधी हो गये और साम्राज्य का विघटन सुल्तान को अपनी आँखों से देखना पड़ा। इस प्रकार मुहम्मद तुगलक ने फिरोज तुगलक को विरासत के

१ सल्तनत ने शासन के मामले में हिन्दुओं का वहिष्कार कर हिन्दुओं की उस प्रतिभा की उपेक्षा की थी जिसका उपयोग बाद में अकबर ने अपने साम्राज्य के संगठन, सीमा-विस्तार और शासन-व्यवस्था में कर साम्राज्य की नीवों को मजबूत कर दिया था।

२. राजकर्मचारियों के रूप में विदेशी तुर्कों की संख्या अत्यल्प थी और शासितों की संख्या विशाल। अतः सल्तनत को थोड़े ही कर्मचारियों से काम चलाना पड़ता था।

३ हिन्दुओं को शासन तन्त्र में भाग न देकर सल्तनत ने भारतीय जनता के एक बहुत बड़े भाग की सहानुभूति, सहयोग तथा भक्ति खो दी थी।

४. बाद में जब साम्राज्य के बड़े-बड़े अमीर परस्पर ही ईर्ष्या, प्रतिद्वन्द्विता तथा जलन के शिकार हो गये तो राज्य भक्ति की ओर से लोगों का ध्यान ही हट गया। सम्भव था कि यदि कुछ हिन्दू भी 'उच्चपदाधिकारी होते तो कुछ लोगों की राज-भक्ति तो साम्राज्य को सहारा दिये रहती।

हिन्दुओं के विद्रोह—तुर्कों के भारत आगमन के बाद से ही भारतीयों के साथ जिस पाशविक कठोरता और दमन की नीति अपनाई जा रही थी हिन्दू जनता उसकी अभ्यस्त नहीं थी। असन्तोष की चिनगारी सुलगी, कुछ दिन तो भय और आशंका की राख से दबी रही आखिर जब शासकों की धर्म सापेक्ष्य नीति असह्य हो उठी तो असन्तोष की चिनगारियाँ विद्रोह की ज्वालाएँ बन कर धधक उठीं। जब भी अवसर मिलता हिन्दू अपनी खोई स्वतन्त्रता और धर्म की सुरक्षा के निमित्त संगठित होकर उपद्रव करते थे। बगावत का नारा'बुलंद कर देते। दक्षिण के हरिहर और बुक्का द्वारा विजयनगर की स्थापना इसी दिशा में उठाया हुआ एक सफल पद-क्षेप था।

उत्तराधिकार के सुनिश्चित नियम का अभाव—यह बात नहीं कि तुगलकों में ही उत्तराधिकार के किसी सुनिश्चित नियम का अभाव था वरन् समस्त तुर्क राज्य-वंशों में यही समस्या थी। इस्लाम के प्रारम्भ काल में उत्तराधिकार निर्वाचन पर आधारित था लेकिन भारतीय तुर्कों ने उसे आनुवंशिक स्वरूप दे दिया था जो कि रूढ़ि मात्र था न कि कोई वैधानिक नियम। यही कारण था कि किसी भी सुल्तान की मृत्यु के पश्चात् प्राय. गद्दी हासिल करने के लिये खूनखराबी जरूरी हो उठती थी। अल्प काल के लिए साम्राज्य विद्रोहों, षड्यन्त्रों और कूटनीतिक चालों में बुरी तरह उलझ जाता था। अमीरों में'दलबन्दियाँ होतीं और प्रबल दल अपने उम्मीदवार को गद्दी पर बैठाता। इसके कई दुष्परिणाम होते थे।

१ इस प्रकार अमीरों की सहायता से सिंहासन पर बैठा हुआ सुल्तान अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व खो देता था और अपने सहयोगी अमीरों के हाथों की कठपुतली बन जाया करता था।

२. सुल्तान को इस प्रकार अपने पंजों में फँसा कर ये अमीर मनमानी करते और सुल्तान को अपने संकेतों पर नचाया करते। शासन-व्यवस्था जनता के हितों या और

से हट कर जागीर के प्रबन्ध की ओर बँट जाता था। द्वितीय-सेना में वंशानुगत पद की परम्परा प्रारम्भ कर सेना को बुरी तरह शक्तिहीन बना दिया क्योंकि इस परम्परा का अनुकरण करते हुए सेना कुछ ही दिनों में अयोग्य, वृद्धों और रोगियों का जमघट बन गई। इसके अतिरिक्त जागीरदारों को भी सेना रखने की आज्ञा थी और यही सेना बाद में महान् घातक सिद्ध हुई।

४. धर्म प्रभावित राज्य—फिरोज ने राजनीति में धर्म को जो स्थान दिया था वह उचित नहीं था। क्योंकि मुल्लाओं और मुफ्तियों की कट्टरता को मानते हुए उसने जो हिन्दू विरोध की नीति अपनायी वह उसने हिन्दू जनता में असन्तोष भर दिया यही नहीं कट्टर सुन्नी होने के कारण उसने शिया विरोधी नीति भी अपनायी और अनेक मुसलमानों को अपना शत्रु बना लिया।

५. दास प्रथा को प्रोत्साहन—फिरोज के शासनकाल में दासों की संख्या अत्यधिक हो गई थी और राज्य के लिए एक दुर्वह भार के समान दुश्चिन्ता का कारण बन गये। बलात दास बनाये जाने के कारण ये असन्तोष और विद्रोह की भावना से भरे रहते थे और जब तब विद्रोह कर देते थे। इनमें राजभक्ति का अभाव था, अतः उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य इन्हें दिया नहीं जा सकता था और राज्य की ओर से इनके निर्वाह का प्रबन्ध होने के कारण राजकीय कोष को क्षति पहुँचती जा रही थी।

इस प्रकार फिरोज की अशक्त नीति के परिणामस्वरूप साम्राज्य पतन की ओर तेजी से बढ़ चला। अमीर सरदारों ने जगह-जगह पर अपनी सामर्थ्य से विद्रोह करने प्रारम्भ कर दिये। अधिकार लोलुप तथा राजभक्तिहीन इन सरदारों ने जभी स्वतन्त्र होने का अवसर देखा तभी स्वतन्त्र होने की चेष्टा करने लगे। शासन के प्रत्येक कार्य में धर्म की प्रधानता तथा मुफ्तों और मुल्लाओं के अत्यधिक प्रभावों ने न केवल हिन्दू जनता में प्रतिहिंसा की सृष्टि की वरन् अन्य धर्मावलम्बी मुसलमानों की प्रतिक्रिया को भी विरोध में ही सृजन किया। जहाँ एक ओर राज्य के उच्च पदाधिकारियों ने विलासिता और भोग के गर्त में डूबे राज्य की हित चिन्तना का परित्याग कर दिया वहाँ दूसरी ओर जागीरदारों के नेत्रों में स्वतन्त्र राज्य स्थापना के स्वप्न भी साकार होने लगे। राज के ऊपर भार बने हुए असंख्य अयोग्य और स्वामिभक्ति रहित दासों ने जब तब हुल्लड़ करना प्रारम्भ कर दिया था।

अयोग्य उत्तराधिकारी—फिरोज के अयोग्य उत्तराधिकारियों ने तो साम्राज्य विघटन की प्रवृत्तियों को रोकने के स्थान पर शक्ति और गति ही प्रदान की, अतः फिरोज की मृत्यु के "पश्चात् अवश्यम्भावी नाश का महासागर उमड़ पड़ा और अगले पच्चीस वर्षों के भीतर (१३८८-१४१२ ई०) मुस्लिम साम्राज्य का पूर्ण कलाधर क्षीण होकर दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेश तक सीमित अर्द्धचन्द्र मात्र रह गया। नूतन कलाधर की अँधेरी निशा में (तुगलक वंश) के पतन के समय में भारत का राजनैतिक गगनांगण हिन्दू तथा मुस्लिम राज्यों रूपी आकाश के अगणित नक्षत्रों तथा उपग्रहों से भर गया।"

फिरोज की मृत्यु से लेकर पानीपत के प्रथम युद्ध तक के भारत का राजनैतिक रंगमंच उसी प्रकार हो अव्यवस्थाओं तथा अराजकतापूर्ण स्थितियों का क्रीड़ास्थल बना रहा जिस प्रकार हर्ष की मृत्यु से लेकर ११९२ में तराइन के युद्ध तक

रूप में जो साम्राज्य प्रदान किया था वह अव्यवस्था, अराजकता तथा विद्रोहों के विषम जाल से आक्रान्त था।

साम्राज्य के विघटन में फिरोज का उत्तरदायित्व—मुहम्मद तुगलक के पश्चात् फिरोज शाह तुगलक दिल्ली साम्राज्य का भाग्य-विधाता हुआ। राजनीति में धर्म को स्थान देकर शासन करने वाले सुल्तान ने धर्म असहिष्णु होते हुए भी जिस नीति का अनुसरण किया उसने पीड़ित जनता के घावों पर मलहम का काम किया। साम्राज्य विघटन के फूटते अंकुरों के मूलोच्छेद के लिए। इस समय एक दृढ़ कठोर और नीतिवान शासक की आवश्यकता थी। फिरोज तुगलक में सामरिक प्रवृत्ति नहीं थी न वह महत्त्वाकांक्षी ही था फिर भी वह नीतिवान था। वह अपने पूर्वजों की गलतियों की पुनरावृत्ति नहीं करता था। भले ही उसमें सैनिक योग्यता का अभाव हो लेकिन जब कभी कर्त्तव्य की पुकार हुई वह युद्ध करने से पीछे नहीं हटा। लेकिन उसने सदैव अशासनीय विशाल साम्राज्य की अपेक्षा सीमित राज्य पर सुव्यवस्थित रूप से शासन करने को अधिक महत्व दिया और इसीलिए उसने अपनी बङ्गाल तथा सिन्ध की असफलताओं पर ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार उसने अपने जीवन काल तक साम्राज्य की बहुत कुछ रक्षा की। लेकिन इसके अर्थ यह नहीं कि साम्राज्य विघटन में फिरोज का कोई दोष नहीं। फिरोज ने अनेक ऐसे कार्य किए जिनका भावी परिणाम अच्छा नहीं था। यह बात दूसरी है कि उसके कार्य उसके जीवन काल में अपना विकृत स्वरूप नहीं धारण कर पाये लेकिन भविष्य में तो उन्होंने साम्राज्य की कब्र खोद ही दी थी। साम्राज्य के लिए घातक फिरोज तुगलक की नीति की आलोचना निम्न शीर्षकों में की जा सकती है.

१ व्यक्तिगत दुर्बलताएँ—जैसा हम ऊपर कह आये हैं फिरोज तुगलक महत्वाकांक्षी और योग्य सेनानी शासक के स्थान पर एक उदार और दयालु शासक था। लोगों ने उसकी उदारता और करुणा का अनुचित लाभ उठाया जिससे शासन-व्यवस्था शिथिल पड़ गयी। राजकर्मचारियों में दुराचरण और प्रलोभ की प्रवृत्तियाँ घर करने लगीं। राज्य-भ्रष्टाचार बढ़ता गया और फिरोज शाह उस ओर से उदासीन बना रहा। परिणामस्वरूप फिरोज ने अपनी उदार नीति से उत्कोच, भ्रष्टाचार और दुराचरण के विकास में सहायता पहुँचायी और शासन की नींव में घुन लगा दिया।

२. जागीर प्रथा का प्रचलन—फिरोज द्वारा प्रचलित जागीर प्रथा का भी साम्राज्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। कुछ दिनों तक तो ये जागीरदार उचित रूप से अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते रहे। परन्तु जैसे केन्द्रीय सत्ता में हलचल हुई ये जागीरदार अपनी-अपनी शक्ति बढ़ाने में लग गये और तुगलक साम्राज्य की शृंखलाएँ शिथिल होती गईं और वे स्वतन्त्र होने की चेष्टा करने लगे।

३. सैन्य व्यवस्था—सैन्य शक्ति साम्राज्य का एक प्रकार से मूलाधार थी और अब वही जर्जर होती जा रही थी और फिरोज तुगलक ने बजाय इसके कि वह उसका उचित और संगठित प्रबन्ध करे उसने अपने निर्बल प्रबन्ध द्वारा रही सही सैन्यशक्ति को भी पतन के गर्त में ढकेल दिया। उसने प्रथम सैनिकों को जागीरें प्रदान [illegible] सैन्यशक्ति को धक्का पहुँचाया। क्योंकि जागीर पाने के बाद से उनका [illegible] की ओर

मुसलमानों के हाथ लगी और राजपूतों की स्वतन्त्रता समाप्त हो गई तथा मालवा में एक प्रतिनिधि शासक नियुक्त कर दिया गया। उस समय से लेकर फिरोज तुगलक की मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य के विनष्ट होने तक मालवा दिल्ली साम्राज्य का ही एक अंग बना रहा और साम्राज्य के प्रतिनिधि ही उस पर शासन करते रहे। फिरोज शाह तुगलक के शासन काल में मालवा पर दिल्ली का प्रतिनिधि शहाबुद्दीन गोरी का वंशज दिलावर खाँ एक जागीरदार के रूप में शासन करता रहा। तैमूर के आक्रमण के पश्चात् जब वह मृत्यु, विनाश, विध्वंस और अव्यवस्था बिखेरता हुआ आया और चला गया तो दिलावर खाँ ने अच्छा अवसर देख कर १४०१ में मालवा में अपनी स्वतन्त्र सत्ता घोषित कर दी। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र हुशंग गद्दी पर बैठा। उसने धार से हटा कर माण्डू को राज्य की राजधानी होने का गौरव प्रदान किया। उसने माण्डू को भव्य भवनों, एवं विशाल प्रसादों से अलंकृत किया और इसीलिए आज भी अपनी गोद में ध्वंसावशेषों को धारण किये, जिन्हें हृदय से लगाये मालया, जामामस्जिद, हिंडोला महाल, जहाज महल, हुशंग का मकबरा, रोमान्टिक बाज बहादुर तथा रूपवती के महल, लाल पत्थर तथा संगमरमर के सुन्दर भवनों की मौन भाषा द्वारा अपने बीते दिनों की समृद्धि की कहानी कहता प्रतीत होता है। अपनी उर्वरा भूमि तथा समृद्धि के कारण मालवा को गुजरात, मेवाड़, खानदेश आदि अनेक राज्यों से युद्ध करने पड़े थे। हुशंग का भी गुजरात से संघर्ष हुआ उसमें वह पराजित हो गया और १४३४ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

हुशंग—हुशंग के बाद उसका अयोग्य और विलासी पुत्र गजनी खाँ शासक हुआ, वह गोरी मालवा के गोरी राज्यवंश का तीसरा और अन्तिम शासक था। १४३६ ई० में उसका वध कर मन्त्री महमूद खाँ खिलजी ने सिंहासन अपहृत कर लिया। महमूद ने अपना समस्त जीवन युद्ध करते और रथल के सैनिक शिविरों में व्यतीत किया। इससे उसकी युद्धप्रियता का स्पष्ट आभास मिलता है। फरिश्ता के अनुसार "शायद ही कोई ऐसा वर्ष बीता हो जब वह युद्ध क्षेत्र में न उतरा हो। इसलिए शिविर उसका घर और रणस्थल उसका विश्रामस्थल बन गया था।" वह एक न्यायपरायण और उदार शासक था। उसके शासन में मालवा अत्यन्त समृद्ध और शक्तिशाली राज्य बन गया था। यही नहीं उसने राजपूताना, गुजरात तथा बहमनी वंश के शासकों से युद्ध करके अपनी शक्ति भी प्रदर्शित की। उसके राज्य का विस्तार दक्षिण में सतपुड़ा पर्वत श्रेणी तक, पश्चिम में गुजरात की सीमा तक, पूर्व में बुन्देलखण्ड और उत्तर में मेवाड़ तक था। महमूद के दो वीरतापूर्ण कार्य अधिक उल्लेखनीय हैं। प्रथम अपनी दिल्ली का सुल्तान होने की महत्वाकांक्षा से दिल्ली की ओर कूच करना (यद्यपि उसे बाद में लौटना पड़ा) और द्वितीय मेवाड़ के राणा कुम्भा से टक्कर लेना। युद्ध का परिणाम अनिश्चित रहा, इसीलिए दोनों ने अपने को विजयी समझा और राणा ने चित्तौड़ में विजय स्तम्भ का निर्माण कराया तथा महमूद ने माण्डू में सात मंजिली मीनार बनवायी। जैनग्रन्थ के अनुसार राणा कुम्भा ने महमूद को बुरी तरह पराजित किया था।

महमूद के बाद उसका विलासप्रिय पुत्र गयासुद्दीन सिंहासनासीन हुआ परन्तु उसके पुत्र नासिरुद्दीन ने विष देकर मार डाला और इस प्रकार पिता के खून से

भारतीय ऐतिहासिक चित्रपट अनेक प्रकार की राजनैतिक अव्यवस्था के चित्रों से चित्रित था।

फिरोज की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली के रक्तरंजित राजसिंहासन पर छः उत्तराधिकारियों ने शासन किया—

१ तुगलक शाह 'गयासुद्दीन तुगलक द्वितीय'—१६ फरवरी १३८६ तक
२. अबूबकर—अगस्त १३६० तक
३ मुहम्मद द्वितीय—१३६०-६४ तक
४. सिकन्दर प्रथम—१३६४
५ नसरत शाह
६ महमूद शाह—१३६६-१४१२ ई० तक

ये सब के सब अयोग्य दुर्बल और प्रभावरहित सुल्तान थे। इनके शासन काल में राज्य किसी प्रकार की शक्ति का सचय नहीं कर सका और जिस समय दिल्ली का सुल्तान महमूद तुगलक था उसी समय तुगलक साम्राज्य के ऊपर तैमूर के आक्रमण रूप में विनाश के काले बादल घिर आये।

तैमूर का आक्रमण—तैमूर का कयामत सा बरपा कर देने वाला हमला तुगलक सल्तनत को तहस-नहस और विनाश का सदेश लेकर आया था। मृत्यु और महानाश के पदचिन्हों पर चलकर तैमूर ने सल्तनत की जड़ उखाड़ दीं और जिसके भारी आघात न सह सकने के कारण सल्तनत ने अन्तिम साँस लेते हुए १४१२ ई० मे अपना दम तोड़ दिया। महमूद की मृत्यु के बाद ६६ वर्ष तक शासन करने के पश्चात् तुगलक राज्य वश की इति हो गई। इस अवधि मे उत्तरी-भारत अनेक स्वतन्त्र राज्यों में बँट गया था।

१ दिल्ली
२. सिन्ध
३. गुजरात
४. मालवा
५. जौनपुर
६. बंगाल

इसके अतिरिक्त काश्मीर तथा राजपूताना का राज्य भी था। नैपाल, आसाम तथा उड़ीसा का उल्लेख करना आवश्यक है क्योंकि देश की राजनीति से उनका कभी कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहा।

अब हम सुविधा के लिए इन प्रान्तीय राज्यों के विषय में स्वतन्त्र रूप से संक्षेप में विचार करेंगे।

मालवा

मालवा के राजपूतों ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए मुसलमानों के साथ संघर्ष किया था परन्तु १३१० ई० में जब अलाउद्दीन खिल्जी ने मा
किया तो राजपूतों ने डट कर सामना किया। भयंकर युद्ध के

बिखर गयीं और साम्राज्य में अव्यवस्था तथा अराजकता का नृत्य होने लगा तो गुजरात के प्रान्ताध्यक्ष जफर खाँ ने १४०१ ई० में अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी और दिल्ली से वैधानिक सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और पुत्र तातार खाँ को स्वतन्त्र शासक के रूप में गद्दी पर बिठाकर उसके नाम का खुतबा पढ़वाया। तातार खाँ ने नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह की उपाधि धारण की थी। कुछ समय बाद कुछ कारणों से उसके पिता ने उसका वध करवा दिया और मुजफ्फर शाह के नाम से स्वयं गद्दी पर बैठ गया परन्तु कुछ ही समय बाद उसे भी उसके नाती अहमदशाह ने उसको विष देकर सिंहासन अधिकृत कर लिया।

अहमदशाह—इस प्रकार अपनी स्वतन्त्रता के प्रारम्भिक दिवसों मे ही गुजरात का यह राजसिंहासन रक्तरञ्जित हो उठा। अहमदशाह ने ३० वर्षों तक बड़ी ही योग्यता से शासन किया। उसने साबरमती के तट पर अहमदनगर नामक एक भव्य नगर की स्थापना की और राज्य विस्तार की नीति अपना कर उसने अपना समस्त जीवन युद्धो मे लगा दिया और पड़ोसियो मे संघर्ष करता रहा। १४१४ ई० मे उसने गिरि पर आक्रमण कर, राय माण्डलिक को हरा कर उससे जूनागढ़ का दुर्ग छीन लिया। उसने दो बार मालवा पर आक्रमण किया परन्तु वहाँ के शासक हुशागशाह के क्षमा माँग लेने पर सन्धि हो गयी और युद्ध होने से बच गया। १४२४ ई० मे उसने ईडर के राव पुञ्जा पर चढ़ाई कर दी। राव भाग गया और बहुत सा धन लेकर तथा कर देने का वचन लेकर जागीर उसके पुत्र को सौंप दी गई। १४३७ ई० को उसने पुन माण्डू की ओर ससैन्य कूँच किया लेकिन ईश्वर को उसकी यह विजय स्वीकार नहीं थी, अत अकस्मात महामारी का प्रकोप हुआ और अहमदशाह को अहमदनगर वापस लौट आना पड़ा, जहाँ १४४१ ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी।

अहमदशाह एक नीति-निपुण, योग्य और कुशल शासक तथा दुर्धर्ष सेनानी था। उसमें उच्च कोटि की महत्वाकांक्षा थी तथा उच्च कोटि की न्यायप्रियता भी। न्याय का अत्यधिक प्रेमी होने के कारण ही उसने अपने दामाद को, जिसने एक निर्दोष व्यक्ति की हत्या कर दी थी, सार्वजनिक रूप से प्राणदण्ड दे दिया था। न्याय करने और सरकारी नौकरी देने में वह वंश, कुल आदि पर ध्यान नहीं देता था। लेकिन अपने समकालीन फिरोज बहमनी की भाँति उसमे भी धार्मिक सहिष्णुता का अत्यधिक अभाव था। उसने हिन्दुओ के ऊपर अनेक अत्याचार किये और उनके देवालयों एव अन्य पवित्र स्थानो को ध्वस्त कर दिया। कितने ही हिन्दुओ को तो उसने बलात् मुसलमान बनाने के लिए बाध्य कर दिया था।

१४४१ से लेकर १४५८ तक गुजरात के राज्य सिंहासन पर तीन सुल्तान बैठे। अहमदशाह की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मुहम्मदशाह 'जरकश' गद्दी पर बैठा। उसने चम्पानेर पर आक्रमण किया था लेकिन चम्पानेर को मालवा की सहायता मिल जाने के कारण उसे लौटना पड़ा। १४५१ मे उसके अमीरों ने उससे असन्तुष्ट होकर उसका वध करवा दिया तथा उसके पुत्र कुतुबुद्दीन को गद्दी पर बैठा दिया। साढ़े आठ वर्ष के शासन के पश्चात् १४५९ मे उसकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात् एक सप्ताह के लिए उसका चाचा दाऊद गद्दी पर बैठा लेकिन सप्ताह भर बाद ही उसे

पने हाथों को रङ्ग कर उसने सिंहासन अधिकृत किया। नासिरुद्दीन एक अधम, भोग-परायण और अत्याचारी शासक था। उसके 'हरम' में १५,००० हजार स्त्रियाँ थीं। १६१७ ई० में जब जहाँगीर आया और उसने नासिरुद्दीन के काले कारनामें सुने, तो उसको इतनी घृणा और इतना क्रोध हुआ कि उसने उसकी कब्र खोदवा कर उसे आग में फेंकवा दिया। उसकी मृत्यु के बाद द्वितीय महमूद गद्दी पर बैठा वह भी एक अयोग्य और निर्बल शासक था। चन्देरी के मेदनीराव उसके प्रमुख परामर्शदाता थे परन्तु मेदनीराव के बढ़ते हुये प्रभाव से महमूद के कान खड़े हो गये और उसने उसे निकालने के लिए गुजरात के शासक मुजफ्फरशाह से सहायता माँगी और मेवाड़ के दुर्धर्ष योद्धा, प्रसिद्ध पराक्रमी राणासाँगा से टक्कर ले बैठा। जिससे महमूद को मुँह की खानी पड़ी और वह बन्दी बना लिया गया परन्तु राणा ने उसे मुक्त कर दिया। १५३१ ई० में गुजरात के शासक बहादुर शाह ने मालवा पर आक्रमण कर दिया और सुल्तान के साथ समस्त शाही परिवार को कत्ल करा कर मालवा को गुजरात में मिला लिया। १५३५ ई० में हुमायूँ ने बहादुर शाह को मन्दसोर तथा माण्डू में परास्त कर मालवा छोड़ देने के लिए विवश कर दिया। लेकिन हुमायूँ के भाग्य नक्षत्रों ने ही प्रतिकूल दिशा ग्रहण की और परिणामस्वरूप हुमायूँ को ही उत्तर की ओर जाने पर विवश होना पड़ा। शेरशाह ने जब दिल्ली राज्य की बागडोर सम्भाली तो मालवा का शासन शुजाअत खाँ को सोंपा जिसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र बाजबहादुर जो सारङ्गपुर की अद्वितीय सुन्दरी राजकुमारी रूपमती से सम्बन्धित अनेक मधुर और सुकुमार लोक-गीतों का नायक है, बाज बहादुर मालवा का शासक बना। १५६२ ई० में अकबर के जोरदार आक्रमण ने मालवा को विजित करके, मुगल साम्राज्य का एक अंग बना दिया।

गुजरात

गुजरात अपने प्रसिद्ध व्यापारिक बन्दरगाहों के व्यापार केन्द्र होने के कारण, अपनी समृद्धि के लिए सदैव विख्यात रहा है। गुजरात के समृद्ध प्रान्त में आधुनिक काठियावाड़, बड़ौदा तथा बम्बई के अनेक जिले सम्मिलित थे। सूरत, खम्भात, तथा भड़ौच प्राचीन काल से ही व्यापारों के प्रधान केन्द्र तथा विदेशों की राशि धन सम्पत्ति के भारत में आने के प्रमुख द्वार रहे हैं। ११२१ ई० में महमूद गजनी ने सोमनाथ के विध्वंस के पश्चात् जिस अपार अकूत धन की प्राप्ति की थी उसने बाद के प्रायः सभी शासकों के हृदय में सोमनाथ विजय का लालच भर दिया था। सोमनाथ को लूटकर महमूद गजनी ने उस प्रदेश की समृद्धि का डंका पीट दिया था, अतः सभी सुल्तानों की ललचाई दृष्टियाँ गुजरात पर लगी रहती थीं। उस पर अनेक बार आक्रमण भी हुये लेकिन गुजरात की स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रही। लेकिन १२९७ ई० में यह प्रान्त अलाउद्दीन की साम्राज्यवादी लालसा की अग्नि में भस्म हो गया। अब गुजरात दिल्ली का एक अधीनस्थ प्रान्त था और सुल्तान का प्रतिनिधि वहाँ का शासक। यह १४०१ ई० तक चलता रहा। भयङ्कर उत्पात मचाता हुआ प्रलयकालीन तूफान की भाँति जब तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया तो दिल्ली राज्य की लड़खड़ाती नींवें जर्जर होकर

हो गया। महमूद एक न्यायप्रिय, शूर वीर, तथा प्रतापी शासक होने के बावजूद भी अपनी धार्मिक असहिष्णुता के कारण हिन्दुओं का लोकप्रिय नहीं बन सका फिर भी जैसा मुस्लिम इतिहास ने लिखा है—

"उसने गुजरात के गौरव तथा ऐश्वर्य में अभिवृद्धि की। वह अपने पूर्ववर्ती तथा परवर्ती सभी गुजरात के शासकों में सर्वश्रेष्ठ था और न्याय तथा उदारता में धर्मयुद्धों की सफलता और इस्लाम एव मुसलमानों के विधिविधानों के प्रसार में, ठोस निर्णय बुद्धि में, शक्ति शौर्य और विजय सभी में वह श्रेष्ठता का आदर्श था।"

महमूद बीगड़ के पश्चात् दूसरा प्रतिभाशाली सुल्तान बहादुर शाह १५२६ ई० में गुजरात की गद्दी पर बैठा। इसके बीच में द्वितीय मुज्जफर शाह तथा सिकन्दर शाह और नासिर खाँ द्वितीय महमूद ने थोड़े-थोड़े समय तक शासन किया। उसने १० वर्षों तक बड़ी योग्यता से शासन किया। एक उच्च कोटि के विजेता और सेनानी के रूप में उसने गद्दी पर बैठने के बाद ही फतह पर फतह हासिल की। उसने माडू चन्देरी पर अधिकार किया। १५३४ में उसने चित्तौड़ पर चढ़ाई की और परिणामस्वरूप राजपूत बालाओं ने जौहर की पवित्र अग्नि प्रज्वलित की। बहादुरशाह की बढ़ती हुई शक्ति ने हुमायूँ को चौकन्ना कर दिया और इसीलिए जब वह चित्तौड़ पर घेरा डाले था हुमायूँ ने गुजरात पर आक्रमण कर दिया और माण्डू तथा चम्पानेर पर अधिकार जमाता हुआ वह गुजरात का स्वामी बन गया। इसी समय हुमायूँ को बङ्गाल में शेर खाँ के विद्रोह का समाचार मिला और गुजरात में भाई अस्करी को छोड़ कर वह दिल्ली की ओर चला गया। इसी समय बहादुर शाह ने अपनी बची खुची सेना एकत्र कर शाही सेना को मात दी और पुन गुजरात को अधिकृत कर लिया। परन्तु इसके बाद ही पुर्तगाली लोग, जिन्होंने अस्करी के विरुद्ध, गुजरात को अधिकृत करने में उसकी मदद की थी, उसके शत्रु बन गए क्योंकि वह इन्हें ड्यू से निकालना चाहता था। आखिर पुर्तगालियों ने जब वह पुर्तगाली गवर्नर 'नूनो-द-कुन्हा' से भेंट करने गया था जहाज से समुद्र में ढकेल दिया।

बहादुरशाह की मृत्यु के बाद गुजरात में अशान्ति छा गयी, चारों ओर अराजकता और अव्यवस्था पनप उठी। सुल्तान प्राय अमीरों के हाथ की कठपुतलियाँ बन गये। अन्त में १५७२ में अकबर महान ने गुजरात को भी जीत कर मुगल साम्राज्य का एक अंग बना दिया।

बङ्गाल

११९९ के लगभग बिहार पर विजयपताका फहराने के पश्चात् कुतुबुद्दीन की सेनाएं वहीं रहीं। मुहम्मद बिन बख्तियार के सेनापतित्व में कुतुबुद्दीन की सेनाओं ने आगे को कूच किया और तत्कालीन शासक लक्ष्मणसेन उनके आक्रमण को सुन कर भाग खड़ा हुआ। बख्तियार ने उसकी राजधानी नदिया को जी भर लूटा और जला। पर मुस्लिम सत्ता की स्थापना हो गई। बख्तियार ने नदिया के स्थान पर लखनौती को राजधानी बनाया और दिल्ली के सुल्तान के प्रतिनिधि रूप में शासन करने लगा।

कुख्यात विलासी को अपदस्त कर सिंहासन पर फतह खाँ को बिठाया गया । उसने
महमूद की उपाधि धारण की। इतिहास में वह महमूद बीगड़ के नाम से प्रसिद्ध है।
उसने १४५६ से लेकर १५११ तक ५२ वर्षों तक शासन किया।

महमूदशाह बीगड़—महमूद शाह बीगड़ अपने वंश का सर्वाधिक प्रतिभा-
शाली सुल्तान था। वह गुजरात का महानतम सुल्तान कहा जा सकता है। ऐतिहासिक
अनुश्रुतियों के आधार पर बीगड़ एक असाधारण व्यक्ति था। 'मीरात-ए सिकन्दरी' के
अनुसार वह प्रति दिन गुजराती तौल से एक मन भोजन करता था, इसके अतिरिक्त
वह ५ सेर चावल का हलुवा बनवा कर आधा शैय्या के बायीं ओर तथा आधा दायीं
ओर रख लेता था ताकि जिस करवट उसकी आँख खुले उसी ओर वह खाने लगे
और फिर सो जाये। प्रात.काल जलपान के रूप में वह सौ डेढ़-सौ केले, एक पाव मधु
तथा एक पाव मक्खन ग्रहण करता था। वह कहा करता था यदि भगवान ने मुझे गद्दी
पर न बैठाया होता तो मेरी भूख कौन शान्त करता। कहते हैं कि उसका शरीर इतना
विषाक्त था कि मक्खी भी बैठने पर मर जाती थी। लेकिन महमूद केवल पेटू या
भोजनभट्ट ही नहीं था बल्कि योग्यता भी उसमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। १४६१ में
उसने मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी के विरुद्ध निजामशाह बहमनी को छुटकारा
दिलाया। फिर १४६७ में वह जूनागढ़ पर चढ़ बैठा। अपनी शक्ति और अपने
आक्रमणों से कुछ ही दिनों में उसने सूरत और कच्छ को अपने राज्य में मिला लिया।
इसके पश्चात् उसने जगात के जल दस्युओं पर ध्यान दिया और शीघ्र ही उनका दमन
कर दिया। १४८४ ई० में उसने चम्पानेर के राज्य को परास्त कर के चम्पानेर भी
राज्य में मिला लिया। इस विजय के उपलक्ष में स्मारक रूप में उसने चम्पानेर
के चतुर्दिक एक प्राचीर बनवायी और नगर का नाम मुहम्मदाबाद रख दिया।

अपने शासन के अन्तिम वर्षों में उसने पुर्तगालियों से टक्कर ली। इसे पुर्तगाली
लोगों ने पश्चिमी समुद्र तट पर बस गये थे और कालान्तर में इन्होंने काफी शक्ति बढ़ा
ली थी। पश्चिमी समुद्र तट पर पुर्तगालियों की सत्ता स्थापित हो जाने के कारण मुसल-
मानों के व्यापार को काफी हानि पहुँच रही थी। सन् १५०७ ई० में महमूद ने एक जल-
पोत तैय्यार कर पुर्तगालियों पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण में टर्की के सुल्तान
ने भी सहयोग दिया क्योंकि स्थलीय व्यापार में पुर्तगालियों के कारण उनको भी क्षति
उठानी पड़ती थी। गुजरात तथा टर्की सम्मिलित जहाजी बेड़ों ने मिल कर काठियावाड़
तट के निकट ड्यू के द्वीप के समीप पुर्तगालियों से सामुद्रिक युद्ध किया। शायद
भारतीय इतिहास में मुसलमानों तथा ईसाइयों का पहला गहरा संघर्ष था जिसमें
पुर्तगालियों की पराजय हुई। पुर्तगाली प्रतिनिधि शासक डी आलमीडा का पुत्र दोम
लोरन्को जो, अभी २१ वर्ष का भी नहीं था वीरतापूर्वक अपनी सेना का संचालन
करता हुआ मारा गया। पुर्तगाली पराजित हुए उनका जहाज डुबो दिया गया। लेकिन
दो वर्ष बाद ही आलमीडा तथा अल्बुकर्क के नेतृत्व में पुर्तगालियों ने मुसलमान के ड्यू
का द्वीप छीन कर अपनी क्षति पूरी कर ली। इसके बाद एशियाई जातियों का सामु-
द्रिक व्यापार बन्द हो गया।

१५११ ई० में आधी शताब्दी तक राज्य करने के पश्चात् महमूद का देहान्त

२४ वर्ष के शासनकाल में कोई विद्रोह या उपद्रव नहीं हुआ। उसका शासन शान्ति-पूर्ण तथा सुखमय रहा। प्रजा उससे प्रेम करती थी तथा पड़ोसी सम्मान।"

१५१६ ई० में हुसैन शाह की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र नसरत शाह सिंहासनासीन हुआ। राज्य शासन में उसने अपने पिता के पदचिह्नों पर ही चरण उठाये। वह भी अपने पिता की भाँति एक वीर तथा नीतिज्ञ शासक और साहित्य तथा कला-प्रेमी था। एक वीर सेनानी तथा योद्धा शासक के रूप में उसने तिरहुत पर चढ़ाई की। मुँगेर तक घुसता चला गया। मुँगेर को जीतकर उसने सेनानायक कुतुब खाँ को मुँगेर सौंप दिया। बाबर ने अपने संस्करणों में उसे दुर्धर्ष शक्तिशाली पाँच मुस्लिम शासकों में एक बताया है। अन्तिम दिनों में कला तथा साहित्य का आश्रय-दाता होने पर भी वह स्वभाव का कठोर तथा क्रूर हो गया था १५३२ में नुसरत खाँ की मृत्यु हो गयी।

नुसरत के पश्चात् दो सुल्तानों ने उसके पुत्र अलाउद्दीन फिरोज शाह तथा गयासुद्दीन महमूद शाह ने १५३८ तक और राज्य किया। बाद में शेर खाँ ने महमूद शाह को पराजित कर अपने को बंगाल का स्वामी घोषित कर दिया। एन्टीक्रर्ट के अनुसार जिन्होंने 'हिस्ट्री आफ बङ्गाल" लिखी है—महमूद की मृत्यु के उपरान्त बङ्गाल के स्वतन्त्र शासकों की परम्परा समाप्त हो जाती है। इसके अनन्तर करीब ३२ वर्षों तक बङ्गाल अफगानों द्वारा शासित रहा और अन्त में १५७० ई० में अकबर ने बङ्गाल के शासक दाऊद को पराजित किया और बंगाल मुगल साम्राज्य के वृहदोदर में समा गया।

सभ्यता तथा संस्कृति—कुछ इतिहासकारों के अनुसार हुसैनी वंश का शासन बंगाल के मुस्लिम शासन काल का स्वर्ण युग था। बङ्गाल के इन शासकों में कला और साहित्य के प्रति प्रेम तथा रुचि थी ईंटों से विचित्र शैली में निर्मित बङ्गाल की तमाम मस्जिद और अन्यान्य इमारतें इन मुस्लिम शासकों की वास्तुकला के प्रति रुचि की परिचायिका हैं। हुसेन शाह का मकबरा तथा उसकी बनवायी हुई अनेक मस्जिदें तथा नसरत शाह द्वारा निर्मित १५० फीट लम्बा सहन वाली सुनहली मस्जिद तथा कदम रसूल इन सुल्तानों की वास्तुकलाप्रियता के उत्कृष्ट आदर्श हैं। इसके पूर्व १३५८ में पडुआ में ४०० छोटे छोटे गुम्बद वाली अदीना मस्जिद का निर्माण करवाया था।

धर्म की दृष्टि से बङ्गाल का एक महत्वपूर्ण योग है। बंगाल धार्मिक अत्याचार से बहुत दिनों मुक्त रहा। इसके कई कारण हो सकते हैं यथा प्रथम तो सुदूरपूर्व में होने के कारण। मुसलमान वहाँ अपेक्षाकृत बाद में पहुँचे। द्वितीय हुसेन शाह तथा नुसरत शाह की उदार नीति ने हिन्दू और मुसलमानों में अन्तर नहीं पैदा होने दिया अतएव हिन्दू और मुसलमान प्रजा के बीच में कोई धार्मिक दृष्टि से कोई अन्तर रह [illegible] था। तृतीय चौदहवीं शताब्दी में [illegible] फकीरों के आन्दोलन अत्यधिक [illegible] चल पड़ा और कुछ ही वर्षों में स्थान स्थान पर इन धार्मिक फकीरों की गद्दियाँ स्थापित हो गयीं और इन फकीरों ने जनता को ईश्वर के प्रति प्रेम का जो पाठ

आवागमन के साधनों के अभाव में बंगाल दिल्ली के अति दूरस्थ प्रान्तों में एक था, इस कारण यूं कहने को तो दिल्ली का आधीन प्रान्त बना रहा। लेकिन वहाँ के प्रतिनिधि शासक अपने प्रान्त में सदैव स्वतन्त्र सुल्तान की सी नीति का प्रयोग करते रहे। तुगरिल खाँ को दण्ड देकर बलबन ने बंगाल पर अपनी पूर्ण सत्ता स्थापित करने का प्रयास किया था और इसीलिए उसने अपने पुत्र बुगरा खाँ को बंगाल का प्रान्तीय शासक नियुक्त किया था। १३३८ ई० तक बंगाल का शासन बुगरा खाँ के उत्तराधिकारियों के अधीन रहा। परन्तु शीघ्र ही बंगाल में गृहयुद्ध की प्रवृत्तियाँ सक्रिय हो उठीं। नासिरुद्दीन तथा बहादुर शाह के पारस्परिक संघर्ष में नासिरुद्दीन को पराजित होकर गयासुद्दीन तुगलक से मदद माँगने के लिये विवश होना पड़ा। सुल्तान ने उसकी सहायता की और बहादुरशाह को पराजित कर नासिरुद्दीन को बंगाल का शासक बना दिया। अगर सच पूछा जाय तो बंगाल का स्वतन्त्र शासन मुहम्मद तुगलक के काल से प्रारम्भ होता है। १२६७ ई० के लगभग पूर्वी तथा पश्चिमी बंगाल में दो पृथक राज्य बन गये थे। एक ओर फखरुद्दीन नामक एक विद्रोही व्यक्ति ने बंगाल के तत्कालीन गर्वनर की हत्या कर रक्तरंजित हाथों से पूर्वी बंगाल में स्वतन्त्र शासन की प्रतिष्ठा की तथा दूसरी ओर अलाउद्दीन ने पश्चिमी बंगाल में अपनी प्रभुता स्थापित की। एक की राजधानी सोनार गाँव थी तथा दूसरे की लखनौती। सन् १३४० के लगभग इलियास खाँ पश्चिमी बंगाल का शासक हुआ उसने पुनः दोनों को संयुक्त कर एक कर दिया। कुछ इलियास खाँ के साहस और योग्यता तथा कुछ फिरोज तुगलक की कमजोर नीति के कारण बंगाल ने दिल्ली साम्राज्य से चिरकाल के लिए सम्बन्ध विच्छेद कर लिये और इलियास ने पडुवा में नई राजधानी बनाई।

इलियास खाँ की मृत्यु के उपरान्त १३५८ ई० में उसका पुत्र सिकन्दर शाह गद्दी पर बैठा। उसने अपनी नई राजधानी को अनेक वैभवशाली भवनों से अलंकृत करने का प्रयत्न किया। १३८९ में सिकन्दर की मृत्यु हो गयी और इसके बाद उसके उत्तराधिकारी बंगाल पर १४१४ तक शासन करते रहे। बीच में कुछ काल के लिये एक हिन्दू राजा गणेश ने इस वंश को सिंहासन से च्युत कर स्वयं शासक बन बैठा उसके बाद उसके दो पुत्रों ने शासन किया। लेकिन शीघ्र ही इन कमजोर शासकों को हटाकर इलियास वंश ने अपनी सत्ता स्थापित कर ली और १४८७ ई० तक राज्य किया। इसके पश्चात् बारबक नामक एक हिंजड़े ने सुल्तान की हत्या कर दी और हब्शी वंश की स्थापना की जिसके शासन काल में बारबक के तीन उत्तराधिकारियों ने १४९३ तक बङ्गाल में शासन किया।

बंगाल का स्वर्ण काल काल की दृष्टि से पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक से और शासक की दृष्टि से हुसेनशाही वंश की शक्ति स्थापित हो जाने के उपरान्त से प्रारम्भ होता है। हुसेन शाह बंगाल के हब्शी शासक का मन्त्री था। उसने अपने स्वामी की हत्या करके ही यह राजसिंहासन अधिकृत किया था। वह अरब जाति का सैय्यद था तथा एक योग्य और शक्तिशाली शासक था। उसने २४ वर्षों तक शासन किया। वी० ए० स्मिथ के शब्दों में "उसका नाम अब भी बंगाल में सुपरिचित है और उसके

जौनपुर

इस नगर की स्थापना का श्रेय फिरोजशाह तुगलक को है। सन् १३५९-६० ई० में जब बंगाल के सिकन्दर शाह के विरुद्ध अभियान किया गया था तो बरसात के दिन थे, अतः विवश होकर फौजों को जाफराबाद के निकट पड़ाव डाल देना पड़ा था। इसी समय अपने चचेरे भाई मुहम्मद जूना खाँ की स्मृति को स्थायी बनाये रखने के विचार से तथा बंगाल के समीप एक सैनिक स्कन्धावार की आवश्यकता के अनुसार गोमती के तट पर उसने एक नगर का शिलान्यास किया। इस नये नगर का नाम जौनपुर रखा गया और इसे हर तरह से अलंकृत करने का प्रयत्न किया गया। परिणामस्वरूप शीघ्र वह शक्ति और समृद्धि के शिखर पर चढ़ चला। जौनपुर की महत्ता का श्रेय उसके दो शासकों को अधिक है। प्रथम—ख्वाजाजहाँ और द्वितीय इब्राहिमशाह। ख्वाजाजहाँ का वास्तविक नाम सरवर था और वह एक हिंजड़ा था। वह एक योग्य व्यक्ति था, इसी कारण शीघ्र ही वह वजीर बनाया गया और ख्वाजाजहाँ की पदवी दी गई। कुछ समय उपरान्त जब हिन्दू जागीरदारों ने सिर उठाना प्रारम्भ किया तो मुहम्मद तुगलक ने ख्वाजाजहाँ को 'मलिक-उस्-शर्क' की उपाधि प्रदान कर पूर्वी प्रदेशों का अधिपति बना दिया और रणथम्भौर से बिहार तक का शासन उसके हाथों में सौंप दिया। इस नये अधिकार से सम्पन्न होकर ख्वाजाजहाँ ने दोआब के अन्तराल में प्रवेश किया और कन्नौज, कड़ा, अवध, सण्डीला, डलमऊ तथा बहराइच के जागीरदारों को कुचलता हुआ बिहार और तिरहुत तक पहुँच गया। तैमूर के तूफान ने तत्कालीन उत्तर भारतीय राजनीतिक गगन को जिस अराजकता और अव्यवस्था के कूड़े-करकट से भर दिया था उससे लाभ उठाने का लोभ ख्वाजाजहाँ संवरण नहीं कर सका और शीघ्र ही उसने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। ख्वाजाजहाँ की मृत्यु के उपरान्त उसके दत्तक पुत्र मुबारकशाह शर्की के नाम से शासक हुआ उसके बाद उसका छोटा भाई इब्राहीम शम्सुद्दीन इब्राहिमशाह शर्की के नाम से गद्दी पर बैठा।

इब्राहीम शाह एक योग्य और प्रतिभाशाली सुल्तान था। उसने लगभग ३४ वर्ष शासन किया। इब्राहिम ने सिंहासनासीन होने के बाद ही २ वर्षों बाद कन्नौज पर अधिकार कर लिया और दिल्ली की सीमावर्ती प्रदेशों को भी रह रह कर आक्रान्त करने लगा। परन्तु गुजरात के शासक मुजफ्फर शाह की प्रगति को सुनकर उसे जौनपुर लौट आना पड़ा। इसके उपरान्त उसने कालपी के कुदरखाँ पर चढ़ाई की परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। इसी बीच खिज्र खाँ के दिल्ली के शासक हो जाने के कारण दिल्ली के राजनीतिक मानचित्र की अवस्था काफी अस्त व्यस्त हो गई थी। लेकिन इब्राहिम शाह इसके बाद भी अनेक वर्षों तक अत्यन्त शान्तिपूर्वक शासन किया।

मुस्लिम इतिहासकारों ने उसे अत्यधिक प्रशंसा का पात्र बनाया है। सम्भवतः इसके मूल में उसकी धार्मिक कट्टरता थी। उसने अनेक हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त कर उनके प्राप्त सामान से मस्जिदों का निर्माण कराया। अटाला देवी के मन्दिर के स्थान पर अटाला मस्जिद की स्थापना हुई। धार्मिक दृष्टि से असहिष्णु होने पर भी इब्राहिम

पढ़ाया उसने जनता को हिन्दू तथा मुस्लिम, इन दोनों जातियों को एक दूसरे के काफी निकट ला दिया था। चतुर्थ बङ्गाल के शासकों का हिन्दू-साहित्य के प्रति रुचि लेना। जैसा स्मिथ ने लिखा है "कुछ मुस्लिम सुल्तान ऐसे थे जो हिन्दू साहित्य के गुणों के प्रति उदासीन नहीं रहे। नसरत शाह की आज्ञा से 'महाभारत' का एक बङ्गाली रूपान्तर तैय्यार किया गया। कहा जाता है कि इस महाकाव्य का एक बंगाली रूपान्तर १४वीं शताब्दी में हो चुका था, दूसरा हुसैन शाह के सेनापति परगल खाँ की आज्ञा से तैय्यार किया गया था। बंगाली साहित्य में ऐसे अनेक उल्लेख आते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि सुल्तान हुसैन शाह के प्रति हिन्दुओं को अत्यधिक श्रद्धा थी।" इस प्रकार स्पष्ट है कि सुल्तानों ने बङ्गाल साहित्य के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया था और भारतीय साहित्य के प्रति अपनी रुचि प्रदर्शित की थी। कृत्तवासा ने चौदहवीं शताब्दी में रामायण का बँगला अनुवाद किया।

वोल्जले हेग ने बंगाल के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं —

"बंगाल न तो दिल्ली सल्तनत के प्रान्त के रूप में और न स्वतन्त्र राज्य के रूप में ही कभी सजातीय मुस्लिम राज्य रहा था। बड़े-बड़े हिन्दू सामन्तों के अधिकार में जो भूमि थी वह यथार्थ में छोटे-छोटे राज्यों के सदृश्य थी। मुस्लिम शासकों के प्रति उनकी राजभक्ति, शासक के चरित्र बल पर अवलम्बित थी जैसे स्वयं बङ्गाल के शासक की दिल्ली सुल्तान के प्रति। सामान्यतया बङ्गाल के मुस्लिम शासकों ने अपनी हिन्दू प्रजा के प्रति धार्मिक सहिष्णुता का व्यवहार किया। किन्तु पूर्वी बङ्गाल में मुसलमानों की संख्या के आधिक्य से स्पष्ट है कि समय-समय पर उस प्रान्त में धर्मान्तरण की तरंग अवश्य आयी होगी।"

वैष्णव धर्म की उन्नति की दृष्टि से भी बंगाल का नाम अत्यधिक आदर के साथ लिया जाता है। बुद्ध धर्म की राख से सुलगने वाली वैष्णव धर्म की चिनगारी ने शनैः-शनैः समस्त उत्तर भारत को आप्लावित कर दिया था। महाप्रभु चैतन्य ने माधुर्य प्रेम की जो सरस पयस्विनी प्रवाहित की उसमें बङ्गाल की हिन्दू जनता सराबोर हो उठी थी। चैतन्य के पश्चात् रूप और जीव गोस्वामी ने इस मधु भक्ति परम्परा को जारी रखा।

बङ्गाल का प्राचीन साहित्य अत्यधिक है। चौदहवीं शताब्दी में चण्डीदास सहज सम्प्रदाय का सर्वश्रेष्ठ व्याख्याता और गीतकार हुआ।

इस्लाम और हिन्दू तथा बौद्ध धर्म के सम्पर्क ने बङ्गाल में कुछ नए प्रभावों का सूत्रपात किया था जिनमें हुसैन शाह द्वारा सत्य पीर नामक एक सम्प्रदाय को प्रवर्तक था जिसमें हिन्दू और मुसलमानों को भी प्रेम और सहयोग के एक ही सूत्र में बाँधना था। 'सत्य पीर' का नाम ही संस्कृत (सत्य) और अरबी (पीर) का मिश्रण है। आगे चल अकबर द्वारा प्रवर्तित 'दीन इलाही' पन्थ भी इसी प्रकार का था 'सत्यपीर' के कुछ अनुयायी अब भी बङ्गाल में पाये जाते हैं।

इन सब कठिनाइयों का सामना करते हुए भी काश्मीर ने अपनी स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रखी।

काश्मीर के नये मुस्लिम राज्य वंश का सबसे क्रूर और धर्मान्ध शासक सिकन्दर था जिसने १३८६ से १४१० ई० तक राज्य किया। सिकन्दर शमसुद्दीन का पाँचवाँ उत्तराधिकारी था। सिकन्दर इतना क्रूर, हिंस्र और निर्मम था कि उसने हिन्दुओं पर वर्णनातीत अत्याचार किये। उसने हिन्दुओं के खून से इस्लाम की तलवार को स्नान कराया। हिन्दुओं के देवालय और पवित्र स्थान नष्ट-भ्रष्ट कर धराशायी कर दिये और तलवार के बल पर लोगों को धर्म परिवर्तन कर बलात् मुसलमान बनने पर विवश किया गया। सिकन्दर काश्मीर के इतिहास में बुतशिकन के नाम से याद किया जाता है। जैनुल अब्दीन (१४१७ १४६७ ई०) इस वंश का महानतम शासक था। उसने सिकन्दर की असहिष्णुता के शिकार और पीड़ित लोगों पर अपनी दयालुता और धार्मिक सहिष्णुता की शीतल छाया की। सिकन्दर के काल में मुसलमान बनने से इन्कार कर देने वाले कुछ लोग निर्वासित कर दिये गये थे। लेकिन सुल्तान जैनुल अब्दीन ने उनका काश्मीर में स्वागत किया। उसने हिन्दुओं को अनेक धार्मिक करों से मुक्त कर दिया और मन्दिरों के निर्माण की आज्ञा प्रदान कर दी। यही नहीं हिन्दुओं को सन्तुष्ट रखने के लिए उसने गोवध का निषेध कर दिया। अपने जीवन में उसने एक पत्नी व्रत का पालन किया था। वह न तो सुरा प्रेमी ही था न मांसाहारी। वह साहित्य और कला का प्रेमी था। उसने कलाकारों को प्रश्रय दिया और चित्रकला, संगीत कला तथा साहित्य को प्रोत्साहित किया। उसकी आज्ञा से संस्कृत तथा अरबी तथा फ़ारसी ग्रन्थों के अनुवाद प्रस्तुत किये गये। १४६७ में इस उदार तथा महान् शासक की, जो अपनी धार्मिक नीति में अकबर का पूर्वगामी था, मृत्यु हो गई और उसकी मृत्यु के पश्चात् काश्मीर का इतिहास महत्वपूर्ण घटनाओं से शून्य हो गया।

मेवाड़

राजपूत राज्यों में मेवाड़ अपने अनन्त वीरों और योद्धाओं के लिए प्रसिद्ध रहा है। इस राज्य की स्थापना बप्पा रावल ने आठवीं शताब्दी के प्रथम चरण में की थी। मेवाड़ का इतिहास मुसलमानों के साथ निरन्तर संघर्ष की रक्तरंजित कहानी है। अलाउद्दीन ने मेवाड़ पर मुस्लिम सत्ता का आधिपत्य स्थापित कर राजपूतों की वीरता और उनके स्वतन्त्र प्रेम को एक जबरदस्त चुनौती दी थी। परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता के ये अनन्य प्रेमी दीर्घ काल तक मुस्लिम सत्ता का बोझ अपने कंधों पर नहीं उठा सके और सुल्तानों के निर्बल काल में ही मेवाड़ ने राणा हम्मीर के नेतृत्व में अपने कन्धों पर से मुस्लिम सत्ता का जुआ उतार फेंका। राणा हम्मीर ने मेवाड़ को स्वतन्त्रता की ज्योति प्रदान की और उनके उत्तराधिकारियों ने समस्त मेवाड़ में इस उज्ज्वल पुंज की रश्मियाँ बिखेर कर चारों ओर चार चाँद लगा दिये। राणा कुम्भा मेवाड़ के प्रतापी शासकों में था। उसने १४३३ से १४६८ तक राज्य किया। इस प्रतापी शासक ने अनेक बार मालवा और गुजरात के मुस्लिम सुल्तानों को धूल

शाह साहित्य और कला में रुचि रखता तथा कलाकारों और साहित्यिकों को प्रश्रय प्रदान करता था। 'शरह ए-हिन्दी' तथा 'इरशाद-अल नाटक' जैसी पुस्तकों का रचयिता काजी शहाबुद्दीन उसका आश्रित था। इब्राहिम शाह की मृत्यु १४४० ई० में हो गयी।

इब्राहिम के पश्चात् उसका पुत्र महमूद गद्दी पर बैठा। महमूद शाह अपने पिता के समान ही एक योग्य शासक था। उसने कई बार दिल्ली आक्रान्त करने के प्रयास किये लेकिन बहलोल लोदी ने उन्हें निष्फल कर दिया। १४५७ ई० में महमूद शाह की मृत्यु हो गई। वह भी कलाकारों तथा साहित्यकारों को प्रश्रय और प्रोत्साहन देने में अपने पिता से पीछे नहीं था।

महमूद शाह के स्वर्गारोहण के पश्चात् जौनपुर के शासन की बागडोर उसके पुत्र मुहम्मद ने सँभाली। वह एक क्रूर और निर्मम व्यक्ति था जिसने कुछ ही दिनों में अपने चरित्र के कारण अपने विरोधियों की संख्या में आशातीत रूप से वृद्धि कर ली। अन्त में उसका वध कर दिया गया।

मुहम्मद के वध के अनन्तर उसका भाई हुसैन जौनपुर का शासक हुआ। मुहम्मद से जौनपुर के स्वतन्त्र शासकों की परम्परा समाप्त हो जाती है। उसने १४८६ ई० में दिल्ली पर चढ़ाई की थी। लेकिन उसे लेने के देने पड़ गये। बहलोल लोदी ने उसे बुरी तरह परास्त कर अपने पुत्र बारबक को जौनपुर का शासक नियुक्त कर दिया। इस प्रकार जौनपुर की स्वतन्त्रता का सूर्य अस्त हो गया।

साहित्य तथा कला के क्षेत्र में शर्की मुसलमानों ने बड़ी ही रुचि ली और उसके विकास के लिए उचित प्रोत्साहन दिया। इब्राहिम के काल में तो जौनपुर शीराजे हिन्द कहा जाता था। अन्तिम शासक हुसैन ने सङ्गीत के प्रेमी होने के साथ-साथ कला में भी रुचि दिखाई और अनेक इमारतों तथा मस्जिदों का निर्माण करवाया। मीनारों के स्थान पर, दरवाजों के स्थान पर बने हुए सूत्राग्रों के बीच में स्थित ऊँची मेहराबों की, नवीन और विचित्र शैली में बनी हुई ये मस्जिदें जौनपुर की स्वतन्त्र शैली के नमूने हैं।

काश्मीर

भारत के एक कोने में पश्चिमी हिमालय पर स्थित होने के कारण काश्मीर की स्थिति अत्यन्त सुरक्षित है, और इसी कारण वर्षों तक काश्मीर मुस्लिम आक्रमणों से बचा रहा। दिल्ली की सल्तनत हिन्दुस्तान के ऊपर अपने पंख फैलाये जा रही थी लेकिन काश्मीर में स्वतन्त्र हिन्दू राज्य था। चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में काश्मीर के भाग्य ने पलटा खाया और १३३९ ई० में हिन्दू राजा के मुस्लिम मन्त्री ने राजा को सिंहासनच्युत करके काश्मीर में नये राजवंश की स्थापना की। शाह मिर्जा ने काश्मीर के सिंहासन पर आसीन होते ही शमसुद्दीन की उपाधि धारण की थी। काश्मीर का राज्य १५८६ तक, जब अकबर ने काश्मीर अपने विस्तृत साम्राज्य में आत्मसात कर लिया, अपनी स्वतन्त्रता बचाये रहा। वैसे आक्रमण उसके ऊपर होते रहे यथा १०१५ में महमूद गजनी का आक्रमण हुआ था और १३९८ में तैमूर का। लेकिन

प्रताप को जन्म दिया और मेवाड़ पुनः एक बार अपनी समूची शक्ति और सामर्थ्य से मुगल सत्ता के विरोध में एक जबरदस्त चुनौती के रूप में साकार हो उठा ।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ दिल्ली सल्तनत के दुर्बल होने पर किन स्वतन्त्र प्रान्तीय राज्यों का उदय हुआ था ?

२. जौनपुर, मालवा और गुजरात के स्वतन्त्र राज्यो के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?

३ बंगाल, मेवाड़ और काश्मीर के स्वतन्त्र राज्यों पर प्रकाश डालिए ।

चढ़ायी और मालवा के सुल्तान को पराजित करने की स्मृति में चित्तौड़ में एक विजय स्तम्भ का निर्माण कराया। कृष्ण की अनन्य प्रेमिका और भगवान के गुणों की अमर गायिका मीराबाई राजा की पत्नी थी। राणा साँगा इस राज्य का दूसरा पराक्रमी और प्रतापी शासक हुआ। राणा साँगा विजयनगर के शासक कृष्णदेव राय का समकालीन था। संग्राम सिंह ने १५०८ ई० से १५२७ ई० तक राज्य किया। राणा संग्राम सिंह के काल में मेवाड़ अपने चरम उत्कर्ष की स्थिति में था। उसकी वीरता और युद्धप्रियता के विषय में कहा जाता है कि उसने १८ बार दिल्ली तथा मालवा के सुल्तानों को पराजय दी थी। चाहे यह बात विश्वसनीय न हो लेकिन इतना तो निश्चित ही है कि राणा संग्राम सिंह एक अद्वितीय सेनानी और महान् योद्धा थे। बाबर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है—

"राज्य तथा सेना दोनों की दृष्टि से विजयनगर का राजा सबसे शक्तिशाली है।...द्वितीय राणा संग्राम सिंह है जिसने अल्पकाल पूर्व ही अपने शौर्य, पराक्रम तथा तलवार की शक्ति पर वर्तमान महत्व प्राप्त कर लिया है।" रणथम्भौर, सारंगपुर, भिलसन, चन्देरी आदि प्रदेश जीतकर अपने राज्य का सीमा विस्तार किया था। राणा का सारा जीवन युद्ध के मैदानों में और तलवारों के सङ्गीत में बीता था। अपने अन्तिम और मेवाड़ के भाग्यनिर्णायक युद्ध कानवाह के मैदान में "अस्सी हजार अश्वारोही, सात-उच्चतम श्रेणी के नरेश नवराव और रावल या रावत उपाधिधारी १०४ सामन्त उसके साथ रणभूमि में उतरे। मारवाड़ तथा अम्बेर के शासक उसका प्रभुत्व स्वीकार करते और ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, राइसेन, काल्पी, चन्देरी आदि के राव उसके करद थे। उसका शरीर उसके कार्यों के ही अनुरूप था। अपनी मृत्यु के समय वह योद्धा का एक खण्ड मात्र था। उसकी एक आँख भाई से झगड़े में फूट गई थी, एक भुजा दिल्ली के लोदी सुल्तान से युद्ध में टूट गई थी और एक अन्य संग्राम में तोप का गोला लगने के कारण वह लँगड़ा हो गया था। उसके शरीर पर तलवार तथा भाले के अस्सी घाव थे।" एक इतिहासकार के शब्दों में "यदि उपरोक्त वर्णन को हम राणा साँगा का चित्र न मान कर हिन्दू भारत का मानें तो भी वह पूर्णतया सच्चा उतरेगा—वीरता पूर्ण किन्तु टूटा फूटा।"

जिस समय बाबर ने भारत पर आक्रमण किया था उस समय राणा साँगा का विचार था कि बाबर अन्य आक्रमणकारियों की भाँति दिल्ली को लूटता हुआ लौट जायेगा और तब मेरे लिए दिल्ली तथा उत्तरी भारत का सम्राट बनने में कोई बाधा नहीं रह जायेगी। लेकिन जो कुछ हुआ वह राणा की आशा के प्रतिकूल था। बाबर ने यहाँ स्थायी साम्राज्य की नींव डाल दी और राणा को विवश होकर इस विदेशी से मुठभेड़ करनी पड़ी। कानवाह के मैदान में राणा की बुरी तरह पराजय हुई और मेवाड़ की शक्ति अपनी अन्तिम साँस लेने लगी।

मेवाड़ की वीर आत्मा अभी साँसे ही ले रही थी उसने दम नहीं तोड़ दिया। परिणामस्वरूप शीघ्र ही मेवाड़ की वीर प्रसविनि वसुन्धरा स्वतन्त्रता

'मुजाहिद' बन सके।" धार्माचार्यगण तैमूर की इस बात को अस्वीकार न कर सके और तैमूर की सेनायें कूच के लिए तैयार होने लगीं।

अप्रेल १३९८ ई० में तैमूर एक-एक हजार के बानवे दल लेकर हिन्दुस्तान पर चढ़ आया। हिन्दुकुश पर्वत को पार कर २४ सितम्बर को उसने सिन्ध नदी पार की। नासीर सेना का एक दल पीरमुहम्मद के नेतृत्व में भारत पहले ही पहुँच चुका था जिसने उच्छ को अधिकृत कर मुलतान को भी जीत लिया था। सिन्ध नदी पार करने के बाद तैमूर लाहौर की ओर बढ़ा और वहाँ के गवर्नर मुबारक खाँ को परास्त किया। चिनाब के पास तैमूर की सेनायें और पीरमुहम्मद की सेनायें मिल गयीं। चिनाब को पार कर तैमूर तुलम्बा नगर पहुँचा और वहाँ के शासक यथरथ से जो खोखरो का सरदार था सुरक्षा के मूल्य में दो लाख रुपये की माँग की। सेना को आदेश दिया कि जहाँ भी अनाज दिखायी पड़े लूट लो क्योंकि भाण्डार कमजोर होता जा रहा है। इस प्रकार घटी हुयी सामग्री की पूर्ति कर तैमूर आगे बढ़ा—उसके नृशंस अत्याचारों और क्रूर कर्मों का काली कहानियाँ वायु के वेग से उसके आगे आगे पहुँच कर लोगों में भय और आशंका के भाव उत्पन्न कर रहीं थी। परिणामस्वरूप जब वह दीपालपुर पहुँचा तो नगर निवासियों ने भयभीत होकर नगर छोड़ कर भटनेर के दुर्ग में भाग कर शरण ली। तैमूर ने भटनेर को घेर लिया। वहाँ से राजा दूलीचन्द ने अपनी सामर्थ्य भर इन विदेशियों को दुर्ग में प्रवेश करने से रोका लेकिन वह निष्फल रहा। राजा ने क्षमा याचना की और अधीनता स्वीकार कर ली। तैमूर की क्रूर प्रवृत्ति सजग हुई और बात की बात में लगभग १० हजार निरपराध व्यक्ति मौत के घाट उतर गये। इसके बाद लूटमार की आँधी चली। मलफ़ुजात ए तैमूरी के अनुसार 'इस्लाम की तलवार काफिरों के रक्त से धोयी गयी और वह समस्त सामग्री एवं संग्रह, कोष एवं अन्न, जो अनेक वर्षों से दुर्ग में संग्रहीत किये गये थे, मेरे सैनिकों की लूट का माल बन गया। उन्होंने मकानों में आग लगा दी तथा भवनों एवं दुर्गों को धराशायी कर दिया।" इसके पश्चात् लूटमार, रक्तपात और अत्याचारों का सागर उमाड़ती तथा अपने पीछे अराजकता, दुर्भिक्ष तथा महामारी छोड़ती हुई तैमूर की फौजें सरस्वती, फतेहाबाद तथा कैथल को लहूलुहान करती तथा उजाड़ती हुई पानीपत के मार्ग से दिल्ली के लिए आगे बढ़ीं। दिल्ली से थोड़ी दूर पर ही तैमूर की टिड्डी सेनाओं ने पड़ाव डाला और सैनिक शिविरों से मीलों की जमीन पट गयी। यहाँ तैमूर ने अपने सेनापतियों एवं सेनानायकों को एकत्र कर युद्ध की मन्त्रणा की और दिल्ली विजय के लिए युद्ध की योजनाएँ बनायी गयी। इसी समय आक्रमण काल के प्रारम्भ से पकड़े हुये बन्दियों का प्रश्न उठा। बन्दियों की अत्यधिक संख्या सचमुच में इस विदेशी आक्रान्ता के लिए एक समस्या बन गयी थी लेकिन इस समस्या का हल शीघ्र ही प्रस्तुत कर दिया गया। "हिन्दुस्तान में प्रवेश करने के समय से लेकर अब तक हमने १००००० काफिरों तथा हिन्दुओं को कैद कर लिया था और इस समय वे मेरे शिविरों में थे। मैंने अमीरों से मन्त्रणा की और उन्होंने कहा कि युद्ध के दिन इन एक लाख बन्दियों को सामान के साथ पीछे नहीं छोड़ा जा सकता और इन्हें मुक्त करना युद्ध के नियमों के सर्वथा विरुद्ध होगा—वास्तव में इन्हें तलवार के घाट उतार देने के अतिरिक्त और कोई चारा

अध्याय ५२

तैमूर का आक्रमण

तैमूर का जन्म ट्रान्स ओग्जीयना के केश नामक नगर में हुआ था। केश समरकन्द से ५० मील दक्षिण की ओर स्थित है। उसके पिता का नाम अमीर तुरगे था। अमीर तुरगे तुर्कों की एक उच्च जाति वरलास की गुरकन शाखा का सामन्त था। तैमूर की शिक्षा-दीक्षा में सैनिक शिक्षा को प्रारम्भ से ही महत्व दिया गया था। तैमूर ने ३३ वर्षों की आयु में चगताई तुर्कों के प्रधान की हैसियत से अपने राजनैतिक जीवन का श्रीगणेश किया और इसके बाद ही उस साम्राज्यवादी की अभिलाषा प्रबल हो उठी और शीघ्र ही तैमूर का विजयचक्र गतिशील हो उठा। ख्वारिज्म, फारस, मेसोपोटामिया आदि अनेक प्रदेशों को एक प्रचण्ड तूफान की भाँति आक्रान्त करते हुये तैमूर की लम्बी-लम्बी फौजें हिन्दुस्तान के मुहाने पर आ डटीं।

हिन्दुस्तान को फतह कर अमर ऐतिहासिक गौरव को प्राप्त करने की इच्छा, भारत की अगाध सम्पत्ति को हस्तगत करने की कामना तथा मूर्तिपूजकों और मूर्तियों को विनष्ट कर गाजी एवं मुजाहिद पद प्राप्त करने की उत्कृष्ट अभिलाषा तथा अपनी अत्यन्त सामरिक प्रवृत्ति, यही कुछ कारण थे जिनसे प्रेरित होकर तैमूर के एक संकेत पर उसकी सेनाओं की गति हिन्दुस्तान की ओर मुड़ गयी थी। कुछ इतिहासकारों के अनुसार तैमूर के आक्रमण का मूल ध्येय मूर्तिपूजकों का विनाश करना था न कि लूटमार करना। तैमूर ने अपने अभियान से पूर्व 'उलमा' एवं योद्धाओं की एक परिषद का आह्वान कर उसमें अपना विचार प्रस्तुत किया था। इस पर बड़ा विवाद हुआ। जहाँ एक ओर शाह ने यह संकेत करते हुए, कि किसी समय भारत फारस साम्राज्य का एक अंग था, भारत विजय के अनेक लाभों की ओर संकेत किया और शाहजादा मुहम्मद सुल्तान ने 'एक पन्थ दो काज' की बात पर जोर देते हुये भारत विजय को धार्मिक दृष्टि से विधर्मियों के विनाश और आर्थिक दृष्टि से राशि-राशि स्वर्ण रजत, और हीरा आदि रत्नों की प्राप्ति की ओर संकेत करते हुये भारत अभियान पर बल दिया, वहीं कुछ लोगों ने आक्रमण के मार्ग की कठिनाइयां और विजय कर वहाँ स्थायी रूप से बस जाने की सम्भावना प्रगट करते हुये उसके दुष्परिणामों का उल्लेख किया, कि भारत में बस जाने से वहाँ की जलवायु के कारण उनका नैतिक स्तर गिर जायेगा और कुछ ही दिनों में उनके वंशज अपनी परम्परागत शक्ति और शौर्य खो बैठेंगे। इस पर तैमूर ने स्वयं कहा था—"हिन्दुस्तान पर अभियान करने से मेरा ध्येय विधर्मियों के विरुद्ध अभियान करना है। जिससे मुहम्मद के आदेशानुसार हम वहाँ के निवासियों को इस्लाम में दीक्षित करें और इस देश को कुफ्र एवं अनेकेश्वरवाद से मुक्त कर सकें और उनके देवालयों तथा प्रतिमाओं को ध्वस कर खुदा की नजरों में 'गाजी' एवं

कुचल कर तैमूर ने जम्मू की ओर दृष्टि उठाई और राजा को अल्प प्रयास में ही परास्त कर मुसलमान बनने के लिए बाध्य कर दिया गया।

अब तैमूर का कार्य पूरा हो चुका था। अतः उसने लाहौर, मुल्तान तथा दीपालपुर की जागीर खिज्र खाँ के शासन में सौंपकर समरकन्द की ओर प्रस्थान कर दिया। तैमूर ने भारत क्या छोड़ा मानो एक ईश्वरीय प्रकोप भारतीय क्षितिज के पार अन्तर्ध्यान हो गया और भारत ने चैन की साँस ली।

तैमूर के आक्रमण का प्रभाव

तैमूर के आक्रमण का जो प्रचण्ड झंझावत भारत के ऊपर आया था उसके शान्त पड़ जाने पर भारत का वातावरण वर्षों तक अत्यन्त क्षुब्ध रहा और उसके अनेक परिणाम हुये।

राजनीतिक परिणाम—तैमूर के आक्रमण का जो प्रभाव हिन्दुस्तान की राजनीति पर पड़ा वह केवल तात्कालिक ही नहीं था। उसका प्रभाव सवा सौ वर्षों बाद तक देखने में आया जब तैमूर के आक्रमण काबुल से भारत विजय के लिए प्रारम्भ हुये कार्य को १५२६ ई० में बाबर ने पूरा कर दिया। जिस समय तैमूर ने भारत छोड़ा था उस समय पंजाब का प्रान्त खिज्र खाँ के हाथों में था जो तैमूर साम्राज्य के एक प्रतिनिधि के रूप में वहाँ नियुक्त किया गया था। उसने जीवन भर अपनी स्वामिभक्ति का निर्वाह किया और समरकन्द की सत्ता का आधिपत्य स्वीकार किये रहा। तैमूर की मृत्यु से उसके साम्राज्य का नक्शा बदल गया और वह छिन्न-भिन्न हो चला। इसी अवसर का लाभ उठाकर खिज्र खाँ के उत्तराधिकारियों ने समरकन्द से अपने वैधानिक सम्बन्ध विच्छेद कर पंजाब में स्वतन्त्र रूप से शासन करने लगे। पंजाब को जीत कर तैमूर ने अपने वंशजों और पंजाब के शासकों में एक अविच्छिन्न युद्ध परम्परा का सूत्रपात कर दिया था। उसके वंशज इस बात को कभी विस्मृत नहीं कर सके कि पंजाब उनके साम्राज्य का एक प्रान्त था, अतः सैय्यद वंशवालों से प्रायः टक्कर होती रहती थी। इस स्थिति ने पंजाब में विद्रोहों को बड़ा प्रोत्साहन दिया था जिसमें जसरत और तुर्क बच्चों के विद्रोह उल्लेखनीय हैं।

प्रान्तों के अल्पकाल में ही एक-एक करके स्वतन्त्र होते जाने के मूल में थी दिल्ली सुल्तान की अकर्मण्यता तथा अराजकतापूर्ण डाँवाडोल स्थिति और शासन-तन्त्र के इस प्रकार आशातीत रूप से आन्दोलित हो उठने में तैमूर का आक्रमण भी कुछ कम उत्तरदायी नहीं था। ख्वाजाजहाँ ने जौनपुर, दिलावर खाँ ने मालवा, मुजफ्फर ने गुजरात में अपने-अपने स्वतन्त्र राज्यों की नींव डाली। यही नहीं भारत में तैमूर के अन्य सरदारों के भी अधिकार में जो प्रदेश थे वे भी छोटे छोटे राज्यों के रूप में हो गये जिससे एकता और किसी सर्वोच्च सत्ता के स्थापन की सम्भावनायें भी नष्ट हो गयीं। तैमूर के भारत छोड़ते ही सुल्तान तुगलक का प्रतिद्वन्द्वी नसरत शाह दिल्ली का शासक बन बैठा। परन्तु शीघ्र ही मल्लू इकबाल खाँ के प्रयास से पराजित हुआ और उसने १४०१ ई० में अपने प्रभाव से दिल्ली को अपने अधिकार में लेकर सुल्तान महमूद को भी [illegible] भाग गया था आमन्त्रित किया और दिल्ली की गद्दी पर बिठाया। अब

ही नहीं रह गया था . जब यह आज्ञा इस्लाम के योद्धाओं के पास पहुँची तो उन्होंने अपनी तलवारें खींच लीं और अपने-अपने बन्दियों को कत्ल कर दिया।" इसके पश्चात् दिल्ली पर आक्रमण बोल दिया गया।

इस समय दिल्ली की क्या अवस्था थी पाठक उससे अपरिचित नहीं होंगे। एक वाक्य में यदि हम यह कहें तो कह सकते हैं कि दिल्ली का राजनैतिक रंगमच पूर्णतया पट परिवर्तन के लिए प्रस्तुत था। परन्तु तैमूर का आक्रमण सुनकर सुल्तान महमूद तथा मल्लू इकबाल ने बिना किसी भय अथवा परेशानी का चिह्न प्रगट किये अपनी सेनाएँ भी युद्ध के मैदान में उतार दीं। युद्ध भयंकर रहा परन्तु जैसा सफरनामा के लेखक ने लिखा है कि "यहाँ के (भारत के) सैनिकों ने अपने जीवन की सुरक्षा के लिए वीरतापूर्वक युद्ध किया परन्तु एक, दुर्बल झकोड़ा आँधी के सामने नहीं टिक सकता था और अशक्त मृग सिंह के सामने, इसलिए वे भी भाग खड़े होने को लाचार हो गये।" इस घमासान संग्राम के पश्चात् मल्लू बरान की ओर तथा महमूद गुजरात की ओर भाग गया। तैमूर की विजय दुन्दुभी गरज उठी और दिल्ली पर तैमूर का झण्डा फहरा उठा।

दुर्ग पर आधिपत्य हो जाने के बाद तैमूर १५ दिनों तक दिल्ली में रहा और आग, नाश, मौत से अपना विजयोत्सव मनाता रहा। असहाय दिल्ली ने इससे बड़ा दुर्भाग्य और संकट का सामना इससे पूर्व कभी नहीं किया। दिल्ली का शृंगार लूट लिया गया और उसके गर्व की वस्तुओं से आग की होली खेली गई। शफूरद्दीन ने इस महानाश की विभीषिका का कितना करुण और वीभत्स चित्र खींचा है :

"नगर को नष्ट करना तथा उसके निवासियों को दण्ड देना ईश्वरी इच्छा थी...उस शुक्रवार की रात को लगभग १५,००० सैनिक नगर में थे जो शाम से सुबह तक लूटमार तथा मकानों को जलाने में व्यस्त रहे। प्रातःकाल बाहर के सैनिक भी अपने को न रोक सके और फाटक तोड़कर अन्दर घुस गये और कोलाहल पहले से भी अधिक बढ़ गया।

"सारे नगर को नष्ट कर दिया गया और जहाँपनाह तथा सीरी के अनेक प्रासाद ध्वस्त कर दिये गये। प्रत्येक सैनिक को २० से अधिक आदमी दास के रूप प्राप्त हुये, लूट की दूसरी वस्तुएँ अपार थीं हिन्दुओं के सिरों के ढेर लगा दिये गये और उनके खण्ड मांसाहारी पशु-पक्षियों का आहार बन गये ..जो निवासी किसी प्रकार बच गये वे बन्दी बना लिये गये। ..कई हजार शिल्पी पकड़ कर लाये गये और तैमूर की आज्ञा से उन्हें सरदारों तथा उच्च पदाधिकारियों में बाँट दिया गया। इस प्रकार शिल्पियों को समरकन्द में 'मस्जिद-ए-जामी' के निर्माण के लिए रख लिया गया।"

इस प्रकार दिल्ली के ऊपर आँसुओं, वेदना और अभावों को छोड़कर विनाश का पहाड़ ढकेलता हुआ क्रूर आक्रान्ता दिल्ली से आगे बढ़ा। फिर मेरठ और हरिद्वार को बुरी तरह रौंदता और लूटता हुआ स्थान-स्थान पर कत्लेआम का हुक्म देता हुआ शिवालिक प्रदेश पर चढ़ बैठा और विजय के उपरान्त उन्हीं कुकर्मों की पुनरावृत्ति की गई जो अभी तक प्रत्येक के बाद होते चले आ रहे थे। शिवालिक प्रदेश को

जीवन भी जो आर्थिक व्यवस्था से सम्बन्धित रहता है, आन्दोलित हो उठा। सुरक्षा, शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने में असमर्थ सुल्तानों के प्रति जनता में एक तीव्र असन्तोष की लहर व्याप्त हो गयी, जो लहर निरन्तर बढती ही गयी। विद्रोहों का बोलबाला हो गया और लोगों को स्वतन्त्र राज्य स्थापन के अवसर प्राप्त होने लगे।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ तैमूर कौन था? उसके भारतीय अभियान के विषय मे आप क्या जानते हैं?

२ तैमूर के आक्रमण का भारत पर क्या राजनीतिक प्रभाव पड़ा?

३ क्या तैमूर के आक्रमण ने भारत पर कोई स्थायी प्रभाव छोड़ा था? यदि हाँ, तो किन क्षेत्रों मे?

राज्य की शक्ति और शासन की बागडोर मल्लू इकबाल के हाथों में थी और महमूद नाम मात्र का सुल्तान। सुल्तान जब कुछ सचेत हुआ तो उसने मन्त्री के इस जाल से मुक्त होने की चेष्टा की और सुल्तान तथा वजीर में अनबन हो जाने के कारण ही महमूद कन्नौज चला गया और इधर १४०५ ई० में मल्लू इकबाल ने खिज्र खाँ पर आक्रमण कर दिया। खिज्र के विरुद्ध यह अभियान उसे बहुत महँगा पड़ा जिसमें दिपालपुर के निकट प्राणों से हाथ धो बैठा। अब महमूद शाह फिर दिल्ली आया और गद्दी पर बैठा। गद्दी पर महमूद भले ही बैठ गया हो लेकिन राज्य दशा बिगड़ती ही जा रही थी और इस समय खिज्र खाँ दिल्ली पर इस प्रकार चढ़ बैठा मानों वह वर्षों से इसी अवसर की ताक में था। इस प्रकार दो शताब्दियों तक राज्य करने के पश्चात् दिल्ली साम्राज्य तुर्क शासकों के हाथ से निकल गया। दिल्ली साम्राज्य पर से तुगलकों के अधिकार की इतनी जल्दी समाप्ति हो जाने का प्रधान कारण तैमूर का आक्रमण था वरना सम्भव था कि दिल्ली साम्राज्य पर तुगलकों का राज्य वश कुछ दिन और चलता।

सांस्कृतिक परिणाम—जैसा कि ऊपर हम कह चुके हैं कि तैमूर के आक्रमण के पश्चात् दिल्ली का साम्राज्य अनेक छोटे-बड़े राज्यों में बँट गया। जहाँ एक ओर साम्राज्य के इस प्रकार खण्ड-खण्ड हो जाने के परिणामस्वरूप देश की एकता और शक्ति को जबरदस्त धक्का लगा वहीं दूसरी ओर इन छोटे-छोटे राज्यों में अपने-अपने ढंग से कला और संस्कृति का विकास हुआ तथा साहित्यिक तथा धार्मिक क्षेत्र में जौनपुर अत्यधिक उल्लेखनीय है। जौनपुर के काजियों का फतवा हिन्दुस्तान भर में सम्मान का पात्र था। यही नहीं भारत की भव्य और अनुपम शिल्प-सौन्दर्य ने क्रूर-हृदय विदेशी आक्रान्ता को आकर्षित किया था और इसी कारण 'मस्जिद-ए-जामी' के निर्माण के लिए वह हजारों कुशल प्रस्तर शिल्पियों को अपने साथ समरकन्द ले गया था। एक बात ध्यान में रखने योग्य है। ये आक्रमणकारी जो कला अपने साथ मध्य एशिया से ले गये उसे वहाँ की कला से मिश्रित कर सवा सौ वर्ष बाद जब भारत आये तो अपने साथ लेते भी आये और वही कला मुगल कला कहलायी।

आर्थिक परिणाम—आर्थिक परिणाम की दृष्टि से तैमूर का आक्रमण भारत के लिए एक महान अभिशाप सिद्ध हुआ जिसने भारत की आर्थिक व्यवस्था की जड़ों को बुरी तरह झकझोर दिया। तैमूर जिस-जिस मार्ग से गया ढाता गया। जो भी नगर या गाँव उसके मार्ग में पड़ गया वह लूट लिया गया, उसके निवासी कत्ल कर दिये गये। उनके निवासियों को भस्म कर दिया गया और उजड़े, लूटे, और जले गावों को पीछे छोड़ता हुआ वह आगे बढ़ता गया। दिल्ली में उसने जो कयामत बरपा की थी उसके बारे में कहा जाता है कि दो महीने तक वहाँ कोई परिन्दा भी पर नहीं मार पाया। तैमूर ने हिन्दुस्तान भले ही छोड़ दिया था लेकिन दुर्भाग्य ने पीछा नहीं छोड़ा था और परिणामस्वरूप तैमूर के प्रत्यावर्तन के पश्चात् दुर्भिक्ष और महामारी ने जो ताण्डव नृत्य किया उससे जनता हाहाकार कर उठी। हजारों पशु और मनुष्य काल कवलित हो गये। कृषि को तो अवर्णनीय क्षति पहुँची। इन सब का परिणाम यह हुआ कि आर्थिक व्यवस्था तो अस्त-व्यस्त हो ही गई और उसके कारण लोगों का सामाजिक

खिज्र खाँ दिल्ली की गद्दी पर बैठ अवश्य गया लेकिन स्वतन्त्र शासकों की भाँति शासन करते हुये भी उसने सुल्तान की उपाधि नही धारण की। उसने कभी भी अपने को एक तातार अमीर से अधिक ऊँचा नही समझा और जीवनपर्यन्त तैमूर वंश के प्रति अपनी राजभक्ति का निर्वाह किया। उसने तैमूर के प्रतिनिधि की हैसियत से शासन किया और तैमूर के नाम से सिक्के ढलवाये तथा तैमूर के उत्तराधिकारी शाहरुख के नाम का ही खुतबा पढ़ा गया। दिल्ली पर अपनी सत्ता के स्थापित हो जाने के बाद उसने राज्य व्यवस्था की ओर ध्यान केन्द्रित किया।

इसके पूर्व कि हम खिज्र खाँ द्वारा राज्य की व्यवस्था के लिए किये गये कार्यों का वर्णन करें तत्कालीन परिस्थितियों पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

इस समय तक दिल्ली का राज्य छिन्न भिन्न होकर एक जीर्णशीर्ण कंकाल मात्र था। दिल्ली में दिन-रात षड्यन्त्रों का जाल बिछाया जा रहा था और बड़े-बड़े अमीर अपने-अपने स्वार्थों की सिद्धि में जी जान से लगे हुए थे। अराजकता और अव्यवस्था का नग्न ताण्डव हो रहा था और परिणामस्वरूप विद्रोहों की बाढ़ आ गई थी। दोआब बलबन के काल से विद्रोह का अग्नि संचित करता रहा था और अब इटावा में राजद्रोहों की ज्वाला धधक उठी थी। कटेहर, कन्नौज तथा बदायूँ के भूमिपतियों ने केन्द्रीय सरकार को उपेक्षा कर कर देना स्थगित कर दिया था। मालवा, जौनपुर और गुजरात आदि में स्वतन्त्र राज्य की नींव पड़ चुकी थी और राज्य विस्तार तथा राज्य सुरक्षा की दृष्टि से इनके स्वार्थ परस्पर टकरा जाते थे जिनसे आये दिन इन स्वतन्त्र राज्यों में युद्ध के बाजे बज उठा करते थे। उत्तरी सीमा पर खोखरों ने बगावत का नारा बुलन्द किया था और सरहिन्द में तुर्क बच्चों के उपद्रव भी असह्य होते जा रहे थे। इन्हीं परिस्थितियों में खिज्र खाँ ने दिल्ली राज्य का शासन सूत्र सँभाला और प्राण-पण से राज्य की व्यवस्था में लग गया।

खिज्र के सामने जो सबसे पहले प्रश्न आया वह था शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने का और जिसके लिए आवश्यक था विद्रोहों का दमन। अत उसने पदाधिकारियों की नये सिर से नियुक्तियाँ कर पहले विद्रोहों के गढ़ दोआब की ओर दृष्टि फेरी और वजीर ताज उल मुल्क की अध्यक्षता में शाही सेना ने कटेहर की ओर प्रयास किया और समस्त प्रदेश आक्रान्त कर दिया। कटेहर का विद्रोह साधारण नहीं था। उसके दमन के लिए खिज्र खाँ को बार बार सेनायें भेजनी पड़ी थीं। शाही सेना ने जिस कठोरता से विद्रोहों का दमन करना प्रारम्भ किया उससे भयभीत होकर खोर, कम्पिल, साकित तथा ग्वालियर के जमीन्दारों ने शाही सत्ता के सामने घुटने टेक दिये। लेकिन अवसर पाकर बार बार ये विद्रोह कर बैठते और शाही सेना के आते ही शान्त हो जाते। ५ वर्ष बाद फिर कटेहर में विद्रोह हुआ। इस बार बदायूँ का शासक महाबत खाँ भी विद्रोही बन बैठा था। खिज्र खाँ ने स्वयं जाकर विद्रोहियों का दमन किया। इटावा में भी राय सरवर ने विद्रोह किया लेकिन वह दबा दिया गया।

जिस प्रकार दोआब में विद्रोहों की अग्नि निरन्तर सुलगती ही रही उसी प्रकार उत्तरी सीमा पर भी विद्रोहों का सिलसिला चलता रहा। सन् १४२० ई० में तुगान रईस ने सरहिन्द के दुर्ग पर अधिकार कर लिया था। परन्तु उसका दमन कर दिया गया

अध्याय ५३

सैयद वंश

सैयद राजवंश की स्थापना—१४१२ ई० में सुल्तान महमूद की मृत्यु के उपरान्त ९६ वर्ष शासन करने के बाद दिल्ली सल्तनत की गद्दी से गयासुद्दीन तुगलक का राज्यवंश समाप्त हो गया। सुल्तान की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली नगर षड्यन्त्रों, षड्यन्त्रों तथा पारस्परिक कलह का केन्द्र बन गया। बड़ी उथल-पुथल मचती रही और दो वर्ष तक दिल्ली में कोई सुल्तान नहीं हो सका। किसी तरह दौलत खाँ लोदी नामक अमीर ने राज्यसत्ता को अधिकृत करने के लिए, अमीरों के मध्य होने वाले संघर्ष में सफलता प्राप्त की और दिल्ली की शासन सत्ता का सूत्र हस्तगत कर लिया। दौलत खाँ को शासन के सूत्र सँभाले अभी कुछ ही दिन हुये थे कि भारत में तैमूर के वायसराय खिज्र खाँ ने, जो मुल्तान की जागीर और पञ्जाब आदि प्रदेशों का शासक था दिल्ली पर आक्रमण कर दौलत खाँ से शासन की बागडोर छीन ली। खिज्र खाँ से दिल्ली के राज्य पर एक नवीन राजवंश की स्थापना होती है। इतिहास में यह राज्य सैय्यद वंश के नाम से अभिहित किया जाता है। खिज्र खाँ ने जिस तथा कथित सैय्यद वंश की नींव डाली उसका सम्बन्ध पैगम्बर से जोड़ा जाता है। 'तारीख-ए-मुबारक शाही' में खिज्र खाँ के सैय्यद होने के विषय में दो बातें प्राप्त होती हैं—प्रथम तो यह कि एक समय सैय्यदों के प्रधान जलालुद्दीन बुखारी मलिक मरदान के यहाँ पधारे तो भोजन के समय जब मलिक मरदान ने खिज्र खाँ के भाई सुलेमान को सैय्यद साहब के हाथ धुलाने का आदेश दिया तो सैय्यद साहब ने इसका निषेध करते हुये कहा यह सैय्यद है और यह काम उसकी मान-मर्यादा के स्तर से निम्नकोटि का है। द्वितीय यह कि खिज्र खाँ में वे सभी गुण थे जो सय्यदों में पाये जाते थे। वह उदार, वीर, आतिथ्यकारी तथा वचनों का निर्वाह करने वाला था।

खिज्र खाँ—खिज्र खाँ एक सैय्यद था। मुल्तान के गवर्नर मलिक नसीरुल-मुल्क मरदान दौलत के यहाँ उसका बचपन बीता था और अपने संरक्षक की मृत्यु पर वह मुल्तान का गवर्नर हुआ। १३९५ ई० में जब मल्लू इकबाल के भाई, सारङ्ग खाँ ने मुल्तान पर घेरा डाल दिया तो खिज्र खाँ किसी भाँति भाग निकला और तैमूर से जा मिला और जब तैमूर भारत को अपनी दुर्दशा पर आँसू बहाने के लिए छोड़ कर समरकन्द लौटा तो खिज्र खाँ को मुल्तान की जागीर तथा उसके अधीनस्थ प्रदेशों का शासक बनाता गया। खिज्र खाँ एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह वर्षों दिल्ली की हलचल और उथल-पुथलपूर्ण राजनीति पर दृष्टि गड़ाये रहा और जब महमूद की मृत्यु के उपरान्त दिल्ली आशातीत रूप से निर्बल हो उठी तो अवसर देखकर दिल्ली पर आक्रमण कर दिल्ली का शासक बन बैठा।

पहुँचते ही खोखर भाग गये और सुल्तान लाहौर में शान्ति स्थापित कर दिल्ली लौट आया परन्तु शीघ्र ही उसे जसरथ के पुनः विद्रोह करने की सूचना मिली और यह भी पता लगा कि उसने लाहौर पर भी आक्रमण कर दिया है। लाहौर के प्रान्तपति ने ३५ दिन विद्रोहियों का वीरता से सामना किया और इसी बीच में शाही सेना भी सहायता के लिए पहुँच गई और सम्मिलित सेना ने रावी पार करके कालानार तथा मोहनगर के बीच उसे बुरी तरह से परास्त किया।"

यह तो हुई सीमाप्रान्त की बात अब विद्रोहों के उप केन्द्रों की ओर आइये। अल्प काल में ही कटेहर, कम्पिल तथा इटावा में भी रह रहकर विद्रोह हो रहे थे। सुल्तान ने अपने प्रयास से एक-एक करके इनका दमन कर दिया। ग्वालियर का विद्रोह भी कुचल दिया गया। इसी बीच मे कटेहर में पुनः बगावत का झगडा उठाया गया लेकिन सुल्तान के वहाँ पहुँचते ही राय हरि सिंह ने उसकी सत्ता स्वीकार कर ली। मेवातियों को भी दबा दिया गया।

बियाना के प्रान्तपति मुहम्मद खाँ के विद्रोह का दमन किया ही गया था कि इब्राहिम शर्की में एक विशाल सेना के साथ कालपी की ओर बढ़ने की सूचना मिली। इसे सुन कर सुल्तान ने महमूद हसन की अध्यक्षता मे एक शाही सेना इनको पीछे हटाने के लिए भेजी। इटावा के निकट दोनों की सेनाओं का सामना हुआ जिसमें पराजित होकर शर्की स्वदेश लौट पड़ा।

खोखरों को दाब अवश्य दिया गया था लेकिन उनकी शक्ति का समूल उन्मीलन नहीं हो सका था, अतः १४२८ के लगभग जसरथ ने पुनः विद्रोह कर दिया। और मलिक सिकन्दर को परास्त कर कालानोर का दुर्ग अधिकार मे कर लिया था। लेकिन सिकन्दर ने शीघ्र ही अपनी पराजय का बदला ले लिया और खोखरों को भाग कर पहाड़ों में छिप जाना पड़ा।

१४२६ ई० मे सीमाप्रान्त पर पोलाद तुर्क बच्चा ने अत्यन्त शक्तिशाली विद्रोह किया। और जब शाही सेना उसके दमन के लिए वहाँ पहुँची तो उसने काबुल के प्रान्ताध्यक्ष शेख अली से सहायता प्राप्त कर शाही सेना को पराजित कर दिया। इसके पश्चात् शेख अली की सेनाओं ने जालन्धर को भी जी भर कर लूटा और लाहौर में उसने शेख सिकन्दर से वर्ष भर का कर वसूल किया और फिर दीपालपुर जा पहुँचा। इस प्रदेश को लगातार २० दिन लूट करके इसने एकदम उजाड़ दिया। दीपालपुर नष्ट करने के उपरान्त विद्रोहियों ने सुल्तान पहुँच उसके चतुर्दिक चार मील का प्रदेश बुरी तरह से लूट मार करके नष्ट कर दिया। लेकिन शीघ्र ही एक सशक्त सेना लेकर इमादुल मुल्क ने शेख अली को करारी पराजय दी और उसकी सेना छिन्न भिन्न हो गया। इसी समय दिल्ली दरबार में आपस में परस्पर कलह और ईर्ष्या की प्रवृत्तियाँ सजग हो उठीं और सरवर-उल-मुल्क ने [illegible] की रचना की उसके अनुसार २० फरवरी १४३४ को सुल्तान का वध कर दिया गया।

मुहम्मद शाह—(१४३४-१४४५ ई०) मुबारक की मृत्यु के पश्चात् सुल्तान का पोता [illegible] मुहम्मद शाह सुल्तान हुआ। [illegible] सरवर ने राज्य की

था। परन्तु ३-४ वर्ष बाद पुन: इनके उपद्रव बढ़ चले तो मलिक खैरुद्दीन ने उसको कुचल दिया। सन् १४२१ में खिज्र खाँ स्वयं मेवात गया और वहाँ के दुर्ग को नष्ट कर विद्रोहियों को छिन्न-भिन्न कर दिया। इसके बाद खिज्र खाँ ग्वालियर की ओर गया और इटावा तथा ग्वालियर के विद्रोहों का दमन कर जब दिल्ली लौटा तो बीमार हो गया और २० मई सन् १४२१ ई० में वह इस दुनियाँ से कूच कर गया।

खिज्र खाँ के चरित्र पर प्रकाश डालते हुये डा० ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है कि—

"खिज्र खाँ ने एक सच्चे सैय्यद का सा जीवन व्यतीत किया था। उसने कभी अनावश्यक रूप से रक्तपात नहीं किया और न अपनी शक्ति दृढ़ बनाने तथा शत्रुओं का दमन करने के लिए किसी नृशंस कार्य का आदेश दिया। वह शासन-प्रबन्ध में सुधार न कर सका, तो यह उसका दोष नहीं था। उस समय चतुर्दिक फैली हुई अशान्ति और उपद्रवों ने उसे क्षण भर के लिए भी चैन न लेने दिया और मृत्युपर्यन्त वह उन भागों में विद्रोहों का दमन करने में व्यस्त रहा जो अब भी साम्राज्य में थे।"

फरिश्ता ने उसकी उचित प्रशंसा करते हुये लिखा है कि :—

"खिज्र खाँ एक महान तथा बुद्धिमान शासक था। वह दयालु तथा वचनों का निर्वाह करने वाला था। उसकी प्रजा उससे प्रेम करती थी। उसके मृत्यु पर छोटे-बड़े स्वामी और भृत्य सभी ने तीन दिन काले वस्त्र धारण कर उसकी मृत्यु का शोक मनाया और इसके अनन्तर उन मातमी वस्त्रों को त्याग कर उसके पुत्र मुबारक शाह को गद्दी पर बैठाया।"

मुबारक शाह (१४२१-१४३४ ई०)—खिज्र खाँ ने जीवन के अन्तिम क्षणों में शाहजादा मुबारक शाह को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। सिंहासन पर आसीन होते ही मुबारक ने तैमूर के वंशजों से जो समरकन्द साम्राज्य के शासक थे अपने सम्बन्ध विच्छेद कर लिए और स्वतन्त्र सुल्तान के स्वरूप में उसने अपने नाम से खुतबा पढ़ाया और मुद्राओं पर अपना नाम अंकित कराया। मुबारक सैय्यद वंश का सर्वाधिक प्रभुत्वशाली शासक था। अपने पिता की भाँति मुबारक का जीवन भी पंजाब और दोआब के विद्रोहों को दमन करने में बीता। तत्कालीन इतिहास लेखक यहिया-बिन-अहमद की रचना 'तारीख-ए-मुबारक शाही' से ज्ञात होता है कि उत्तरी सीमा प्रान्त पर होने वाले उपद्रवों में जसरथ खोखर का विद्रोह अत्यन्त भयानक था। उसने अपने उपद्रवों से प्राय: समस्त सीमा प्रान्त को बुरी तरह आक्रान्त कर दिया था। तारीख-ए-मुबारकशाही के अनुसार—

"जसरथ खोखर एक अविवेकी देहाती था। विजयोन्मत्त होकर तथा अपनी सैन्य शक्ति पर मदान्ध होकर वह दिल्ली अधिकृत करने का स्वप्न देखने लगा। खिज्र खाँ की मृत्यु की सूचना प्राप्त करके उसने कुछ अश्वारोहियों तथा पैदल सैनिकों को लेकर व्यास और सतलज पार की और तालवन्दा में राय कमालउद्दीन पर चढ़ाई कर दी, राय फिरोज रेगिस्तान की ओर भाग गया और तत्पश्चात् जसरथ ने लुधियाना नगर से लेकर अरूवर (रूपर) तक के प्रदेश लूटा।

यहीं नहीं उसने सरहिन्द पर भी घेरा डाल दिया लेकिन शाही सेना के

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. सैय्यद राजवंश का संस्थापक कौन था ? उसके कार्यों पर प्रकाश डालिए ?

२. सैय्यद वंश के सर्वश्रेष्ठ शासक के विषय में आप क्या जानते हैं ?

३. सैय्यद वंश के अधीन दिल्ली राज्य की स्थिति पर प्रकाश डालिए।

समस्त शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित करने की पूरी चेष्टा की और स्वय खान-ए जहाँ की उपाधि धारण की तथा सुल्तान की हत्या में भाग लेने वाले षड्यन्त्रकारियों को बियाना, अमरोहा, नारनौल आदि जागीरें प्रदान कीं। परन्तु शीघ्र कमालउलमुल्क की अध्यक्षता में अमीरों का एक दल सरवर के विरोध में क्रियाशील हो उठा। इससे आतंकित होकर सरवर ने सीरी के दुर्ग में आश्रय लिया परन्तु कमालउलमुल्क ने सीरी पर घेरा डाल दिया। सुल्तान की सहानुभूति कमाल उलमुल्क के साथ थी। इससे असन्तुष्ट होकर सरवर के साथियों ने सुल्तान के वध का निश्चय किया लेकिन सुल्तान को इसकी सूचना मिल गयी। उसने षड्यन्त्रकारियों को सार्वजनिक रूप से दण्ड की आज्ञा दी और कमालउलमुल्क को नया मन्त्रिमडल स्थापित करने का आदेश दिया।

कमाल-उल-मुल्क के प्रधान मन्त्रित्व में जो मन्त्रिमण्डल स्थापित था उसके द्वारा राज्य किसी दृढ़ शासन व्यवस्था को प्राप्त करने में सफल नहीं हुआ और परिणाम स्वरूप देश के विभिन्न प्रान्तों से अशान्ति और विद्रोह के समाचार प्राप्त होने लगे। इब्राहिम शर्की ने दिल्ली के कुछ प्रान्तों पर अपना अधिकार जमा लिया और ग्वालियर के राय ने कर देना बन्द कर दिया। मालवा का शासक महमूद खिल्जी भी दिल्ली हथियाने की लालच से दिल्ली की ओर बढ़ा लेकिन इसी समय गुजरात के शासक ने माण्डू पर आक्रमण कर दिया और महमूद को लौटने के लिए विवश होना। जसरथ ने बहलोल लोदी को दिल्ली पर अधिकार करने के लिए उसकाया और उसके प्रोत्साहन से बहलोल ने दिल्ली की ओर पास किया यद्यपि उसका यह अभियान निष्फल रहा और दिल्ली का राज सिंहासन सुरक्षित रह गया। लेकिन इतना आभास अवश्य मिल गया कि सैय्यद वंश के दिन पूरे हो गए हैं।

अलाउद्दीन आलम शाह (१४४५-१४५१ ई०)—१४४५ में मुहम्मद शाह की मृत्यु के उपरान्त अमीरों ने उसके पुत्र आलम शाह को गद्दी का अधिकारी बनाया। नये सुल्तान ने अपनी अयोग्यता और राज्य की ओर से उदासीनता का भाव प्रदर्शित कर राज्य के शत्रुओं की संख्या में अत्यधिक वृद्धि कर दी। १४४७ ई० से सुल्तान बदायूँ में स्थायी रूप से निवास करने लगा। दरबारियों के घोर विरोध करने पर भी उसने बदायूँ नहीं छोड़ा, बल्कि अपने वजीर हामिद खाँ का वध कराने का असफल प्रयत्न किया। हामिद खाँ ने रुष्ट होकर बहलोल लोदी को दिल्ली में आमन्त्रित किया। बहलोल तो यही चाहता ही था। उसने एक हमले में दिल्ली का सिंहासन हस्तगत कर लिया। अलाउद्दीन ने भी निर्विकार रूप से बदायूँ छोड़ कर शेष राज्य बहलोल के लिए छोड़ दिया। दिल्ली में बहलोल के नाम का खुतबा पढ़ा गया और ३७ वर्षों तक राज्य करने के पश्चात् दिल्ली के सिंहासन पर से सैय्यद वंश का नाम भी मिट गया। आलम शाह अपनी मृत्यु सन् १४७८ ई० तक बदायूँ में ही शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करता रहा।

बढ़ानी प्रारम्भ कर दी। इसके बाद उसने दिल्ली की सत्ता का आधिपत्य स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और दिल्ली सल्तनत हथिया लेने की फिराक में पड़ गया। इस सम्बन्ध में उसके द्वारा किये प्रयत्नों के विषय में हम पिछले अध्याय में प्रकाश डाल चुके हैं। अब हम दिल्ली पर आधिपत्य हो जाने के बाद से उसके कार्यों पर विचार करेंगे।

बहलोल लोदी

उसका शक्ति संचयन और उसके कार्य—सन् १४५१ ई० में बहलोल जब दिल्ली की गद्दी पर बैठा तो उसने देखा कि कई समस्यायें उसकी शक्ति के लिए प्रश्नवाचक चिन्ह की भाँति उसके सामने उपस्थित थीं। राज्य के पूर्व और पश्चिम दोनों सीमाओं पर विद्रोहों की आँधियाँ चल रही थीं और किसी भी समय राज्य पर आक्रमण हो जाने की आशंका थी। पूर्व में बङ्गाल और जौनपुर, पश्चिम में सिन्ध, गुजरात और मालवा तथा दक्षिण के प्रदेश साम्राज्य की सत्ता से मुक्त हो चुके थे। लोदी सुल्तान के अधिकार में केवल उत्तर में लाहौर से दीपालपुर तक और दक्षिण में हाँसी, हिसार और पानीपत तक का प्रदेश था। दिल्ली से १४-१५ मील की दूरी तक का भू भाग अहमद शाह मेवाती के हाथों में था। दिल्ली की बाहरी सीमा तक विस्तृत सम्भल के प्रदेश पर दरिया खाँ लोदी शासक कर रहा था और दोआब अनेक हिन्दू मुस्लिम शासकों के मध्य छोटे छोटे स्वतन्त्र प्रदेशों से भरा हुआ था। इस प्रकार पहले तो साम्राज्य की दृढ़ता और उसके अस्तित्व पर ही प्रश्नवाचक चिन्ह लगा हुआ था। सैय्यद वंश का शासक अभी जीवित था और उसका भूतपूर्व मन्त्री हमीद खाँ जो अब उनका स्वयं का मन्त्री था सुल्तान की ईर्ष्या का पात्र बना जा रहा था, क्योंकि सुल्तान के अनुसार जो एक स्वामी के साथ विश्वासघात कर सकता है उसका क्या विश्वास कि वह दूसरे स्वामी के साथ नहीं करेगा। अतः उसके अधिकार से मुक्त होना ही सुल्तान के लिए एक समस्या थी। तीसरी समस्या यह थी कि सैय्यद वंश के अन्तिम सुल्तान आलमशाह की पुत्री का विवाह महमूद शाह शर्की के साथ हुआ था और वह अपने श्वसुर का राज्य छिन जाने के कारण बहलोल पर खार खाये बैठा था और किसी भी समय आक्रमण कर सकता था। इसके अतिरिक्त भी कुछ बड़ी अनेक समस्याएँ थीं जिनका सामना बहलोल को करना था। बहलोल एक नीतिनिपुण और कुशल कूटनीतिज्ञ था। उसने अत्यन्त धैर्य से अपनी महत्वाकांक्षा के मार्ग पर चरण उठाये और शनैः शनैः इन पथ कण्टकों को साफ करता गया।

सबसे पहले उसने हमीद खाँ को अपने रास्ते से हटाना चाहा और इसके लिए उसने एक कूटनीतिक चाल चली और उसमें सफल होकर हमीद खाँ को कारागार का निवासी बना दिया। इसके पश्चात् उसने अपनी स्थिति को दृढ़ और उसे स्थायित्व प्रदान करने के लिए पदाधिकारियों को अनुकूल व्यवहार विनिर्मित किये और उन्हें पदोन्नति का प्रलोभन दिया और राज्य की सुरक्षा के लिए नये सिरे से व्यवस्था का संगठन कर नए पदाधिकारियों की नियुक्ति की। ऐसा करने के बाद उसने अपनी साम्राज्यवादी नीति के अनुसार राज्य विस्तार और विद्रोह दमन की ओर ध्यान दिया।

अध्याय ५४

अफगान साम्राज्य

लोदी वंश

सैय्यद वंश में केवल चार ही सुल्तान हुये; खिज्र खाँ, मुबारकशाह, मुहम्मदशाह और आलमशाह। इन्होंने मिलकर करीब ३७ वर्षों तक दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठ कर शासन किया। इस युग में दिल्ली का राज्य कितना निर्बल हो गया था और उसकी सीमाएँ कितनी संकुचित हो गयी थीं इसका अनुमान लेनपूल के कथन से लगाया जा सकता है कि दिल्ली के उत्तर-पूर्व में स्थित कटेहर के हिन्दू राजा, दक्षिण में मेवात तथा दोआब में इटावा से राज कर वसूल करने के लिए लगभग प्रति वर्ष सुल्तान को सेनायें भेजनी पड़ती थीं। इसके अतिरिक्त सरहिन्द तथा सीमा प्रान्त के प्रदेशों में स्थान-स्थान पर विद्रोहों का बाजार गरम हो रहा था। अन्तिम सुल्तान आलमशाह के काल तक तो राज्य की दयनीय स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी कि "राजकार्य दिन-प्रतिदिन पहले से भी अधिक अस्तव्यस्त होता गया और स्थिति यहाँ तक हो गयी कि दिल्ली से तीस कोस की दूरी पर ही ऐसे अमीर थे जिन्होंने सुल्तान की सत्ता का तिरस्कार कर दिया और प्रतिरोध की तैयारियों में व्यस्त हो गये। सल्तनत की ऐसी ही नाजुक हालत में बहलोल ने एक हल्के प्रयास से उत्तरी भारत के प्रधान राजनीतिक रंगमञ्च पर से सैय्यद वंश की समाधि तैयार कर दी और वह दिल्ली का सुल्तान बन बैठा।

लोदी लोग अफगान या पठान जाति के थे। पूर्व में मुल्तान तथा पेशावर से लेकर पश्चिम में गजनी तक विस्तृत भू प्रदेश के निवासी, गौर वर्ण, लम्बी काया तथा हृष्ट-पुष्ट शरीर, सम्पत्ति से सम्पन्न ये अफगान अपनी वीरता, साहस और प्रवृति के साथ-साथ लूटमार में विशेष रुचि रखने के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध रहे हैं। तुगलकों के शासन काल में भारत में अफगानों की अच्छी संख्या थी और कुछ अफगानों को तो अमीर का पद भी प्राप्त हो गया था क्योंकि सैनिक दृष्टि से अफगानों की विशेष उपादेयता थी।

बहराम बहलोल लोदी का सर्वप्रथम पूर्वज है जो मुल्तान के शासक मलिक मर्दान का सेवक था। बहलोल इसी के पुत्र मलिक काला का पुत्र था और बाल्यकाल में ही बहलोल ने अपने माता-पिता को खो दिया था। अतः उनकी मृत्यु के उपरान्त बहलोल का लालन-पालन खिज्र खाँ के प्रतिनिधि, सरहिन्द के शासक सुल्तानशाह को करना पड़ा था जो उसका चाचा था। बहलोल के युवक होने पर सुल्तानशाह ने उसकी प्रतिमा और योग्यता पर प्रसन्न होकर अपनी कन्या शम्स खातून का निकाह उसके साथ कर दिया और उसको अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया। सुल्तानशाह की मृत्यु के पश्चात् — वह सरहिन्द का शासक हुआ और उसने अपनी शक्ति

करती थीं और सदैव शर्की सुल्तानों को दिल्ली पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए उत्तेजित किया करती थीं।

३ शर्की सुल्तान सैय्यद वंश के दामाद थे, अतः बहलोल की अपेक्षा अपने को दिल्ली राज्य का उचित उत्तराधिकारी समझते थे।

४ निश्चित सीमा का अभाव—दोनों राज्यों के बीच कोई निश्चित सीमा नहीं थी और सीमा प्रदेश पर आये दिन उपद्रव हुआ करते थे।

५ युद्धों के द्वारा पारस्परिक वैमनस्य बढ़ता ही जाता था। जब कभी युद्ध में कोई पक्ष पराजित होता तो वह अपमान का अनुभव करता हुआ दुबारा और शक्ति सगठित कर युद्ध प्रारम्भ कर देता था।

यही कुछ प्रधान कारण थे जिनके कारण बहलोल को जीवन भर परेशान रहना पड़ा और समय-समय पर युद्ध करने पड़े। महमूदशाह पहले एक बार पराजित हो चुका था लेकिन कुछ ही वर्षों में उसने पुनः शक्ति सचित की और दिल्ली की ओर चल पड़ा। परन्तु कुतुब खाँ और राजा प्रताप सिंह ने मध्यस्थ होकर दोनों में सन्धि करा दी। परन्तु यह सन्धि क्षणिक थी। महमूदशाह की मृत्यु के बाद मुहम्मद जौनपुर का सुल्तान हुआ और फिर लड़ाई ठन गई। युद्ध समाप्त नहीं हुआ था कि जौनपुर में हुसेन खाँ गद्दी पर बैठा। वह एक योग्य शासक और कुशल सेनानी था। उसने धैर्य-पूर्वक दिल्ली के विरुद्ध युद्ध परम्परा अविच्छिन्न रखी। कई बार सन्धियाँ हुई और टूट गई। युद्ध कुछ काल के लिए भले ही रुक जाता परन्तु अन्तिम रूप से समाप्त नहीं हो पा रहा था। एक बार हुसेन खाँ की सेनाओं ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया और यमुना पार कर शाही सेना को करारी मात दी लेकिन सन्धि हो गई और हुसेन खाँ जौनपुर लौट गया। लेकिन बहलोल ने सन्धि की शर्तों को भुलाकर लौटती हुई शर्की सेना पर हमला बोल दिया। इससे पुनः युद्ध छिड़ गया। हुसेन ने कई बार पूरी ताकत से बहलोल का सामना किया लेकिन उसका भाग्य उससे रूठा हुआ था, हर बार उसे पराजय सहना पड़ी और अन्त में काली नदी के अन्तिम युद्ध में दिल्ली जौनपुर की अविच्छिन्न युद्ध परम्परा समाप्त हो गई और जौनपुर के भाग्य का फैसला हो गया। हुसेन खाँ बुरी तरह पराजित हुआ। उसका राज्य शत्रु द्वारा अधिकृत कर लिया गया। बहलोल ने अपने पुत्र बारबकशाह को जौनपुर का सूबेदार नियुक्त किया।

जौनपुर पर अधिकार हो जाने के बाद बहलोल ने कालपी, धौलपुर, बारी तथा आलापुर पर भी अपना प्रभुत्व जमाया। बहलोल के जीवन के अन्तिम दिनों में ग्वालियर के राजा ने विद्रोह कर दिया और कर देने से इन्कार कर दिया। सुल्तान ने स्वयं शाही सेना के साथ जाकर विद्रोह का दमन किया और राजा को आठ लाख टके कर रूप में देने के लिए बाध्य किया। ग्वालियर से लौटने पर सुल्तान का स्वास्थ्य बिगड़ गया और सन् १४८८ ई० में बहलोल लोदी ने ३८ वर्ष शासन करने के बाद दुनियाँ छोड़ दी।

बहलोल लोदी का चरित्र—बहलोल लोदी ने दिल्ली में एक नये राजवंश की स्थापना के साथ वर्षों बाद दिल्ली को प्राचीन गौरव और उसकी प्रभुता लौटाने का

जौनपुर से प्रथम युद्ध—उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त का प्रदेश इन दिनों भयानक विद्रोहों से आक्रान्त था। अतः वहाँ शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने के उद्देश्य से सुल्तान ने सर्वप्रथम उसी ओर प्रयाण किया। इसी बीच में सुल्तान को दिल्ली से दूर जान कर राजधानी के कुछ विरोधी अमीरों ने जौनपुर के सुल्तान महमूदशाह को दिल्ली पर आक्रमण कर देने का आमंत्रण दिया। महमूदशाह स्वयं दिल्ली की राजसत्ता को हस्तगत कर लेने का आकांक्षी था. दूसरी ओर उसकी पत्नी जो सैय्यद वंश की राजकुमारी थी उसको दिल्ली पर आक्रमण कर देने के लिए निरन्तर उत्तेजित कर रही थी और इसी समय दिल्ली के सुल्तान-विरोधी अमीरों का आमंत्रण पाकर सुल्तान अपना लोभ संवरण न कर सका और एक विशाल सेना लेकर दिल्ली पर चढ़ बैठा। इस महान् विपत्ति का सूचना पाकर बहलोल दिल्ली की ओर लौटा। मार्ग में ही फ़तह खाँ के नेतृत्व में शर्की सेना ने उसका सामना किया। बहलोल ने यहाँ भी एक चाल चली और जातीय भावना के आधार पर भड़क कर शर्की सेना के अफगान सरदारों ने शर्की पक्ष का साथ छोड़ दिया। परिणामस्वरूप फतह खाँ को गहरी पराजय मिली और सुल्तान महमूद जौनपुर भाग गया और सुल्तान बहलोल ने अन्य प्रदेशों की ओर ध्यान दिया।

प्रान्तों पर अधिकार—शर्की जैसे प्रबल शत्रु को पराजित करने के पश्चात् बहलोल लोदी की शक्ति का अन्दाजा लगा कर उसके मित्र और शत्रु सभी आतंकित हो गये। शर्की सेना के विरुद्ध प्राप्त की गई विजय से भयभीत होकर कितने ही विद्रोही सरदारों ने शान्ति धारण कर ली। सुल्तान ने मेवात की ओर कूच किया। वहाँ अहमद खाँ ने उसका स्वागत करते हुये उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। सुल्तान ने उसके सात परगने छीन कर अपने अधिकार में ले लिये। सम्भल के शासक दरियाँ के पिछले विद्रोह पर ध्यान न देकर उसके साथ सौम्य व्यवहार किया और केवल सात परगने लेकर सन्तोष कर लिया। इस खाँ को उसका अधिकृत प्रदेश लौटा दिया गया। सकीट के मुबारक खाँ के साथ भी सौजन्यपूर्ण नीति अपनायी गयी। राजा प्रताप सिंह को मैनपुरी तथा भोगाँव का शासन पुनः प्रदान किया गया। रेवाड़ी, चन्दवार, इटावा तथा दोआब के अन्य विद्रोही प्रदेश भी दिल्ली राज्य का प्रभुत्व स्वीकार करने के लिए बाध्य किये गये।

जौनपुर से पुनः युद्ध—बहलोल के ३७ वर्ष के राज्यकाल में दिल्ली और जौनपुर में निरन्तर संघर्ष होते रहे। जौनपुर के उत्तरोत्तर तीन सुल्तानों—महमूदशाह, मुहम्मद तथा हुसेन खाँ ने दिल्ली से बहलोल की सत्ता उखाड़ फेंकने के लिए अविश्रान्त रूप से प्रयास किये। जौनपुर और दिल्ली में लगातार युद्धों की एक परम्परा लगी रही जिसके अनेक कारण थे जिनमें कुछ इस प्रकार हैं :

१. **शर्की सुल्तानों की महत्वाकांक्षा**—शर्की सुल्तान महत्वाकांक्षी और राज्य-विस्तार के अभिलाषी थे। वे निरन्तर दिल्ली की कमजोर और अव्यवस्थित स्थिति से लाभ उठाने की कोशिश में लगे रहते थे।

२ **सैय्यद राजकुमारियाँ**—सैय्यद राजकुमारियों का विवाह शर्की सुल्तानों से हुआ था। पितृकुल का राज्याधिकार छिन जाने से वे अपमान का अनुभव

लिए उसने अमीरों को राज्यारोहण के उपलक्ष में एक शानदार दावत दी और अपने समर्थक अमीरों को पुरस्कृत कर तथा पद प्रतिष्ठा में वृद्धि कर उनको सम्मानित किया। इसका प्रभाव अन्य अमीरों पर भी पड़ा और वे सुल्तान के पक्षपाती होने लगे। अपनी स्थिति कुछ दृढ़ कर सुल्तान अपने पिता की भाँति साम्राज्य की सत्ता के विस्तार और उसके प्रभुत्व प्रसार में सलग्न हो गया। साम्राज्य विस्तार की दिशा में प्रयत्न करने पर उसे अनेक शासकों और सामन्तों से युद्ध करना पड़ा।

सबसे पहले उसने रेवाड़ी के सूबेदार आलम खाँ के विरुद्ध अभियान किया और उसको परास्त कर उसे इटावा का शासक बनाया तथा उसका शासित प्रदेश खान खाना लोहानी को सौंप दिया। इसके पश्चात् उसने ईसा खाँ के विरुद्ध प्रयाण किया। ईसा खाँ युद्ध में पराजित हुआ और बन्दी बनाकर सुल्तान के सामने उपस्थित किया गया। लेकिन युद्ध में वह इतना आहत हो गया था कि शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के पश्चात् शम्साबाद का प्रदेश राणा गणेश को दे दिया गया।

जौनपुर से संघर्ष—जौनपुर में इन दिनों उसका भाई बारबकशाह शासन कर रहा था। दिल्ली का राज्य प्राप्त करने के लिए वह भी सिकन्दरशाह का एक प्रतिद्वन्द्वी था और इस समय जौनपुर में स्वतन्त्र शासक की हैसियत से शासन कर रहा था। साम्राज्य विस्तार के लिए प्रयत्नशील सिकन्दरशाह ने जब बारबकशाह को दिल्ली का आधिपत्य स्वीकार करने का सन्देश भेजा तो बारबक ने उसकी उपेक्षा कर दी और यही नहीं उसने क्रोधित होकर ससैन्य दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया। इधर से शाही सेना जौनपुर पर आक्रमण के लिए जा ही रही थी। कन्नौज के निकट दोनों सेनाओं का सामना हुआ। परन्तु युद्धकाल के मध्य में ही बारबकशाह का एक सेनानायक काला पहाड़ सिकन्दरशाह से मिल गया और परिणामस्वरूप बारबकशाह को पराजित होकर बदायूँ की ओर भागना पड़ा लेकिन उसने शीघ्र ही क्षमा माँग ली। सुल्तान ने उसे क्षमा कर दिया और जौनपुर का प्रदेश पुनः उसके शासन में दे दिया लेकिन बारबक की गतिविधियों पर ध्यान रखने के लिए उसने अपने कतिपय विश्वस्त अफगान सरदारों को भी वहाँ नियुक्त कर दिया।

जौनपुर से अवकाश पाने पर उसने कालपी पर आक्रमण किया और अपने भतीजे आजम हुमायूँ को पराजित कर उससे कालपी का प्रदेश छीन लिया और महमूद खाँ लोदी को सौंप दिया। इसी प्रकार बियाना के सुल्तान शर्फ को हटाकर उसके स्थान पर खानखाना फर्मुली को नियुक्त किया गया। इस प्रकार ३ वर्ष के अन्दर ही सुल्तान ने अपने विरोधियों को कुचल दिया और अपनी शक्ति संगठित कर ली।

जौनपुर में अशान्ति—यद्यपि जौनपुर पर सिकन्दरशाह का अधिकार था, परन्तु जमींदारों एवं अन्य सरदारों में विरोध की भावना तेजी से घर करती जा रही थी। आखिर चिनगारी पर से राख हटी और विद्रोह की अग्नि जल उठी। इस विद्रोह को बारबक नियन्त्रण में नहीं कर सका और उसे भागना पड़ा। शाही सेना के आने पर जमींदारों पर नियन्त्रण किया गया और बारबकशाह को पुनः शासक बनाया गया। परन्तु शाही सेना के जौनपुर से हटते ही पुनः विद्रोह कर दिया गया

सफल प्रयास किया था। भले ही उसकी सफलता आंशिक रही हो लेकिन इतना तो निश्चित ही है कि बहलोल को पाकर दिल्ली ने बहुत वर्षों बाद ऐसा सुल्तान पाया था जिसने उसकी क्षीणोन्मुख प्रतिष्ठा और गौरव को सहारा दिया था। उसने राज्य में एकता और सुव्यवस्था स्थापित करने में अपना सारा जीवन लगा दिया।

अपने व्यक्तिगत जीवन में बहलोल एक उदार, दयालु तथा विनम्र होने के साथ-साथ कुशल प्रशासक और योग्य सेनानी था। उसकी अनेकों विजयें उसकी वीरता और सैनिक योग्यता की परिचायिका हैं। बहलोल एक धर्मनिष्ठ सुल्तान था। न तो उसने कभी ऐश्वर्य प्रदर्शन ही किया और न किसी को अकारण दण्ड करने का प्रयत्न ही। 'तारीखे-ए-दाऊदी' के अनुसार "आम दरबार में वह सिंहासन पर न बैठ कर एक गलीचे पर बैठता था। जब कभी वह किसी अमीर को आदेश पत्र लिखता तो उसको 'मसनद अली' शब्द से सम्बोधित करता था, और यदि कभी वे उससे रुष्ट हो जाते तो उनको शान्त करने के लिए वह इतना प्रयत्न करता कि स्वयं उनके घर जाता था।...वह अपने सरदारों के साथ भाईचारा निबाहता था और यदि कोई अस्वस्थ हो जाता तो स्वयं जाकर उसकी पूछताँछ करता था।"

इस प्रकार बहलोल लोदी एक सीधा और सरल स्वभाव का व्यक्ति था। वह विद्वानों का आदर करता और उन्हें आश्रय प्रदान करता था। उसमें उच्च कोटि की न्यायप्रियता थी। उसका कोई व्यक्तिगत कोष नहीं था। युद्धों में प्राप्त धन को वह निस्संकोच रूप से सैनिकों में बाँट देता था।

सिकन्दर का सिंहासनारोहण

बहलोल की मृत्यु के पश्चात् उसका तीसरा पुत्र निज़ाम खाँ सिकन्दरशाह के नाम से गद्दी पर बैठा। बहलोल के नौ पुत्र थे जिनमें बारबकशाह जौनपुर का गवर्नर तथा आलम खाँ कड़ा-मानिकपुर का शासक था। तीसरे पुत्र निजाम को उसने अपने अधीन राजधानी में ही रखा था। सम्भवतः बहलोल की इच्छा थी कि उसके बाद निजाम खाँ ही दिल्ली का सुल्तान हो। बहलोल की मृत्यु के पश्चात् राज्याधिकार प्राप्त करने के लिए बहलोल के अन्य पुत्रों के पक्षों को लेकर अमीरों के कई दल बन गये और एक प्रकार से गृह संघर्ष सा चल पड़ा। अन्ततोगत्वा निजाम खाँ के दल की विजय हुई और बारबक, आलम खाँ तथा आजम हुमायूँ जो बहलोल का पौत्र था, के पक्षपाती अमीर दलों को दबना पड़ा। १७ जुलाई १४८६ ई० को निजाम खाँ सुल्तान निर्वाचित किया गया और गद्दी पर बैठ कर उसने सिकन्दरशाह की उपाधि धारण की।

सिकन्दर के कार्य—सिकन्दर एक योग्य, नीतिज्ञ, कुशल शासक और वीर सेनानी था। उसमें उच्च कोटि की महत्वाकांक्षा थी।

सिंहासन अधिकृत करने के बाद ही उसने अत्यन्त बुद्धिमत्ता से अपनी परेशानियों को हल करते हुए अपने ध्येय की ओर चरण उठाये। वह जानता था कि दरबार में कितने ही अमीर उसके विरोधी हैं जो किसी समय सगठित होकर उसके लिए परेशानियों को दीवाल खड़ी कर सकते हैं, अतएव उनको सन्तुष्ट और प्रसन्न करने के

दमन में कठिनायी नहीं तो परेशानी अवश्य होती थी, अतः उसने स्थायी रूप से शान्ति स्थापित करने के लिए उपरोक्त विद्रोहियों के समीप एक सैनिक स्कन्धावार की आवश्यकता का अनुभव की। सन् १५०४ ई० में सुल्तान ने आगरा नगर की नींव डाली और कुछ वर्षों बाद सुल्तान स्वयं वहाँ स्थायी रूप से निवास करने लगा।*

आगरा में भूकम्प—सन् १५०५ की ६ जुलाई का दिन आगरा के सर्वनाश की वेला थी। उस दिन एक प्रचण्ड भूकम्प आया और इतिहासकार के शब्दों में उस महानाश की क्रीड़ा का चित्र साकार हो उठता है—

"वास्तव में यह (भूकम्प) इतना भयंकर था कि पहाड़ उलट गये और आलीशान ऊँची-ऊँची इमारतें ढह कर जमींदोज हो गईं। जीवित लोगों ने सोचा कि अन्तिम न्याय की वेला आ गयी और मृतकों ने सोचा कि अब मुक्ति की घड़ी आ पहुँची है।"

सिकन्दर के अन्तिम दिवस भी राजपूतों तथा अपने सरदारों को दमन करने में ही बीते। सुल्तान ने अत्यन्त धैर्य से इन छोटे मोटे विद्रोहों का दमन किया और उनके प्रदेशों की व्यवस्था की। इसके साथ ही धौलपुर, ग्वालियर तथा नरवर को भी दिल्ली का प्रभुत्व स्वीकार करने के लिए घुटने टेक देने पड़े। चन्देरी का शासक भी हतदर्प किया गया। चन्देरी पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् एक वर्ष बाद ही १५१० ई० में नागौर के सूबेदार ने भी दिल्ली की सल्तनत के सामने सिर झुका दिया और वहाँ भी सुल्तान के नाम का खुतबा पढ़ा गया। सिकन्दर का अन्तिम सैनिक अभियान रणथम्भोर के विरुद्ध हुआ जिसमें वह विजयी हुआ और आगरा लौट आया।

ग्वालियर जीतने का सिकन्दर ने अनेक बार प्रयत्न किया लेकिन जिस प्रकार मुगल काल में दक्षिण की शक्ति औरंगजेब की शक्ति से कम नहीं थी, उसी प्रकार ग्वालियर का राजा भी सिकन्दर से कुछ कमजोर नहीं था। सिकन्दर ने ग्वालियर नरेश मानसिंह का गर्व खर्व करने के अनेक प्रयत्न किये लेकिन वे निष्परिणाम रहे। सुल्तान सिकन्दरशाह अपने अन्तिम दिनों में जब ग्वालियर विजय के लिए तैयारियों में संलग्न था तभी १ दिसम्बर सन् १५१७ ई० को उसकी मृत्यु हो गई।

शासन-व्यवस्था—सिकन्दर देहली सल्तनत का अन्तिम महान् शासक था। वह न केवल एक कुशल और वीर सेनानी ही था वरन् वह एक कुशल और योग्य शासक भी था। यह बात दूसरी है कि वह जीवनपर्यन्त, विद्रोही सरदारों और उपद्रवी पड़ोसियों के दमन में उलझा रहा और सल्तनत की सम्यक् रूपेण व्यवस्था करने का सुयोग उसे नहीं प्राप्त हो सका। फिर भी उसने अपने राज्य की शक्ति को दृढ़ता प्रदान करने के लिए अनेक सराहनीय सुधार और शान्ति स्थापित करने के सफल प्रयास किये। उसने एक स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासन की स्थापना की और एक केन्द्रीभूत शासन व्यवस्था को जन्म दिया। इसमें सन्देह नहीं वह अमीरों को साम्राज्य का स्तम्भ समझता था परन्तु वह इसे भी [illegible] था कि वे अपनी शक्ति का दुरुपयोग करके [illegible] के साथ विश्वासघात कर [illegible] दिल्ली के भाग्य [illegible] के [illegible] दें। अमीरों का [illegible], [illegible] तथा [illegible]

और इस बार भी बारबकशाह विद्रोह को नहीं दबा सका। इस पर सुल्तान ने क्रोधित होकर उसे बन्दी बनाकर कारागार में डलवा दिया।

हुसेनशाह शर्की से संघर्ष—बहलोल लोदी द्वारा पराजित होकर शर्की सुल्तान हुसैनशाह बिहार भाग गया था और आजकल वहीं निवास कर रहा था। बिहार में बैठा-बैठा वह जौनपुर का राज्य पुन. प्राप्त करने के लिए तिकड़में भिड़ाया करता था तथा षड्यन्त्र रचा करता था। इधर कुछ दिनों से जौनपुर के कुछ जमीन्दारों ने हुसेनशाह को अपने खोये हुये राज्य को पुन. हस्तगत करने के लिए प्रोत्साहन देना प्रारम्भ कर दिया था। इससे प्रोत्साहित होकर सचमुच ही वह जौनपुर की गद्दी का ख्वाब देखने लगा और बड़ी तैयारी करके उसने एक विशाल सेना के साथ जौनपुर की ओर प्रयाण किया। अनेक हिन्दू जमींदार भी उसके साथ थे। सन्देश पाकर शाही सेना भी आगे बढ़ी। बनारस के निकट दोनों सेनाओं की मुटभेड़ हुई जिसमें हुसन-शाह की सेना बुरी तरह पराजित हुई और उसकी शक्ति अन्तिम रूप से छिन्न-भिन्न होकर बिखर गयी। हुसेनशाह लखनौती भाग गया जहाँ उसने अपना शेष जीवन बिताया।

बिहार और बंगाल—१४६५ ई० तक बिहार प्रान्त भी सरलता से अधिकार में ले लिया गया। बिहार की व्यवस्था कर चुकने के बाद, सिकन्दर की सेनाएँ बंगाल की ओर बढ़ीं। लेकिन शीघ्र ही बंगाल से सन्धि हो गयी जिसमें यह तय किया गया कि दोनों राज्य न तो एक दूसरे की सीमा पर आक्रमण करेंगे और न एक दूसरे के शत्रुपक्ष को आश्रय देंगे न उनकी किसी प्रकार की सहायता करेंगे। सुल्तान ने आजम हुमायूँ को तिरहुत का तथा दरिया खाँ को बिहार का शासक नियुक्त किया।

अफगान अमीर और जमींदारों के विरुद्ध—बिहार के पश्चात् सिकन्दर शाह ने बड़े-बड़े अफगान सरदारों तथा भूमिपतियों की ओर ध्यान दिया—सुल्तान ने कुछ प्रमुख अफगान सरदारों को शासन का हिसाब-किताब देने को आदेश दिया और स्वयं जाँच-पड़ताल करने लगा। इसके फलस्वरूप अनेक रहस्यमय भेदों का उद्घाटन हुआ और इन भेदों के खुलने से अफगान सरदारों में सुल्तान के प्रति गहरा विरोध व्याप्त हो गया। सुल्तान ने अत्यन्त कठोरता के साथ इनका दमन किया। इन अमीरों के दमन में सुल्तान ने जिस क्रूर और निर्मम नीति का प्रयोग किया उससे क्रुद्ध होकर हैबत खाँ आदि सरदार तो सुल्तान की हत्या कर देने के लिए कटिबद्ध हो गये। अतः एक षड्यन्त्र रचा गया और उसमें सुल्तान के भाई फतह खाँ को भी शामिल किया गया। लेकिन शाहजादा फतेह खाँ ने सुल्तान के सामने इस षड्यन्त्र का पर्दा फाश कर दिया। इसके बाद सुल्तान ने षड्यन्त्रकारियों को कठोर से कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की। इस प्रकार सुल्तान की हत्या का प्रयत्न असफल हो गया और षड्यन्त्र-कारी प्राणों से हाथ धो बैठे। १५०० के लगभग असगर ने दिल्ली में सिर उठाने का प्रयत्न किया लेकिन वह दबा दिया गया।

आगरा नगर की स्थापना—इटावा, बियाना, कोल तथा ग्वालियर और धौलपुर में विद्रोह की आवशक्तियाँ रह रहकर लूटा करती थीं। सुल्तान को इनके

उसका धर्म भी इस्लाम के समान ही श्रेष्ठ है, प्राणदण्ड दे दिया गया था। यही नहीं सुल्तान ने आज्ञा निकाली कि कोई भी हिन्दू मथुरा के घाटों पर स्नान नहीं कर सकता। इतिहासकारों का मत है कि सिकन्दर की इस धार्मिक कट्टरता को आधुनिक मापदण्डों की तुला पर नहीं तौला जा सकता है क्योंकि वह युग ही धार्मिक असहिष्णुता का था और योरप तक में धार्मिक असहिष्णुता का बोलबाला था।

सिकन्दर के चरित्र एवं कार्यों का मूल्यांकन—ऊपर हम कह आये हैं कि सिकन्दर एक वीर सेनानी और कुशल शासक था। अपनी शक्ति के आधार पर उसने पूर्व में जौनपुर तथा बिहार और दक्षिण में धौलपुर, नागौर आदि को साम्राज्य की सत्ता के अधीन किया था। पञ्जाब का प्रान्त भी उसके काल में बहलोल लोदी के काल की अपेक्षा शान्त रहा। वह एक स्वेच्छाचारी, निरंकुश शासक था तथा साम्राज्य की समस्त शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित करने का अभिलाषी था। इसीलिए उसने उन अफगान अमीरों तथा सरदारों को नियन्त्रण में रखा जिनको बहलोल ने अपनी उदार-नीति के द्वारा अपनी बराबरी का पद प्रदान कर काफी उदण्ड बना दिया था।

अपने व्यक्तिगत जीवन में सिकन्दरशाह अतिशय स्वरूपवान, आखेट प्रेमी तथा सुल्तानोचित सभी गुणों से समन्वित व्यक्ति था। उसकी धार्मिक कट्टरता का सभी तत्कालीन इतिहासकार एक स्वर से समर्थन करते हैं कि धर्म में उसकी दृढ़ आस्था थी। मुल्लाओं और मौलवियों की संगति में उसकी रुचि थी। हिन्दुओं से घोर घृणा करता था। उसने हिन्दुओं के मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया और मूर्त्तियों को कसाइयों में बाँट बनाने के लिए वितरित करा दिया था आदि-आदि।

सिकन्दर अपने युग की प्रवृत्ति के अनुसार धर्मान्ध अवश्य था लेकिन उसमें उच्च कोटि की प्रतिभा और योग्यता का अभाव नहीं था। वह प्रजा का हितचिन्तक और शान्ति का प्रेमी था। हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि निर्धनों तथा असहायों के लिए उसने राजकोष से व्यवस्था की थी। न्याय का वह प्रेमी था। सिकन्दरशाह साहित्यकारों का आदर करता और उन्हें आश्रय देता था। वह स्वयं भी फारसी की अच्छी कविता कर लेता था। उसने आयुर्विज्ञान पर संस्कृत के एक ग्रन्थ का फारसी में अनुवाद कराया था। चरित्रहीन व्यक्तियों से वह घृणा करता था। उसकी स्मरणशक्ति अत्यन्त तीव्र था। इन सब गुणों के अतिरिक्त सुल्तान सिकन्दर रूढ़ि प्रेमी था और प्राचीन प्रथाओं तथा परम्पराओं का आदर करता और उनका अनुकरण करता था। इस प्रकार सिकन्दर ने अपने शासन काल में साम्राज्य की स्थिति को दृढ़ बनाने और उसे स्थायित्व प्रदान करने में कोई कोर कसर नहीं उठा रखी। लेकिन उसके बाद जो शासक सल्तनत का भाग्य विधाता हुआ वह परिस्थितियों के साथ समझौता नहीं कर सका और इस कारण लोदी वंश का भाग्य पुनः डांवाडोल हो उठा।

इब्राहिम लोदी

(१५१७-१५२६ ई०) सिकन्दर की मृत्यु के उपरान्त इब्राहिम लोदी ने दिल्ली सल्तनत की बागडोर संभाली। इब्राहिम एक घमंडी एवं हठी स्वभाव का सुल्तान था, और अपने स्वभाव [illegible] सकता था। न ही अपने हितैषियों तथा

के प्रति ईमानदार देखना चाहता था। इसीलिए उसने अफगान सरदारों पर कठोर प्रतिबन्ध रखे और उनके हिसाब-किताब की जाँच करवायी, तथा राजस्व में घपला करने वालों को कठोर दण्ड दिये। सुल्तान के भाइयों को भी सुल्तान के पदाधिकारियों तथा अफसरों के साथ मिल कर कार्य करना पड़ता था जिससे वे कभी भी सिर उठाने का प्रयत्न न कर सके।

साम्राज्य की समस्त सूचनाओं को सुल्तान और उसके उच्चपदाधिकारियों तक पहुँचाने के लिए एक शक्तिशाली गुप्तचर विभाग का संगठन किया गया था। राज्य भर में इन गुप्तचरों का जाल फैला हुआ था। छोटी से छोटी बातें सुल्तान के कानों में पड़ा करती थीं। सुल्तान को अपने अमीरों की स्वामिभक्ति में सन्देह था, इसलिए सुल्तान स्वयं अमीरों के सेवकों की नियुक्तियाँ करता था। शासनतन्त्र के विषय में इतना चौकन्ना होते हुये भी वह प्रजा के हितों का अत्यधिक ध्यान रखता था। उसने कृषि की उन्नति के प्रयत्न किये और व्यापार को प्रोत्साहन दिया। राजमार्गों तथा व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा का प्रबन्ध किया गया। अपनी न्यायप्रियता के कारण तो सिकन्दरशाह कितने ही तत्कालीन अफगान इतिहासकारों की प्रशंसा का पात्र बना है। सुल्तान स्वयं प्रधान न्यायाधीश था। उसने निष्पक्ष और शीघ्र न्याय की व्यवस्था पर जोर दिया था। ईद, अशुरा जैसे पर्व दिनों पर बन्दी मुक्त किये जाते थे। हिन्दू जमीनदारों का कठोरतापूर्वक दमन किया गया। भूमि की व्यवस्था के सम्बन्ध में, भूमि नापने के लिए उसने प्रामाणिक गज का प्रबन्ध किया था। वह बाद में काफी दिनों तक सिकन्दरी गज के नाम से व्यवहृत होता रहा। सिकन्दर की शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में 'तारीख-ए-दाउदी' का लेखक लिखता है—

"सुल्तान को प्रति दिन साम्राज्य के विभिन्न जिलों की घटनाओं की सूचनाएँ तथा वस्तुओं के मूल्य के विवरण प्राप्त होते थे। यदि उसे जरा भी त्रुटि की सूचना मिलती तो वह उसके अन्वेषण की तत्काल आज्ञा देता था। उसके शासन में व्यवसाय ईमानदारी तथा स्वतन्त्रता के साथ होता था। साहित्य के अध्ययन को भी विस्मृत नहीं किया गया था। कारखानों को प्रोत्साहन दिया गया था। सब सामन्त एवं सैनिक सन्तुष्ट थे, यही नहीं प्रजा का वह इतना हितचिन्तक था कि "प्रति वर्ष सुल्तान निर्धनों-अभाव ग्रस्त लोगों की सूची तैयार करवाता और उनकी आवश्यकतानुसार उनको छः मास की भोजन सामग्री प्रदान करता था।" प्रत्येक कार्य का निश्चित समय था और एक बार स्थापित की गयी प्रथाओं में परिवर्तन नहीं किया जाता था।

इतना सब कुछ होने पर भी सिकन्दर के उज्ज्वल चरित्र पर और उसकी शासन-व्यवस्था पर उसका धार्मिक आग्रह एक भारी कलंक बिन्दु है। फिरोज तुगलक तथा औरंगजेब की भाँति ही सिकन्दर लोदी भी धार्मिक कट्टरता का शिकार था। हिन्दुओं से उसको घृणा थी। उसने अनेक स्थानों पर हिन्दुओं के देवालयों को ध्वस्त कर उनके भग्नावशेषों पर इस्लाम की प्रतिष्ठा की थी और मस्जिदों का निर्माण करवाया था। कितने ही हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनने पर बाध्य किया गया और हिन्दुओं के धर्मपरिवर्तन से इन्कार करने पर कितनों को [illegible] पड़ा। [illegible] ब्राह्मण का आख्यान इसका दृष्टान्त

अध्याय ५५

बाबर

बाबर का प्रारम्भिक जीवन

बाबर का पिता उमर शेख मिर्जा तैमूरलंग वंश का था। उसकी माता चंगेज खाँ के रक्त से सम्बन्धित थी। उमर शेख मिर्जा फरगना नाम की एक छोटी सी रियासत का मालिक था। सन् १४८३ ई० में बाबर का जन्म हुआ। प्रारम्भ से उसमें वीरता, उत्साह और साहस कूट-कूट कर भरा था। बाबर ग्यारह वर्ष का था कि उसके पिता की मृत्यु हो गई। राजकाज बाबर के कन्धे पर पड़ा। बाबर एक तो बच्चा था, दूसरे चारों ओर से शत्रुओं से घिरा था। ये शत्रु उसके अपने ही दरबारी थे और प्रमुख शत्रु उजबेग सरदार शाहबानी खाँ था। यद्यपि बाबर अल्पायु था पर उसमें साहस का बाहुल्य था। उसने समरकन्द पर आक्रमण करने का निश्चय किया जिससे उसे तैमूर के सिंहासन पर बैठने का अवसर मिला। उसने समरकन्द पर आक्रमण कर दिया। उजबेग सरदार शाहबानी खाँ ने उसका असफल विरोध किया। बाबर ने समरकन्द में प्रवेश किया और उसे जीत लिया। उसी समय उसे यह सूचना मिली कि फरगाना में उसके विरुद्ध कोई भीषण षड्यन्त्र किया जा रहा है जिससे उसे गद्दी से उतार दिया जाय। इस षड्यन्त्र की सूचना पाते ही बाबर ज्योंही फरगाना लौटा कि हाथ से समरकन्द निकल गया। परन्तु बाबर ने केवल २४० आदमियों से समरकन्द को अपने अधीन कर लिया। उजबेग सरदार बाबर की ताक में रहता था। उसने जब यह देखा कि बाबर तैमूर का सिंहासन सर्वदा के लिये ले लेना चाहता है तो उससे नहीं रहा गया। उसने सन् १५०३ ई० में आक्रमण कर दिया। बाबर किसी प्रकार जान बचाकर भागा। अब उसके पास राज्य सेना, घर-बार कुछ भी नहीं रह गया था। समरकन्द तो हाथ से निकल ही गया था, फरगना भी जाता रहा। बेचारा एक साल तक इसी प्रकार निराश्रित भटकता रहा। इसी बीच उजबेगों ने खुरासान का पूरा देश अपने अधिकार में कर लिया। उसकी बढ़ती हुई शक्ति को कोई रोकने वाला न था। उजबेग कन्धार की ओर बढ़ा, बाबर को भारत की ओर मुड़ना पड़ा। बाबर के भाग्य से शाहबानी के राज्य में एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ जिससे बाबर को अवसर मिला और वह तुरन्त फरगाना का अधिकारी बन गया। अब बाबर ने बादशाह की उपाधि धारण की। काबुल में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर लेने के बाद बाबर ने समरकन्द जीतने की एक बार पुनः कोशिश की। फारस के इस्माइल ने उजबेगों को पराजित कर दिया था जिससे बाबर को प्रोत्साहन मिला। इस्माइल की सहायता से बाबर ने उजबेगों पर आक्रमण कर दिया। बाबर ने बुखारा जीत लिया। तत्पश्चात बाबर ने १५०१ ई० में समरकन्द में प्रवेश किया किन्तु आठ मास पश्चात् शाहबानी के पुत्र ने बाबर के पाँव उखाड़। बाबर ने पहले ही उजबेगों पर आक्रमण कर देना हितकर

सहयोगी अमीरों को असन्तुष्ट कर दिया। इब्राहिम में सिकन्दर जैसी प्रतिभा और प्रभावशाली, दृढ़ व्यक्तित्व नहीं था जो वह अफगान सरदारों को अपने पिता की भाँति नियंत्रण में कर सकता। इसलिए जब उसने अपने पिता की भाँति निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासक बनने के प्रयास में अफगान अमीरों पर कठोर दमन चक्र की नीति चलायी तो वे उसके विरोध में उठ खड़े हुये। इन अमीरों को अपनी शक्ति का भरोसा था, जैसा एर्सकाइन ने लिखा है कि ये अमीर अपनी जागीर को शासन की अनुकम्पा स्वरूप प्राप्त न समझ कर अपने अधिकार और अपनी तलवार की शक्ति से क्रय की हुई समझते थे। इस प्रकार अगर अमीरों में असन्तोष फैलता जा रहा था तो दूसरी ओर हिन्दू जनता सिकन्दर की धार्मिक नीति के कारण पहले से ही विरोधी बनी बैठी थी। इब्राहिम के सामने विकट परिस्थितियाँ थीं। वह जितना उसे सुलझाने का प्रयास करता था वह उतनी ही उलझती जाती थी। लेकिन इतना सब होने पर भी इब्राहिम को अपनी जनता का बड़ा ध्यान रहता था। उसके शासन-काल में राज्य में समृद्धि थी। अनाज सस्ता था और यथेष्ट मात्रा में था। अपने इन्हीं सब गुणों के कारण इब्राहिम अपने राजनैतिक जीवन में पूर्ण सफल न होता हुआ भी जनता का प्रिय था। वह जनता की हित चिन्तना करता और जनता उस पर आस्था रखती थी।

जलाल का विद्रोह—इब्राहिम के सिंहासनारूढ़ होने के कुछ ही समय बाद इब्राहिम की अमीर दमन नीति से असन्तुष्ट सरदारों की षड्यन्त्रकारी प्रवृत्तियाँ क्रियाशील हो उठीं। कुछ अमीरों के परामर्श देने पर इब्राहिम ने जलाल को कालपी से हटाकर जौनपुर का शासक नियुक्त कर दिया। खानेजहाँ लोदी एक स्वामिभक्त अमीर था। उसने षड्यन्त्र की प्रवृत्तियों को पहचाना और सुल्तान से इस बात का आग्रह किया कि जलाल को जौनपुर से वापस बुला लिया जाय नहीं तो शाही शक्ति के विभाजित हो जाने की आशंका है। सुल्तान ने उसके परामर्श को स्वीकार करते हुए कुछ अमीरों को जौनपुर से जलाल को लौटा लाने का आदेश दिया। लेकिन जलाल ने सुल्तान की इच्छा का तिरस्कार कर दिया क्योंकि एक तो उसको जौनपुर के शासन का आस्वादन हो चुका था और इससे अमीरों का एक दल पृष्ठभूमि में उसकी सहायता कर रहा था। इब्राहिम अत्यन्त धैर्य से काम ले रहा था, लेकिन इसी समय आजम हुमायूँ जो सुल्तान का एक विरोधी अमीर था जलाल से मिल गया। अब दोनों की संयुक्त सेनाओं ने अवध पर आक्रमण कर दिया और वहाँ के सूबेदार सैयद खाँ को लखनऊ भागना पड़ा। इस आक्रमण की सूचना मिलते ही सुल्तान के धैर्य का बाँध टूट गया और उसने स्वयं जलाल के विरुद्ध अभियान किया। इस बीच में आजम हुमायूँ ने जलाल का साथ छोड़ दिया और शाही सेना ने कालपी दुर्ग घेर लिया और जलाल आगरे की ओर भागा। शाही सेना ने वहाँ भी उसका पीछा किया। तब वह ग्वालियर पलायन कर गया, फिर वहाँ से मालवा, गढ़ कंटक होता हुआ गोंडवाना पहुँचा। जहाँ के जमीन्दारों ने उसे पकड़ लिया और कत्ल कर दिया।

ग्वालियर पर विजय—सिकन्दर लोदी की ग्वालियर पर विजय की अपूर्ण योजना पूर्ण करने के लिए इब्राहिम ने एक सेना १५१७ ई० में ही ग्वालियर की ओर रवाना की लेकिन जलाल के विद्रोह के कारण उसे वापस बुला लेना पड़ा। जलाल का

में मारा गया। बाबर का दिल्ली की गद्दी पर अधिकार हो गया। आगरा भी उसके कब्जे में आ गया। यह भारत में बाबर की पहली विजय थी और उसे इसमें बेखटके

चि। ३५

[illegible] था। फिर भी उसका भविष्य अभी अन्धकारमय ही था। उसके लिए अभी [illegible] के सामना करना था जो दिल्ली की ओर आँख गड़ाये।

युद्ध का परिणाम—पानीपत का युद्ध इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान

तभा किन्तु उजबेगों ने बाबर को बुरी तरह पराजित कर दिया। उसकी सहायता के र इस्माइल ने जो सेना भेजी थी वह भी उजबेगों द्वारा पराजित हुई। विवश कर बाबर को पुनः काबुल लौटना पड़ा। इस प्रकार बाबर अब पश्चिम में साम्राज्य स्थापित करने में अपने को पूर्णतया असफल समझने लगा और उसने पूर्व की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया।

जिस समय बाबर काबुल में अपना राज्य-विस्तार कर रहा था, भारत में उस समय इब्राहिम लोदी दिल्ली की गद्दी पर विराजमान था। इब्राहिम एक घमण्डी और अयोग्य सुल्तान था। प्रजा उससे सन्तुष्ट नहीं थी। दरबारी अमीर और सरदार भी उसके खिलाफ थे। अमीरों को वह कभी कभी बिना हिले-डुले अपने दरबार में खड़े होने की आज्ञा दे देता था। इसमें अमीर दल बहुत ही विक्षुब्ध था। सेना भी उसके व्यवहारों से अप्रसन्न ही थी। फलस्वरूप जगह-जगह पर विद्रोह होने लगे। यों तो सुल्तान के पहले के व्यवहारों ने उनमें बदले की भावना ला दी थी, किन्तु दिलावर खाँ के साथ किये गये अत्याचार ने घी का काम किया। दौलत खाँ बौखला उठा। उसने बाबर को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया। इब्राहिम के चाचा और आलम खाँ नामक एक सरदार ने भी दौलत खाँ की नकल की। बाबर एक योग्य और नीतिज्ञ व्यक्ति था। वह कब ऐसे सुअवसरों को हाथ से जाने देता। उसने झटपट एक १२,००० सिपाहियों की सजी-सजाई सेना तैयार की और भारत की ओर रवाना हो गया। भारत की ओर उसकी रणयात्रा नई नहीं थी। इसके पहले भी वह सीमा प्रान्तों तक चढ़ आया था। वहाँ कुछ भागों पर उसने अधिकार भी कर लिया था। आगे बढ़ कर सारे भारत की विजय करने की भी उसकी इच्छा पहले से ही थी। किन्तु उपयुक्त समय न पाकर उसने पंजाब से आगे कदम नहीं बढ़ाया था। दिल्ली की प्रशंसा उसने पहले से ही सुन रखी थी और वह उस पर अधिकार करने को लालायित था। इस मौके को पाकर उसने बहती दरिया में हाथ धोना चाहा।

पानीपत का पहला युद्ध—बाबर तैमूर और चंगेज की तरह लुटेरा नहीं था जो केवल भारत को लूटने की ही इच्छा से आता। उसकी इच्छा भारत में मुगल साम्राज्य स्थापित करने की थी। न्योता देने वाले सरदारों ने उसे लुटेरे के ही रूप में जानकर बुलाया था। जब उसने पंजाब पर अधिकार कर लिया तब दौलत खाँ ने उसका विरोध किया। किन्तु पराजित होने पर आत्मसमर्पण कर उसने मुगल सेना से छुट्टी ली। बाबर पंजाब को पारकर आगे बढ़ा और मार्ग में शत्रुओं को हराते हुए १५२६ ई० में पानीपत के मैदान में आ डटा। इब्राहिम लोदी इस खबर से एक लाख सेना लेकर बाबर का सामना करने के लिए रण-क्षेत्र में आ गया। दोनों सेनाओं में विकट युद्ध हुआ। बाबर की सेना इब्राहिम के मुकाबले में बहुत कम थी किन्तु तपी-तपाई थी। उसे लड़ने के नये ढंग मालूम थे और बाबर जैसा योग्य सेनापति उसका नेतृत्व कर रहा था। दूसरी ओर इब्राहिम की सेना केवल गिनने भर को ही थी, उसके लड़ने के ढंग सभी पुराने ही थे और इब्राहिम ऐसा अयोग्य और असावधान सुल्तान उसका अगुआ था। फल यह हुआ कि बाबर की थोड़ी सेना ही शत्रुओं के दाँत खट्टे कर दिये। इब्राहिम की सेना भाग खड़ी हुई। बाबर विजयी हुआ। इब्राहिम लड़ाई